॥ श्रीः ॥

विद्याभवन संस्कृत ग्रन्थमाला
३६

महाकविबाणभट्टविरचितं

हर्षचरितम्

श्रीशङ्करकविरचित 'सङ्केत'-व्याख्यासहित-
हिन्दीव्याख्योपेतम्

हिन्दीव्याख्याकारः—
पं॰ श्रीजगन्नाथपाठकः
साहित्याचार्यः

चौखम्बा विद्याभवन
वाराणसी २२१००१

प्रकाशक—

चौखम्बा विद्याभवन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

चौक (बनारस स्टेट बैंक भवन के पीछे),

पो० बाक्स नं० ६९

वाराणसी २२१००१

चतुर्थ संस्करण १९८२

मूल्य { १–२ उच्छ्वास ८–००
१–४ उच्छ्वास १५–००
सम्पूर्ण २५–०० }

अन्य प्राप्तिस्थान—

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

के० ३७/११७, गोपालमन्दिर लेन

पोस्ट बाक्स नं० १२९

वाराणसी २२१००१

मुद्रक—

श्रीजी मुद्रणालय

वाराणसी

THE

VIDYABHAWAN SANSKRIT GRANTHAMALA

36

HARṢA-CHARITAM

OF

BĀṆABHAṬṬA

Edited with the

'SANKETA' SANSKRIT COMMENTARY

OF

ŚAṄKARA KAVI

&

Hindi translation

By

Pt. Jagannath Pathaka

Sahityacharya

CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN

VARANASI

भूमिका

महाकवि बाण

संस्कृत-साहित्य में महाकवि कालिदास की पद्य-रचना जितनी उत्कृष्ट और सरस है उतनी ही महाकवि बाण की गद्य-रचना महत्त्वशालिनी है। बाण ने अपनी गद्यरचना का जो परिष्कृत और परिमार्जित रूप प्रस्तुत किया है वही आगे चल कर साहित्य के अन्य गद्य कवियों के लिए आदर्श बन गया। संस्कृत में गद्य-साहित्य की यों ही कमी समझी जाती है उस पर बाण जैसे कवि ने आकर मानो अपने पहले और आगे के समस्त अभाव की पूर्ति स्वयं कर ली। हर्षचरित बाण की प्रथम रचना है जो गद्य की उत्कृष्ट शैली के कादम्बरी में होने वाले साक्षात्कार की प्रस्तावना है। इससे यह नहीं कहा जा सकता कि कादम्बरी के संतुलन में हर्षचरित एकदम नहीं आ सकता, हाँ, बाण की चित्रग्राहिणी प्रतिभा का निखार अपेक्षाकृत हर्षचरित से कादम्बरी में अधिक पाया जाता है। हर्षचरित में बाण की महती साधना अभिलक्षित होती है। वही साधना कादम्बरी के रूप में फल के समान उद्भूत हुई है। जैसे कोई योगी सिद्धिप्राप्ति के उद्देश्य से साधना में स्थिर हो जाता है, उसे साधक कहते हैं और जब उसकी साधना फलित हो जाती है तब वह सिद्ध की आख्या ग्रहण करता है, उसी प्रकार हर्षचरित में बाण साधक है और कादम्बरी में सिद्ध। बाण के दोनों ग्रन्थ साहित्य और कला की दृष्टि से सर्वांगपूर्ण हैं। विशेषरूप से हर्षचरित पर बाण की युगीन संस्कृति का प्रभाव अधिक है। अतः ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और धार्मिक दृष्टि से हर्षचरित संस्कृत-साहित्य का सर्वाधिक मूल्यवान् ग्रन्थ है ऐसा विद्वानों का कथन है। हर्षचरित हमें बाण की आत्मकथा से भी बहुत अंशों में परिचित कराता है। बाण ने हर्षचरित के प्रसंग में आत्म-चरित को सन्नद्ध करके साहित्यिक जगत् का बड़ा ही उपकार किया है। बाण के साहित्य का अध्ययन करते हुए हमारी आँखों के सामने बाण का स्वाभिमानी और मस्ताना व्यक्तित्व नाचने लगता है। हम उसी के आधार पर बाण की प्रत्येक सूक्ष्मेक्षिका को आसानी से आँक लेने में समर्थ होते हैं। संस्कृत-साहित्य के अध्ययनशील लोगों के मन में आचार्यों और कवियों की निजी जीवन-सम्बन्धी घटनाओं के न मिलने के कारण बड़ी उत्सुकता रह ही जाती है और जब यह बात मन में आती है कि कभी हमें तत्तत् कवियों और आचार्यों के

जीवन के सम्बन्ध में जानने का सौभाग्य नहीं प्राप्त होगा तब वही उत्सुकता एक गहरी निराशा के रूप में बदल जाती है। सौभाग्य से वाण के सम्बन्ध में हम ऐसा नहीं सोच सकते क्योंकि उन्होंने हर्षचरित के आरम्भिक दो-तीन उच्छ्वासों में अपने अल्हड़ जीवन की मौलिक घटनाओं का उल्लेख वंशानुकीर्तन की भूमिका में क्रम से प्रस्तुत कर दिया है। बाण का स्थितिकाल निःसन्देह रूप से सप्तम शती का पूर्वार्ध (६०६–६४८ ई०) है। हर्ष का समय निश्चित होने के कारण इस सम्बन्ध में कोई ऐतिहासिक वैमत्य नहीं है।

बाण का वात्स्यायन वंश

बाण ने हर्षचरित के आरम्भ में अपनी आत्मकथा के साथ-साथ अपने कुल का भी पौराणिक शैली में उद्भव बताया है। बाण के जीवन से परिचित होने के लिए यह सामग्री बड़ी सहायक है। एक बार भगवान् ब्रह्मा इन्द्र आदि देवताओं के बीच कमल के आसन पर विराजमान थे; वहाँ मनु, दक्ष, चाक्षुप प्रभृति प्रजापति एवं मुनिगण भी गोष्ठी में ब्रह्म के सम्बन्ध में विचार कर रहे थे। ऋक्, साम, यजु का पाठ भी चल रहा था। वेद के अर्थ के सम्बन्ध में परस्पर विवाद का भी प्रसंग उपस्थित हो जाता था। ऐसे अवसर पर स्वभाव से ही अत्यन्त क्रोधी महामुनि दुर्वासा और उपमन्यु नामक मुनि में विवाद छिड़ गया। क्रोध से अभिभूत दुर्वासा ने सामगान करते हुए स्वर से हीन पाठ कर दिया। दुर्वासा के स्वरहीन सामगान से एकाएक गोष्ठी के समस्त लोग सन्न हो गये और शाप के भय से किसी को कुछ बोलने का साहस न हुआ। भगवान् ब्रह्मा ने भी इस भयावह प्रसंग को टालने का प्रयास किया परन्तु उन्हीं के पार्श्वभाग में चामर लेकर खड़ी सरस्वती दुर्वासा का स्वरहीन पाठ सुन कर हँस पड़ी। सरस्वती को अपने पर हँसते हुए देखकर दुर्वासा क्रोध से तमतमा उठे और उन्होंने शाप देने के लिए हाथ में जल उठा लिया। ब्रह्मा ने जोर से दुर्वासा को फटकारा, अत्रि ने स्वयं मना किया, सरस्वती की सखी सावित्री ने भी क्रोध शान्त करने के लिए प्रार्थना की, फिर भी दुर्वासा ने किसी की न सुनी और शाप दे ही डाला। कि ब्रह्मलोक को छोड़कर सरस्वती को तब तक अन्यत्र रहना होगा जब तक वह अपने पुत्र का मुख न देख ले। दुर्वासा के शाप से ग्रस्त होकर सरस्वती ने किसी प्रकार सावित्री के साथ मर्त्यलोक के लिए प्रस्थान किया। स्वर्ग की गंगा के तटमार्ग से होते हुए वह मर्त्यलोक में हिरण्यवाह शोण के समीप उतरी। सरस्वती ने शोण के तट पर ही रहने के लिए आग्रह किया। दोनों ने नदी के तीर पर एक लतामण्डप में निवास किया। शोण में नित्य स्नान और देवार्चन करते हुए कुछ दिन बीत गये।

एक समय दिन जब एक पहर चढ़ गया तब उत्तर की ओर घोड़ों की हिनहिनाहट सुन पड़ी। कुतूहल से सरस्वती ने लतामण्डप से बाहर निकल कर देखा कि धूल उड़ाता हुआ घोड़ों का समूह चला आ रहा था, जिसके साथ हजारों पैदल युवक चले आ रहे थे। अश्वारोहियों के बीच अट्ठारह वर्ष की आयु का एक सुन्दर युवक भी था। एक ओर

अधिक अवस्था वाला पुरुष भी उसके साथ था। वह युवक दिव्य आकृति वाली दोनों कन्याओं को देखता हुआ कुतूहल से लतामण्डप के समीप आ पहुँचा और घोड़े से उतर गया। साथ के और लोगों को दूर पर ही उसने रोक दिया और उस दूसरे सज्जन के साथ पैदल ही वहाँ आया। सरस्वती के साथ सावित्री ने उसका वनवास की उचित सामग्री से सत्कार किया और उस वृद्ध से पूछा—'यह युवक कहाँ से आया है? इसे जाना कहाँ है? इसके पिता कौन हैं, माता का क्या नाम है और इसका क्या नाम है?' सावित्री के इस अनुरोध पर उस पुरुष ने कहा—'यह च्यवन का पुत्र दधीच है, इसकी माता राजा शर्यात की पुत्री सुकन्या है। शर्यात पुत्री को गर्भवती जान कर पति के घर से अपने घर ले गये। वहीं उसने इसे जन्म दिया। अपने ननिहाल में ही यह बढ़ा। जब इसकी माता अपने पति के घर जाने लगी तब नाना ने स्नेह से इसे अपने साथ ही रख लिया। वहीं पर इसने समस्त विद्याओं और कलाओं को सीखा तब किसी प्रकार नाना ने इसे पिता के पास जाने के लिए छोड़ा। मैं उन्हीं शर्यात का विकुक्षि नामक आज्ञाकारी भृत्य हूँ। मुझे इसे पिता के घर पहुँचाने के लिए भेजा गया है। शोण के उस पार भगवान च्यवन का आश्रम है, हम वहीं जा रहे हैं।' यह कह कर उस पुरुष ने उन दोनों का भी परिचय पूछा। तब सावित्री ने कहा—'आर्य, हम दोनों का यहाँ बहुत दिनों तक रहने का विचार है अतः धीरे-धीरे सब कुछ ज्ञात हो जायगा।' फिर दधीच और वह पुरुष दोनों च्यवनाश्रम की ओर घोड़े पर सवार होकर चल दिये। इधर सरस्वती दधीच के चले जाने पर उस दिशा की ओर ही देर तक आँखें फैलाये बैठी रही, फिर किसी तरह वह दिन बीता। रात में भी दधीच के दर्शन की चिन्ता में ऊभ-चूभ होती रही। इस प्रकार कई रातें बीतीं तो अपने देश की ओर लौटते समय विकुक्षि वहाँ पहुँचा। सावित्री ने दधीच का कुशल पूछा। विकुक्षि ने दधीच की मालती नाम की दूती के आने का समाचार कह कर विदा ली। विकुक्षि के जाने पर अश्वारूढ होकर मालती वहाँ पहुँची। दोनों ने उसका सम्मान किया। मालती कुछ देर तक ठहरी और फिर दधीच को लाने के लिये च्यवनाश्रम गई और दधीच को साथ लेकर लौटी। प्रणय हो जाने पर दधीच सरस्वती के साथ एक वर्ष तक वहीं रह गये। दैवयोग से सरस्वती ने गर्भ धारण किया और समय पर पुत्र पैदा किया। पैदा होते ही सरस्वती ने अपने पुत्र को समस्त वेदों, शास्त्रों, कलाओं और विद्याओं में प्रवीण हो जाने के लिए वर दिया और दधीच तथा पितामह के आदेश से सावित्री के साथ ब्रह्मलोक चली गई। सरस्वती के चले जाने पर दधीच ने भार्गव वंश में उत्पन्न अपने भाई की अक्षमाला नाम की पत्नी के पास उस सारस्वत पुत्र को पालने के लिए छोड़ कर तपस्या करने के लिए जंगल में प्रस्थान किया। जिस समय सरस्वती ने पुत्र पैदा किया था उसी अवसर पर अक्षमाला के गर्भ से भी पुत्र उत्पन्न हुआ था। अक्षमाला ने दोनों पुत्रों को पाल-पोस कर बड़ा किया। एक का नाम सारस्वत और दूसरे का नाम वत्स था। दोनों में सहोदर भाई जैसा स्नेह था। माता के

वरदान से सारस्वत यौवन के आरम्भ में ही समस्त शास्त्रों का पारंगत विद्वान् हो गया। उसने वत्स को भी अपनी सारी विद्या दे दी और उसका विवाह करके प्रीतिकूट नाम का स्थान बनवा दिया तथा पिता दधीच जहां तपस्या कर रहे थे वहाँ स्वयं दण्ड-चीवर धारण करके चला गया।

वत्स से वंश चला। उसी वंश की परम्परा में बाण का जन्म हुआ। बाण ने वात्स्यायन-वंश की परम्परा भी दी है। वत्स के बाद अनेक वर्ष बीते और बहुत से वात्स्यायन ब्राह्मण उस कुल में क्रमशः उत्पन्न हुए। उसी क्रम में कुबेर नाम का ब्राह्मण उत्पन्न हुआ। उसके चार पुत्र हुए—अच्युत, ईशान, हर और पाशुपत। पाशुपत के पुत्र का नाम अर्थपति था। अर्थपति ने ग्यारह पुत्रों को उत्पन्न किया जिनके नाम ये हैं—भृगु, हंस, शुचि, कवि, महीदत्त, धर्म, जातवेदस्, चित्रभानु, त्र्यक्ष, अहिदत्त और विश्वरूप। चित्रभानु के ही पुत्र बाण थे। बाण की माता का नाम राजदेवी था। बाण के दो पारशव भाई (शूद्र स्त्री से उत्पन्न) थे—चित्रसेन और मित्रसेन और चार चचेरे भाई थे—गणपति, अधिपति, तारापति और श्यामल।

बाण की आत्मकथा

इस प्रकार बाण ने अपने वात्स्यायनवंश का उद्भव बताते हुए प्राचीन कुलपुरुषों की क्रमबद्ध वंशावली दी है और इसी क्रम में अपनी भी चर्चा की है। कहा जा चुका है कि बाण के पिता का नाम चित्रभानु और माता का नाम राजदेवी था। बालपन में ही उसे माता का वियोग सहना पड़ा और पिता ने मातृस्नेह के साथ उसका पालन किया। वह अपने घर पर ही रह कर बढ़ा। उसके उपनयन आदि संस्कार यथासमय पिता ने किये। जब वह चौदह वर्ष का हुआ तब उसके पिता का भी देहान्त हो गया। उस समय तक उसका समावर्तनसंस्कार और उसके साथ ही विवाह भी हो चुका था। पिता की मृत्यु के बाद दुखी और शोकसंतप्त बाण ने किसी प्रकार अपने घर पर ही रह कर वह समय काटा। कुछ दिन के बाद जब पितृशोक कुछ कम हुआ तब बाण की स्वतंत्र प्रकृति ने जोर मारा। उसमे वह विनय अब न रहा। अल्हड़पन के कारण बालक बाण में नई-नई वस्तुओं के देखने का कुतूहल बढ़ा। फलतः वह यौवन के आरम्भ होते ही धैर्य को त्याग कर घुमक्कड़ और आवारा बन गया। इसके साथी और सहायक भी बहुत से हो गये। वह उनके साथ देश-देशान्तरों को देखने की इच्छा से अपने पिता-पितामह के वैभव और विद्या की परवाह न करके घर-द्वार छोड़ कर निकल पड़ा। स्वच्छन्द होकर वह इस प्रकार मनमौजी हो गया कि उसकी खिल्ली उड़ने लगी।

अपने उसी उच्छृङ्खल भ्रमण के अवसर में घूम-घूम कर बाण ने अपने युग के जीवन का गहरा अध्ययन किया। वह राजकुलों में पहुँचा जहाँ के व्यवहार अत्यन्त उदार होते थे, गुरुकुल या उस समय के शिक्षासंस्थानों में भी कुछ काल तक रहा, बहुमूल्य

बात-चीत करने वाले गुणवान् लोगों की गोष्ठियों में बैठा और विदग्ध जनों के बीच पहुँचा। इस प्रकार युवक बाण को अनुभव के चार स्रोत जीवन के आरम्भ में ही मिल गये। अनुभवी होकर बाण की चंचल प्रकृति बदल गई। वह वात्स्यायन वंश के अनुरूप गम्भीर स्वभाव वाला बन गया। बहुत दिनों तक देश-देशान्तरों का चक्कर काट कर वह फिर अपनी जन्मभूमि प्रीतिकूट को लौटा और अपने बालमित्रों से बड़े स्नेह के साथ मिला।

अपने बन्धु-बान्धवों से मिल कर बाण बड़ा प्रसन्न हुआ। बहुत दिनों तक प्रीतिकूट का ही आनन्द लेता रहा। एक दिन स्थाण्वीश्वर के महाराज श्रीहर्ष के भाई का भेजा हुआ मेखलक नाम का दीर्घाध्वग बाण से आकर गर्मी के दिनों में मिला। उस समय भोजन के पश्चात् बाण अपने घर पर आराम कर रहा था। उसके पारशव भाई (शूद्रा जननी से उपन्न) ने भीतर आकर उसके आगमन की सूचना दी। बाण ने कहा—'उसे शीघ्र अन्दर लाओ।' तब वह दीर्घाध्वग भीतर जाकर बाण के समीप कुछ हट कर बैठा। बाण के पूछने पर उसने कृष्ण का कुशल-समाचार सुना कर पत्र अर्पित किया। बाण ने पत्र को स्वयं पढ़ा। फिर मेखलक ने मौलिक सन्देश में कृष्ण की ओर से कहा—'मैं तुमसे बिना कारण ही अपने बन्धु की तरह प्रेम करता हूँ। तुम्हारी अनुपस्थिति में दुर्जन लोगों ने सम्राट के कान भर दिये, पर वह सत्य नहीं। किसी ईर्ष्यालु व्यक्ति ने तुम्हारी बाल-चपलताओं से चिढ़ कर कुछ इधर-उधर की बात कह दी। अन्य लोगों ने भी ठीक वैसा ही समझा और कहने लगे। सम्राट् ने ऐसे मूर्खों की एक-सी बात सुन कर अपना मत स्थिर कर लिया। तुम्हारे विषय में मैंने सम्राट् से निवेदन किया और उन्होंने मेरी बात मान ली। अब अपने घर पर व्यर्थ समय-यापन करना ठीक नहीं, शीघ्र राजकुल में आओ।'

यह सुन कर बाण ने उसी चन्द्रसेन को आज्ञा दी—'मेखलक को ले जाकर भोजनाच्छादान की व्यवस्था कर आराम से ठहराओ।' तब तक दिन ढल चुका था। बाण संध्योपासन से निवृत्त होकर फिर अपने शयनीय पर आ गये और सम्राट् से मिलने के सम्बन्ध में एकाकी सोचने लगे—'क्या करूँ? महाराज ने मुझे कुछ और ही समझ लिया है, मेरे अकारणबन्धु कृष्ण ने ऐसा संदेश भेजा है, सेवा बहुत कष्टदायिनी है, नौकरी करना मेरे अनुकूल नहीं, राजकुल अतिगम्भीर और विशाल है, न तो मेरे पूर्वजों का राजकुल से सम्बन्ध रहा है जिससे प्रेमभाव बना है, न तो मुझ में कुलक्रमागत क्षमता ही है, न तो पहले राजकुल के द्वारा किये हुए उपकार का स्मरण मुझे आता है, न तो बचपन में राजकुल से ऐसी मदद मिली जिसका स्नेह मान कर चला जाय, न तो बड़े होने का अब तक गौरव मिला है, न पहली मेल मुलाकात की अनुकूलता है, न तो बुद्धि सम्बन्धी विषयों में आदान-प्रदान करने का प्रलोभन है, न तो अपनी विद्या के अतिशय प्रदर्शन का कुतूहल है, न तो अपनी सुन्दर आकृति से मिलने वाले आदर की आकांक्षा है, न सेवावृत्ति के अनुरूप चापलूसी करने की कला मुझे आती है, न तो मुझमें वैसी चतुराई है कि विद्वानों

की गोष्ठियों में भाग लूँ, न तो धन खर्च करके दूसरों को मुट्ठी में कर लेने की आदत है, और न तो राजा के प्रिय जनों से मेरा परिचय है और कृष्ण के संदेशानुसार जाना भी जरूरी है। त्रिभुवनगुरु भगवान् शंकर वहाँ जाने पर सब भला करेंगे।' यह सोच कर बाण ने प्रस्थान करने के लिए निश्चय किया।

दूसरे दिन प्रातःकाल बाण ने स्नान करके उज्ज्वल दुकूल धारण किया और हाथ में अक्षमाला लेकर प्रास्थानिक सूक्तों और मंत्रपदों को बार-बार दुहराया, फिर देवों के देव भगवान् शङ्कर की साङ्गोपाङ्ग अर्चना की तथा तिल और घृत की आहुतियों से हवन सम्पन्न किया। ब्राह्मणों को दक्षिणा में धन दिया। होमधेनु की परिक्रमा की। शुक्ल अङ्गराग, शुक्ल माल्य, शुक्ल वसन एवं रोचनाचित्रित तथा दूर्वाग्रग्रथित गिरिकर्णिक नामक पुष्प का कर्णपूर और शिखा में सिद्धार्थक आदि माङ्गलिक द्रव्यों से परिष्कृत होकर बाण प्रस्थान के लिए तैयार हो गया। माता के समान स्नेह से आर्द्र हृदय वाली पिता की छोटी बहन मालती ने बाण के प्रस्थान की माङ्गलिक तैयारी की। गाँव की बांधव-वृद्धाओं ने आशीर्वाद दिये, परिजनों को बूढ़ी स्त्रियों ने बाण का अभिनन्दन किया, पूजितचरण गुरुओं ने बाण के प्रस्थान का समर्थन किया, कुलवृद्धों ने उसका सिर सूँघा, शुभ शकुनों से उसका उत्साह और भी बढ़ा, ज्योतिषियों ने नक्षत्र की गणना की, फिर शोभन मुहूर्त में जल से पूर्ण कलश की ओर दृष्टिपात करते हुए कुलदेवताओं को प्रणाम कर बाण प्रीतिकूट से निकल पड़ा।

पहले दिन गर्मी में किसी प्रकार धीरे-धीरे चण्डिकायतन-कानन पार कर वह मल्लकूट नामक गाँव में गया। वहाँ बाण का भाई और हार्दिक मित्र जगत्पति रहता था, उसने बाण का सत्कार किया। बाण उस दिन वहीं सुखपूर्वक ठहरा। दूसरे दिन गङ्गा पार करके यष्टिगृहक नाम के वनगाँव में रात बिताई। फिर राप्ती (अजिरवती) के किनारे मणितारा नामक गाँव के पास हर्ष के स्कन्धावार (छावनी) में पहुँचा जो राज-भवन के सन्निकट ही था।

स्कन्धावार में स्नान, भोजन और विश्राम के पश्चात् जब एक पहर दिन बाकी था और जब हर्ष भी भोजन आदि से निवृत्त हो चुके थे तब वह मेखलक के साथ राजद्वार के लिए चल पड़ा। मार्ग में प्रख्यात राजाओं के अनेक शिविर-सन्निवेश मिले। राजद्वार पर सम्राट् के दर्शन के लिए नाना देशों से सामन्तगण पधारे हुए थे। झुण्ड के झुण्ड हाथी, घोड़े और ऊँट खड़े थे और हजारों आतपत्रों से वहाँ श्वेतद्वीप का दृश्य था। सब लोग राजद्वार के राजकीय अनुयायियों से यह पूछते हुए नहीं थकते थे कि बाह्य कक्षा में उपस्थित होकर सम्राट् कब दर्शन देंगे? एक ओर एकान्त में बौद्ध, जैन, पाशुपत, संन्यासी, वर्णी सम्प्रदायों के साधु, सब देशों के लोग, समुद्री तटों के निवासी, म्लेच्छ और समस्त द्वीपों से संवाद लेकर लौटे हुए दूत- एकत्र थे। राजद्वार के इस दृश्य को देखकर बाण के

मन में आश्चर्य हुआ। द्वारपालों ने मेखलक को दूर ही से पहचान लिया। 'क्षण भर आप यहीं ठहरें' वाण से यह कह कर मेखलक बेरोक भीतर चला गया। थोड़ी देर बाद वह महाप्रतीहारों के प्रधान दौवारिक पारियात्र के साथ वापस आया। मेखलक द्वारा परिचित होकर पारियात्र ने वाण को प्रणाम किया और विनयपूर्वक कहा—'देव के दर्शन के लिए भीतर पधारिये, आप पर देव की प्रसन्नता है।' वाण ने 'मैं धन्य हूँ. जो देव मुझे इस प्रकार अपने अनुग्रह का पात्र समझते हैं' यह कहते हुए उसके साथ भीतर प्रवेश किया। तब वाण ने वनायु, आरट्ठ, काम्बोज, भरद्वाज, सिन्ध और पारस देश के राजवल्लभ अश्वों से भरी हुई मन्दुरा देखी। कुछ दूर हट कर बाईं ओर इभधिष्ण्यागार या हाथियों का लम्बा-चौड़ा बाड़ा मिला। वहाँ वाण ने सम्राट् के मुख्य हाथी दर्पशात को देखा। उसे देखकर वाण बहुत आश्चर्यित हुआ और सोचने लगा-निश्चय ही इस महागज के निर्माण में बड़े-बड़े पर्वत परमाणु बनाये गये होंगे, नहीं तो यह गौरव कहाँ से इसमें आता? इस प्रकार फिर तीन कक्षाओं को पार कर वाण ने मुक्तास्थानमण्डप के सामने वाले आँगन में सम्राट् हर्ष के दर्शन किये।

तब सम्राट् के सामने आकर वाण ने दाहिना हाथ उठा कर 'स्वस्ति' शब्द का उच्चारण किया। हर्ष ने उसे देख कर दौवारिक से पूछा—'यह वही वाण है?' दौवारिक ने कहा-'देव का कथन सत्य है, वह यही वाण है।' इस पर हर्ष ने कहा—'मैं इसे तब तक नहीं देखना चाहता जब तक यह मेरा प्रसाद प्राप्त न कर ले।' यह कह कर उन्होंने अपने पीछे बैठे हुए मालवराज के पुत्र (माधवगुप्त?) से कहा—'यह भारी भुजङ्ग (आवारा) है।'

वाण राजा के अभिप्राय को नहीं समझ सका। सारी राज-मण्डली में सन्नाटा छा गया। वाण कुछ देर तक चुप रह कर बोला—'आप इस प्रकार की बात कैसे कहते हैं? जैसे आपको मेरे विषय में सच्ची बात का पता न हो, या मेरा विश्वास न हो, या आपकी बुद्धि दूसरों पर निर्भर रहती है, अथवा आप स्वयं लोक के वृत्तान्त से अनभिज्ञ हों। लोगों के स्वभाव और फैली हुई बात मनमानी और तरह-तरह की होती हैं। किन्तु श्रेष्ठ लोगों को ठीक-ठीक देखना चाहिए। मुझे साधारण समझ कर अनाप-शनाप कल्पना न कीजिए। मैं सोमपान करने वाले वात्स्यायन ब्राह्मणों के वंश में जन्मा हूँ। समय से मेरे यज्ञोपवीत आदि संस्कार हुए हैं। मैंने अङ्गों के साथ वेद का सम्यक् प्रकार से स्वाध्याय किया है। अपनी शक्ति के अनुसार शास्त्रों का भी श्रवण मैंने किया है। विवाह के क्षण से लेकर मैं नियमित गृहस्थ हूँ। तो मुझमें क्या भुजङ्गपना है? मेरी नई अवस्था की कुछ चपलताएँ अवश्य हैं पर वे ऐसी नहीं जिससे इस लोक या परलोक का कोई विरोध हो; मैं इस बात को इनकार नहीं करता। मेरे हृदय में इसी बात का बहुत पश्चात्ताप है। हे देव, आप भगवान् बुद्ध के समान शान्तचित्त, मनु के समान वर्णाश्रममर्यादा के रक्षक और यम के समान दण्डधर हैं। सातों समुद्रों की करधनी और समस्त द्वीपों की माला से विराजित

पृथिवी पर आपका एकच्छत्र शासन है, तो कौन ऐसा निडर है जो सब प्रकार से दुःखद अभिनय करने की मन से भी कल्पना करता है ?……समय से स्वयं आप मेरे विषय में सब कुछ जान लेंगे, क्योंकि बुद्धिमानों का यह स्वभाव होता है कि वे किसी बात में विपरीत हठ नहीं रखते।' इतना कह कर बाण चुप हो गया। सम्राट् ने भी 'मैंने ऐसा ही सुना था' बस इतना ही कहा। लेकिन बातचीत और आसन-दान आदि के प्रसाद से उसे अनुगृहीत नहीं किया। केवल स्नेह से भरे अमृत की वर्षा करने वाले दृष्टिपात मात्र से उसको नहलाते हुए उन्होंने अपने अन्तरतम की प्रीति प्रकट की। जब सूर्य अस्त होने लगा तो सम्राट् राजसमूह से विदा लेकर महल के अन्दर चले गये।

बाण वहाँ से निकल कर अपने निवास स्थान स्कन्धावार में लौट आया। तब वह अपने मन में सोचने लगा—'सचमुच देव हर्ष बड़े उदार हैं, क्योंकि मेरे बाल्यकाल की चपलताओं से फैले हुए जनापवाद को सुनकर कुपित होने पर भी मन में मेरे प्रति स्नेह अवश्य रखते हैं। मैं उनकी आँखों पर चढ़ा हुआ (अक्षिगत, अर्थात् कोपभाजन) होता तो कैसे दर्शन देने की कृपा करते। वह मुझे गुणी देखना चाहते हैं। बड़ों की यही रीति है कि छोटों को बिना मुख से कहे ही केवल व्यवहार से विनय सिखा देते हैं। मुझे धिक्कार है यदि अपने ही दोषों से अन्धा होकर और केवल अनादर से दुःखी होकर मैं ऐसे गुणवान् राजा के विषय में कुछ सोचने लगूँ। अब मैं सर्वथा वही करूँगा जिससे समय से वे ठीक मुझे पहचान लें। बाण ने ऐसा निश्चय किया और दूसरे दिन प्रातःकाल वह स्कन्धावार से निकल कर मित्रों और रिश्तेदारों के घर में ठहरा। तब तक सम्राट् स्वयं उसके स्वभाव से परिचित होकर उस पर प्रसन्न हो गये और फिर वह राजभवन में आकर जम गया। थोड़े ही दिनों में सम्राट् उस पर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उसे अपने प्रसादजनित सम्मान, प्रेम, विश्वास, धन-सम्पत्ति, परिहास और प्रभाव की पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया।

इस प्रकार बाण सम्राट् हर्ष से पर्याप्त सम्मान पाकर किसी समय शरत्काल के आरम्भ में बन्धुओं को देखने की उत्कण्ठा से अपनी जन्म-भूमि प्रीतिकूट आया। बाण के भाई-बन्धु उसकी प्रशंसा करते हुए उसके स्वागत में निकल पड़े। सबसे मिलकर बाण बहुत प्रसन्न हुआ। उसने सबसे पूछा—'आप लोग सुखपूर्वक तो रहे ? यज्ञ का कार्य चल रहा है ? प्रतिदिन वेदाभ्यास तो अविच्छिन्न है न ? व्याकरण के सम्बन्ध में शास्त्रार्थ तो होते रहते हैं ? काव्य की चर्चा तो बराबर रहती है ?' तब उन्होंने उससे कहा—'हम लोग सर्वथा कुशल से हैं। अपनी शक्ति और विभव के अनुसार समय से सब लोग ब्राह्मण के उचित क्रिया-कलाप करते हैं। जब तुम परमेश्वर महाराज हर्ष के पार्श्वभाग में वेत्रासन पर स्थित हो तो विशेष रूप से हम लोग प्रसन्न हैं।' इस प्रकार की अनेक बातों से मन बहलाता हुआ बाण उनके साथ देर तक ठहरा। मध्याह्न में उठ कर वह स्नानादि से निवृत्त

हुआ। भोजन के पश्चात् जब वह बैठा तो सब के सब जुट आये और उसे घेर कर बैठ गये। इसी बीच सुदृष्टि नामक बाण का पुस्तक-वाचक आ गया और उसके कुछ दूर पर रखी हुई वेत्रपीठिका पर बैठ गया। क्षणभर ठहर कर तत्काल उसने सूत की बेठन खोल दी। पुस्तक को उसने सरकंडों के बने पीढ़े पर रख दिया। पीछे समीप में बैठे हुए मधुकर और पारावत नामक वंशी बजाने वाले बाण के दो मित्रों ने जब अवकाश दिया, तब सुदृष्टि वायुपुराण का पाठ करने लगा।

जब सुदृष्टि वायुपुराण का पाठ कर रहा था, उसी समय सूचीबाण नामक वन्दी ने दो आर्याछन्दों का गान किया। उसने कहा कि वायु-पुराण हर्ष के चरित से अभिन्न प्रतीत होता है। आर्याओं को सुन कर बाण के चार चचेरे भाइयों—गणपति, अधिपति, तारापति और श्यामल ने एक दूसरे की ओर देखा। तत्पश्चात् उन चारों में सबसे छोटा बाण का अत्यन्त प्रिय श्यामल बोला—'तात बाण, प्रातःस्मरणीय, पुण्यों के राशि देव हर्ष का चरित पूर्वपुरुषों की वंशपरम्परा के साथ हम सुनना चाहते हैं। बहुत दिनों से हम लोगों की यह इच्छा बनी हुई है। अतः आप कहें। यह भार्ववंश पुण्यवान् राजर्षि के पवित्र चरित को सुनकर और पवित्र बन जाय।' बाण ने हँस कर अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए दूसरे दिन हर्षचरित का वर्णन आरम्भ करने के लिए निश्चय किया और संध्योपासन के लिए शोण के तीर पर चले गये।

इस प्रकार बाण ने दूसरे दिन हर्ष के पूर्व-पुरुषों की वंशपरम्परा के साथ हर्षचरित का वर्णन आरम्भ किया। बाण के जीवन के सम्बन्ध में इसके अतिरिक्त कोई वृत्तान्त उपलब्ध नहीं होता।

हर्षचरित के अतिरिक्त बाण की दूसरी कृति कादम्बरी है। कादम्बरी संस्कृत गद्य-साहित्य के चरम-उत्कर्ष का एक उज्ज्वल उदाहरण है। कादम्बरी के आरम्भ में भी बाण ने संक्षेप में अपनी वंशपरम्परा दी है। कादम्बरी की वंशपरम्परा में कुबेर के बाद अर्थपति का उल्लेख आता है। बीच में पाशुपत का नाम छूट गया है। हर्ष की मृत्यु के पश्चात् बाण कन्नौज से प्रीतिकूट लौट आये। वहीं इन्होंने अपने दोनों ग्रन्थों को लिखा। हर्षचरित से हर्ष के जीवनवृत्त के सम्बन्ध की आकांक्षा की पर्याप्त मात्रा में पूर्ति नहीं होती। बाण जैसे ग्रन्थ को पूरा लिखने में उदासीन हो गये। कादम्बरी को भी वे अपूर्ण छोड़ गये। सौभाग्य से उनके सुयोग्य पुत्र ने उसे पूरा किया। कुछ लोग उनके पुत्र का नाम भूषणबाण या भूषणभट्ट बतलाते हैं। कादम्बरी की कुछ हस्तलिखित प्रतियों में 'पुलिन' या 'पुलिन्द' नाम मिलता है। धनपाल की तिलकमञ्जरी' में श्लेष से पुलिन्द ही का उल्लेख है—

> केवलोऽपि स्फुरन्बाणः करोति विमदान् कवीन्।
> किं पुनः क्लृप्तसन्धानं पुलिन्दकृतसन्निधिः॥ (ति. म. २६ श्लोक)

वाण के समकालीन कवियों में मातंगदिवाकर और मयूर का उल्लेख आता है। अनुश्रुति के अनुसार मयूर जिन्होंने सूर्यशतक का निर्माण किया है, वाण के श्यालक बताये जाते हैं। वाण ने अपने विवाह का उल्लेख सम्राट् हर्ष से मिलने के प्रसंग में ही किया है—'दारपरिग्रहादस्यागारिकोऽस्मि।' इसके अतिरिक्त उनके वैवाहिक जीवन के सम्बन्ध में कोई प्रामाणिक तथ्य प्राप्त नहीं है।

वाण की रचनाएँ

वाण की प्रामाणिक रचनाओं में हर्षचरित और कादम्बरी के अतिरिक्त कोई दूसरी नहीं है। यों तो उनके नाम पर कई अन्य रचनाओं का भी उल्लेख आता है। चण्डीशतक वाण का निर्मित समझा जाता है। इसमें १०० श्लोकों में वाण ने भगवती दुर्गा की स्तुति की है। पार्वती-परिणय नाटक को भी कुछ लोगों ने वाण ही का निर्माण समझा था। परन्तु कीथ ने स्पष्ट कर दिया कि यह नाटक १५ वीं शताब्दी के कवि वामनभट्ट वाण की रचना है। वामनभट्ट वाण तैलंगदेशीय वत्सगोत्री ब्राह्मण थे। नलचम्पू के टीकाकार चण्डपाल और गुणविनयगणि के अनुसार वाण ने मुकुटताड़ितक नाटक की भी रचना की थी, पर यह ग्रन्थ अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ है। जहाँ तक वाण की शैली और कल्पना का क्षेत्र है उसकी भूमिका में वाण के हर्षचरित और कादम्बरी के अतिरिक्त ये अन्य कृतियाँ किसी अंश में भी संगत नहीं बैठतीं। अतः प्रामाणिक तथ्य के अभाव में यह मान लेना ही ठीक है कि इन दोनों के अतिरिक्त वाण की कोई अन्य रचना नहीं है।

हर्षचरित

हर्षचरित एक आख्यायिका है। वाण ने ग्रन्थ के आरम्भ में स्वयं कहा है—'करोम्याख्यायिकाम्भोधौ जिह्वाप्लवनचापलम्' (श्लोक २०)। आचार्यों ने आख्यायिका का जो स्वरूप निर्धारित किया है उसका समन्वय विशेष रूप से हर्षचरित में मिल जाता है। प्रसंगतः हम कथा और आख्यायिका के भेद की चर्चा करेंगे। हर्षचरित एक ऐतिहासिक काव्य है। यह कहा जा सकता है कि संस्कृत-साहित्य में ऐतिहासिक काव्य लिखने का शुभारम्भ वाण के द्वारा ही हुआ। प्राचीन कवि ऐतिहासिक पुरुषों के चरित को लेकर काव्य का निर्माण करने में सम्भवतः अपनी हीनता समझते थे। सामान्य व्यक्ति को काव्य का नायक बनाकर लिखना उनके विचार में शोभन न था। वाण ने हर्षचरित लिख कर इस कलङ्क को मिटाने का प्रथम प्रयास किया। आगे चलकर कई ऐतिहासिक पुरुषों के जीवनवृत्त पर कवियों ने अनेक चरित-काव्य लिखे। हर्षचरित आठ उच्छ्वासों मे विभक्त है। प्रथम सवा दो उच्छ्वासों में वाण ने आत्मकथा लिखी है और शेष में सम्राट् हर्षवर्धन का चरित है। आरम्भ हर्ष के वंश-प्रवर्तक पुष्पभूति के वर्णन से किया

गया है। हर्ष के पिता का नाम प्रभाकरवर्धन और माता का यशोवती था। उनके बड़े भाई का नाम राज्यवर्धन था। राज्यवर्धन का जन्म ५८८ ई० में हुआ। दो वर्ष के बाद हर्ष उत्पन्न हुए तथा तीन वर्ष के बाद राज्यश्री का जन्म हुआ। राज्यश्री का विवाह ग्रहवर्मा से हुआ। ग्रहवर्मा मौखरि क्षत्रिय एवं अवन्तिवर्मा का पुत्र था। हूणों द्वारा राज्य के उत्तर में आक्रमण किये जाने पर राज्यवर्धन एक बड़ी सेना लेकर उन्हें रोकने के लिए गये। राज्यवर्धन लौटे न थे कि इधर प्रभाकरवर्धन का देहान्त हो गया। हर्ष की माता यशोवती पति की मृत्यु होने से पूर्व ही चिता में बैठ कर सती हो गई। इधर मालवा के राजा ने कन्नौज पर आक्रमण कर दिया। ग्रहवर्मा को मार कर राज्यश्री मालवाधिप के कैद में आ गयी। राज्यवर्धन ने हर्ष को राज्य का भार देकर शत्रु के विरुद्ध प्रयाण किया। उन्होंने मालवराज को परास्त कर दिया, परन्तु उसके सहायक गौडाधिप ने धोखे से उन्हें मार डाला। हर्ष को बड़े भाई की असामयिक मृत्यु से बहुत क्षोभ हुआ। प्रतिशोध के लिए उन्होंने प्रस्थान किया। मार्ग में उन्हें दिवाकर मित्र नामक बौद्ध भिक्षु द्वारा अपनी बहन राज्यश्री का पता लगा जो बन्दीगृह से छूट कर विन्ध्याटवी में भाग निकली थी। राज्यश्री के मिलने के बाद हर्षचरित समाप्त हो जाता है।

इस प्रकार यह एक ऐतिहासिक तथ्य बाण की रचना में अलंकृत काव्यमय शैली में आया है। जगह-जगह पर अलौकिक पात्रों और पौराणिक कथाओं का भी उपयोग किया गया है। किसी घटना के तिथिक्रम का उल्लेख नहीं है। कुछ ऐतिहासिक पात्रों के नाम का भी उल्लेख नहीं है। राज्यवर्धन को मारने वाले गौडाधिप का हर्षचरित में नामोल्लेख नहीं किया है। इन कारणों से हर्षचरित के ऐतिहासिक महत्त्व के कम होने पर भी हर्ष के समकालीन युग की सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक परिस्थितियों के अध्ययन के लिए हर्षचरित से बढ़ कर कोई दूसरा सहायक ग्रन्थ नहीं है। किसी का कहना कि 'हर्षचरित सभ्यता का विश्वकोश है' किसी अंश में अत्युक्ति नहीं। समकालीन संस्थाओं का चित्र इस तरह हर्षचरित में निखर उठा है। हर्षचरित को अजन्ता के कलामण्डप से सन्तुलित करना भी सर्वांशतः ठीक है। ह्वेनत्सांग के संस्मरणों और हर्षचरित के घटना-क्रमों का ठीक-ठीक मेल हो जाने से हर्षचरित के महत्त्व का पता चलता है। इसके अतिरिक्त संस्कृत-साहित्य के इतिहास की दृष्टि से भी हर्षचरित का महत्त्व है। आरम्भ में बाण ने महाभारत, वासवदत्ता एवं बृहत्कथा नामक ग्रन्थों की तथा भास, कालिदास, प्रवरसेन, भट्टार हरिचन्द्र एवं आढ्यराज नामक कवियों की प्रशंसा की है। बाण के स्थितिकाल का निश्चय हो जाने से अन्य कवियों के स्थितिकाल के निर्णय में बड़ी सहायता मिलती है।

हर्षचरित बाण की प्रथम रचना है। यद्यपि भाषा और भाव की दृष्टि से कादम्बरी की तरह प्रौढता हर्षचरित में नहीं, तथापि इन दोनों के अभिव्यक्ति-सामर्थ्य में कोई अपूर्णता भी अभिलक्षित नहीं होती। बाण की 'स्फुरत्कलालापविलासकोमला कविता-नववधू'

कादम्बरी में जो कौतुकाधिक राग उत्पन्न करती है, हर्षचरित में विवाह की योग्यता होने पर भी अविवाहिता होने के कारण अज्ञातयौवना-सी लगती है। सम्भव है इसी कारण वह कादम्बरी की तरह सहृदय-जनों में कौतुकाधिक राग उत्पन्न न कर सकी हो। स्थान-स्थान पर बाण की अद्भुत वर्णनाशक्ति का पूर्वाभास हर्षचरित में मिल जाता है।

पात्रालोचन

[अब यहाँ संक्षेप में हर्षचरित के पात्रों के सम्बन्ध में जानना आवश्यक है। मुख्य पात्र के रूप में सरस्वती, सावित्री, बाण, पुष्पभूति, भैरवाचार्य, प्रभाकरवर्धन, यशोवती, राज्यवर्धन, हर्षवर्धन तथा राज्यश्री के चरित्र हर्षचरित में निर्दिष्ट हैं। अतः उन्हीं के सम्बन्ध में अग्रिम वक्तव्य है।]

सरस्वती और सावित्री—सरस्वती वाणी की अधिष्ठात्री देवी और ब्रह्माजी की कुमारी कन्या थी। विद्या की देवी होने के कारण और बालभाव की चपलता से अंशतः उसमें कुछ अभिमान की मात्रा भी थी। दुर्वासा के स्वरहीन सामगान पर वह हँस पड़ी जिससे उस क्रोधान्ध ऋषि के शाप से ग्रस्त हुई। दुर्वासा ने उसकी विद्याजनित उन्नति को चूर करने के लिए नीचे मर्त्यलोक में चले जाने का शाप दे डाला। परन्तु सरस्वती ने ऋषि के शाप को शिर झुका कर मान लिया। उसकी प्रिय सखी सावित्री ऋषि के इस अन्याय को न सह सकी और स्वयं प्रतिशाप देने के लिए उद्यत हो गई। तब सरस्वती ने उसे रोका और कहा—'सखी, तू अपना क्रोध शान्त कर, संस्कारशून्य बुद्धि होने पर भी ब्राह्मण सर्वथा आदरणीय है।' सरस्वती की इस वाणी में उसकी अपार सहिष्णुता निहित है। वह निरपराध होने पर भी कुछ नहीं बोलती और सावित्री को साथ लेकर मर्त्यलोक के लिए ब्रह्मलोक से प्रस्थान कर देती है। ब्रह्मा जी ने उसके शाप को पुत्र का मुख देखने की अवधि दी। सावित्री ने उसे बहुत ढाढ़स दिया और वे दोनों शोण के तट पर निवास करने लगीं। वहीं पहुँचे हुए दधीच से सरस्वती का प्रणय हो गया। सरस्वती की अपेक्षा सावित्री अधिक प्रगल्भ थी। सरस्वती मुग्धा और सावित्री प्रगल्भा थी। दधीच के प्रथम दर्शन से आकृष्ट होने पर भी सरस्वती ने अपना प्रणय-भाव बिलकुल छिपाये रखा। उसके चले जाने पर शून्य-शून्य-सी रहने लगी। जब दधीच का कुशल-समाचार लेकर मालती आई तब एकान्त में सरस्वती ने दधीच के प्रति अपना अनुराग व्यक्त किया। दधीच को लाने के लिए मालती के चले जाने पर उसने सावित्री से यह रहस्य प्रकट कर दिया। इस प्रकार सरस्वती एक सहिष्णु, लज्जाशील नारी के रूप में चित्रित है और सावित्री का चित्रण एक संवेदनशील नारी के रूप में हुआ है।

बाण—हर्षचरित के रचयिता बाण भी एक मुख्य पात्र है। मानना तो यह चाहिए कि हर्षचरित दो विभागों में विभक्त आख्यायिका है। प्रथम भाग के मुख्य पात्र स्वयं

महाकवि बाण हैं और द्वितीय भाग के सम्राट् हर्षवर्धन। बाण ने अपने चरित्र का जितनी धार्मिकता और स्पष्टता से चित्रण किया है उतना शायद ही हर्ष के चित्रण में हो। यद्यपि यह बात नहीं फिर भी कवि ने अपना दोष और गुण सब एक तटस्थ पर्यवेक्षक के नाते कह डाले हैं। बाण की तटस्थता इसी से व्यक्त होती है कि उन्होंने अपनी आत्मकथा में 'उत्तम पुरुष' के स्थान पर अन्य पुरुष का ही प्रयोग किया है। 'मैं उत्पन्न हुआ' के स्थान पर 'बाण उत्पन्न हुआ, बढ़ा और यौवन के आरम्भ में आवारा (इत्वर) बन गया' आदि साधारण पात्र के रूप में ही बाण ने अपने को रखा है। सम्भव था अगर उत्तम पुरुष 'मैं' का प्रयोग करते, तो अपने दोष पक्ष के उल्लेख में इतनी स्पष्टता न होती। छोटी अवस्था में ही बाण की माता मर गई। पिता ने ही किसी प्रकार पाल-पोस कर बढ़ाया। दुर्भाग्य से जब बाण चौदह वर्ष का हुआ तभी उसके पिता भी दिवंगत हो गए। अब मातृ-पितृहीन बाण को सुधारने वाला कोई नहीं मिला। मिले वही नाचने-गाने के शौकीन संगी-साथी; उनके साथ रहने से बाण की स्वतन्त्रता बढ़ती गई और फलतः यौवन के आरम्भ में ही वह आवारा (इत्वर) हो गया। इन्हीं साथियों के साथ यहाँ-वहाँ मारा-मारा फिरने लगा। कभी किसी नगर में जाकर नाटक खेलता, तो कभी किसी नगर में। इस इत्वरवृत्ति ने यद्यपि बाण को पितृ-पितामह द्वारा अर्जित विभव एवं अविच्छिन्न विद्या-प्रसंग से वंचित कर दिया, तथापि बाण ने अपने उसी भ्रमणशील जीवन में, जब उसकी लोग खिल्ली उड़ा रहे थे, अनुभव के चार स्रोत पकड़ लिए थे। उसके अनुभव के प्रथम स्रोत राजकुल थे, उनमें घूम-घूम कर वह उनके प्रत्येक कर्मचारी से मिलता और वहाँ के उदार व्यवहारों से परिचित होता। दूसरा स्रोत उस समय के गुरुकुल थे, वहाँ जा-जाकर अध्ययन-अध्यापन की विधियों को उसने खूब समझ लिया। तीसरा स्रोत गुणी जनों की गोष्ठियाँ मिलीं, जिनमें उसने अनमोल बातें सुनी। चौथा स्रोत सूझ-बूझ वाले विदग्ध जनों की मंडलियाँ थीं, उसने उनमें भीतर घुस कर थाह ली। इस प्रकार वह अपने जीवन के अल्हड़पन और घुमक्कड़ी प्रवृत्ति से अपनी आँखों देखे हुए लोकजीवन का चौचक अनुभव पाकर अपने घर वापस आया। तब उसके अन्दर जो पुश्तैनी प्रतिभा थी वह चमक उठी।

बाण स्वभावतः अपने भाई-बन्धुओं में हिल-मिल जाता था। उसे अपने गाँव में अपने लोगों के बीच मोक्ष का आनन्द मिलता था। वह सम्राट् के पास से भी उस आनन्द के लिए चला आता था। अपनी इस प्रकृति से बाण बहुत अधिक जनप्रिय हो गया था। उसमें नम्रता भी खूब थी। अपने बड़ों के सामने झुक जाता था। उसने अपने आरम्भिक जीवन की समस्त बुराइयों को जड़ से खोद कर निकाल दिया और अनुभवी होने के बाद स्वयं अपना निर्माण किया। यद्यपि बाण ने कादम्बरी में भर्चु या भर्त्सु नामक अपने गुरु का उल्लेख किया है, तथापि यह नहीं विदित होता कि बाण के जीवन के निर्माण में भर्चुशर्मा का कितना हाथ था। बाण के व्यक्तित्व में दो बातें बड़े महत्त्व की थीं, एक तो वह जन्म से ही स्वभावगम्भीर अर्थात् विस्तृत मेधाशक्ति वाला था, दूसरे वह

प्रत्येक वस्तु की जानकारी प्राप्त करने के लिए सदा उत्सुक रहता था। इन दोनों बातों से बाण को मार्गस्थ होने में बड़ी सहायता मिली।

बाण के व्यक्तित्व की एक और विशेषता है, वह है उसका स्वाभिमान। वह जितना नम्र था उतना ही स्वाभिमानी भी। वह किसी की परवाह नहीं करता था। उसे क्या पड़ी थी कि वह राजकुल में प्रवेश पाकर सेवा में हाजिरी बजाता और सेवकों जैसी चापलूसी करता! जब हर्ष के भाई कृष्ण ने अपने दूत द्वारा संदेश भेजा कि बिना समय गँवाए राजकुल में पधारें तो बाण बहुत सोच में पड़ गया। कृष्ण के दूत ने संदेश में यह भी कहा कि सेवा में झंझट सोच कर उदासीन न होना चाहिए। इससे प्रतीत होता है कि बाण के स्वाभिमानी व्यक्तित्व से कृष्ण खूब परिचित थे। उन्हें डर था कि बाण कहीं सम्राट् के पास आना अस्वीकार न कर दें। बाण से डाह करने वालों ने उसकी आरम्भिक चाल-चलन की बात लेकर सम्राट् के कान भर दिये थे, जिसका परिमार्जन बड़े प्रयत्न से कृष्ण ने कर दिया। बाण अपने अकारणबन्धु कृष्ण का संदेश सुन कर बहुत सोच में पड़ गए। राजसेवा उन्हें कष्टप्रद लगती थी। राजदरबार में बड़े खतरे नजर आते थे। न उनके पुरखों में किसी की इस तरफ रुचि रही, न उनके ही मन में ऐसी बात थी कि वे राजकुल में जाकर बुद्धि-सम्बन्धी विषयों का आदान-प्रदान करें। न विद्वानों की गोष्ठियों में बैठने की विलक्षण चतुराई ही उनके पास थी। चापलूसी से भी उन्हें बड़ी चिढ़ थी। ऐसी स्थिति में भी उन्होंने जाने का निश्चय कर लिया। स्वाभिमान उन्हें रोकता था, परन्तु जब यह ध्यान में आता कि सम्राट् मुझको कुछ ऐसा वैसा समझ गए हैं तो उनका स्वाभिमान उनको चलने के लिए ही प्रेरित करने लगा। स्वाभिमानी बाण को यह कैसे सह्य होता कि दूसरा उसे हीन दृष्टि से देखे, जब कि वह हीन नहीं। अपनी अहीनता का सम्यग्ज्ञान होने पर भी बाण में अहङ्कार का लेश भी न था। उन्हीं के निर्देश से पता चलता है कि वे रूप-सम्पन्न थे, पर उनके मन में सुन्दर रूप से मिलने वाले आदर की इच्छा न थी। उनमें प्रगाढ़ शास्त्रीय ज्ञान था लेकिन बुद्धि-सम्बन्धी विषयों पर लड़झगड़ के लिए दिखावा करने जाना वह सर्वथा व्यर्थ समझते थे।

जब सम्राट् हर्ष ने प्रथम बार बाण को देख कर हँसते हुए 'महानयं भुजङ्गः' कह डाला तो बाण अपनी स्वतंत्र प्रकृति और स्वाभिमान से संवलित ब्रह्मतेज का संवरण न कर सके। थोड़ी देर तक चुप रह कर उन्होंने पूछ ही डाला—'का मे भुजङ्गता?' बाण का व्यक्तित्व इस प्रकरण में जितना स्पष्ट खुल सका है उतना अन्यत्र नहीं। उस समय बाण को यह सुध-बुध न थी कि वे महाराजाधिराज हर्षवर्धन के सामने खड़े हैं। उनका स्वाभिमान तत्काल प्रज्वलित हो उठा। जब कि बाण में अब कोई भुजङ्गपना न रह गया था तब भी दूसरों के कान भर देने से केवल ऐसी निराधार कल्पना कर देना कहाँ तक उचित था। उसने हर्ष से स्पष्ट कह दिया कि 'आप नेय की तरह बोलते हैं अर्थात् आपकी बुद्धि

दूसरों पर निर्भर करती है। आप मुझे साधारण व्यक्ति मत समझिये। मैंने वात्स्यायन ब्राह्मणों के कुल में जन्म लिया है। सांगवेद का स्वाध्याय और अनेक शास्त्र भी सुने हैं। विवाह हो जाने के बाद नियमित गृहस्थ हूँ। (इससे यह पता चलता है कि बाण उस समय तक विवाहित हो गए थे और तभी से उनके जीवन में स्थिरता आई) यौवन के आरम्भ में अवश्य ही मुझ में कुछ चपलताएँ थीं, इससे मैं इनकार न करूँगा, किन्तु वे ऐसी थीं जिनका इस लोक या उस लोक में विरोध न हो।' बाण की इस वाणी में सचमुच उनका ब्रह्मतेज निखर उठा है। फिर बाण अपनी नम्रता का अवलम्बन ले लेते हैं। बाण ने अपने आप को खूब पहचाना था। वे अपनी कमजोरियों को अच्छी तरह समझ गए थे और उन्हें हटाने का प्रयत्न भी करते थे। जैसा कि उन्होंने स्कन्धावार में दरबार से लौटने पर सोचा था कि मुझे धिक्कार है यदि मैं अपने दोषों के प्रति अन्धा होकर केवल अनादार की पीड़ा अनुभव करके इस गुणी सम्राट् के प्रति कुछ और सोचने लगूँ। अवश्य ही मैं वह करूँगा जिससे यह कुछ समय बाद मुझे ठीक जान लें।

पुष्पभूति और भैरवाचार्य—पुष्पभूति ही हर्ष के वर्धनवंश के आदि संस्थापक थे। वे शिव के अनन्य उपासक थे। उनके प्रभाव से घर-घर में शिव की पूजा होती थी। राजा पुष्पभूति वेताल-साधना भी करते थे। इस कार्य में उनका सहायक भैरवाचार्य नामक दाक्षिणात्य महाशैव था। भैरवाचार्य से मिलने का वृत्तान्त यह है कि एक दिन उस राजा के पास एक परिव्राट् आया। वह भैरवाचार्य का मुख्य शिष्य था। राजा के पूछने पर कि 'भैरवाचार्य कहाँ हैं?' उस शिष्य ने 'सरस्वती के किनारे शून्यायतन में ठहरे हैं' यह कह कर पाँच-चाँदी के कमल भैरवाचार्य की ओर से अर्पित किए। दूसरे दिन पुष्पभूति ने पुराने देवी के मन्दिर के उत्तर बिल्ववाटिका में आसन लगाए भैरवाचार्य को साक्षात् शिव की तरह देखा। भैरवाचार्य से राजा की मित्रता हो गई। भैरवाचार्य के शिष्य ने ब्रह्मराक्षस के हाथ से छीन कर लाई अट्टहास नामक तलवार राजा को अर्पित की। राजा ने भैरवाचार्य की बेताल साधन में बड़ी सहायता की। फलतः श्रीकंठ नाग को हरा कर उसने लक्ष्मी को प्रसन्न किया। प्रसन्न लक्ष्मी द्वारा वर माँगने के लिए प्रेरित किए जाने पर पुष्पभूति ने अपने प्रिय सुहृद् भैरवाचार्य की सिद्धि के लिए ही वर माँगा। इससे पुष्पभूति की निःस्वार्थपरता व्यक्त होती है। लक्ष्मी ने उसे वर देकर राजा की शिव-भट्टारक के प्रति अनन्य भक्ति देखकर वरदान में यह भी कहा—'तुम महान् राजवंश के संस्थापक होंगे जिसमें हरिश्चन्द्र के समान सर्वद्वीपों का भोक्ता हर्ष नाम का चक्रवर्ती जन्म लेगा।' भैरवाचार्य विद्याधर के शरीर को प्राप्त हुआ। उसने राजा का बहुत बड़ा उपकार माना। इस प्रकार पुष्पभूति के रूप में एक ऐसे व्यक्ति का चित्रण किया गया है जो परोपकार में ही जीवन को लगा देता है और स्वप्न में भी स्वार्थ का चिन्तन नहीं करता।

प्रभाकरवर्धन और यशोवती—पुष्पभूति के वंश में प्रभाकरवर्धन बड़ा प्रतापी राजा हुआ। उसने सिन्ध, गान्धार, गुर्जर, लाट, मालव देशों पर विजय प्राप्त की थी।

हूणरूपी हिरन के लिए वह केसरी था। इस प्रकार वह स्थाण्वीश्वर के छोटे से राज्य को बढ़ा कर महाराजाधिराज की पदवी से विभूषित हुआ। इसी कारण उसका दूसरा नाम प्रतापशील था। प्रभाकरवर्धन अत्यन्त पराक्रमी होते हुए भी दयावान् था। उसने मालवा के राजा के मारे जाने पर उसके अनाथ कुमारों के साथ मृदु व्यवहार किया। वह सूर्य का भक्त था। उसकी रानी यशोवती थी। हर्षचरित में यशोवती के चरित्र का चित्रण एक भारतीय पतिव्रता के रूप में हुआ है। रानी यशोवती के गर्भ से ही राज्यवर्धन, हर्षवर्धन और राज्यश्री ने जन्म लिया। प्रभाकरवर्धन ने राज्यश्री का विवाह बड़ी धूम-धाम से मौखरिवंशज अवन्तिवर्मा के ज्येष्ठ पुत्र ग्रहवर्मा के साथ किया। राजा प्रभाकरवर्धन ने अपने योग्य पुत्र राज्यवर्धन को हूणों से युद्ध करने के लिए भेजा। उसके पीछे-पीछे १४-१५ वर्ष की आयु वाला हर्ष भी कुछ पड़ावों तक गया, पर वह शिकार खेलने की रुचि से हिमालय की तराइयों में रुक गया। अचानक पिता की बीमारी का समाचार पाकर हर्ष वहाँ से लौट आया। हर्ष के आने पर पति के मरने के पूर्व ही यशोवती ने अग्नि में प्रवेश कर भारतीय नारी आदर्श का उज्ज्वल चित्र प्रस्तुत किया। बाद में प्रभाकरवर्धन की मृत्यु हुई।

राज्यवर्धन—एक आज्ञाकारी पुत्र, स्नेहशील भाई और शूर योद्धा के रूप में राज्यवर्धन का चित्रण किया गया है। वह पिता की आज्ञा पाते ही हूणों के साथ युद्ध करने के लिये चला जाता है। बालक हर्ष भी कुछ पड़ावों तक उसके साथ चलता है, पर हिमालय की तराइयों में आखेट के लिये रुक जाता है। जब तक राज्यवर्धन परदेश से नहीं लौटा था, इसी बीच प्रभाकरवर्धन की मृत्यु हो गई और माता यशोवती भी न रही। हर्ष ने राज्यवर्धन के पास खबर भिजवा दी। इधर हर्ष के मन में बड़ी भारी चिन्ता यह होने लगी कि पिताजी का समाचार सुनकर बड़े भैया (आर्य) भी कहीं बुद्ध की तरह आचारण न कर बैठें। कहीं राज्यवर्धन आश्रम में प्रविष्ट न हो जायें। कहीं वह पुरुष-सिंह किसी गुफा में न चला जाय। अनाथ पृथिवी को देखकर कहीं निरन्तर अश्रुधारा प्रवाहित न करने लगें। प्रथम बार इस आपत्ति से विह्वल होकर आत्मचिन्तन में न लग जायँ। संसार को अनित्य समझकर पास आती हुई राज्यलक्ष्मी से विरक्त न हो जायँ। कहीं दुःखज्वाला का शमन करने के लिये जल में न डूब जायँ। यहाँ लौटने पर राजाओं के कहने पर पराङ्मुख न हो जायँ। इस प्रकार हर्ष अपने मन में कल्पना करते हुए राज्यवर्धन को बाट देखते रहे। भ्रातृप्रेम से अभिभूत हर्ष के मन के ये भाव राज्यवर्धन के शम-प्रधान व्यक्तित्व की ओर संकेत करते हैं। लगता है राज्यवर्धन आरम्भ से ही भगवान् बुद्ध के धर्म से आस्थावान् था। जैसा कि एक ताम्रपत्र के अनुसार उसे परम-सौगत भी कहा गया है। हर्ष को भी उपर्युक्त चिन्ता में भी राज्यवर्धन से विरक्त होने के पश्चात् बुद्ध के जीवन की झलक मिलती है। हर्ष को यह सन्देह था कि बुद्ध के समान वे भी कहीं न चले जायँ।

पितृ-शोक में अभिभूत होकर राज्यवर्धन जब लौटा तब यही घटना घटी। हर्ष से उसने कहा—'तुम राज्यभार ग्रहण करो, मैंने आज शस्त्र छोड़ा।' और तलवार हाथ से फेंक दी। राज्यवर्धन के इस कथन में उसकी निःस्पृहता पितृप्रेम, भ्रातृप्रेम आदि समस्त सद्वृत्तियों एक साथ उमड़ पड़ी है। इसी अवसर पर एक विचित्र घटना घट जाती है। एक परिचारक ने आकर खबर दी कि सम्राट् के मरने की खबर सुनकर दुरात्मा मालवराज ने ग्रहवर्मा को जान से मार डाला और राज्यश्री को कान्यकुब्ज के कारावास में डाल दिया। इस समाचार से तत्काल राज्यवर्धन का शोक जाता रहा, उसके स्थान पर क्रोध प्रतिष्ठित हो गया। उसने हर्ष से कहा—'तुम राज्य सँभालो, मैं मालवराज के कुल का नाश करने चला।' हर्ष ने जब यह कहा कि 'आर्य के प्रसाद से पहले भी मैं कभी वञ्चित न रहा। कृपा कर मुझे भी साथ ले चलें।' तो राज्यवर्धन ने कहा—'तुम ठहरो, मुझे अकेले ही शत्रु का नाश करने दो।' यह कहकर उसने उसी दिन शत्रु पर धावा बोल दिया।

राज्यवर्धन मालवराज की सेना को खेल ही खेल में जीत लेने पर भी गौड़ाधिप के कुचक्र से मारा जाता है। हर्ष के हृदय में राज्यवर्धन के प्रति अपार स्नेह था। उसने उसके मारे जाने का समाचार सुनकर उसकी चरण-रज का स्पर्श करके प्रतिज्ञा की—'कुछ ही दिनों में यदि गौड़ाधिप को न मार डालूँ तो स्वयं जल कर भस्म हो जाऊँगा।' हर्षचरित में राज्यवर्धन का व्यक्तित्व सर्वथा अकलुषित और स्नेह तथा पराक्रममय देखने में आता है।

हर्षवर्धन—कहा जा चुका है कि वर्धनवंश के आदि संस्थापक राजा पुष्पभूति को लक्ष्मी ने प्रसन्न होकर वरदान दिया था—'तुम्हारे वंश में हरिश्चन्द्र के समान समस्त द्वीपों का भोक्ता हर्ष नाम का चक्रवर्ती जन्म लेगा।' इसलिए यह स्वभाविक था कि हर्ष के समस्त गुण जन्मजात थे। जैसा कि बाण ने हर्ष के यशोवती के गर्भ में आते ही रानी का वर्णन करते हुए लिखा है—उसके मन में यह दोहद इच्छा हुई कि चार समुद्रों का जल एक में मिलाकर स्नान करूँ और समुद्र के बेला-कुञ्जों में भ्रमण करूँ। नंगी तलवार के पानी में मुँह देखने की, बीणा अलग हटा कर धनुष की टंकार सुनने की और पंजर-बद्ध केसरियों के देखने की इच्छा हुई। इस प्रकार हर्ष जन्म से ही एक महापुरुष था। किसी ब्राह्मण ने ज्योतिष के अनुसार हर्ष के जन्म के समय भविष्यवाणी भी कर दी थी। हर्ष में शैशव काल से ही अपूर्व रणोत्साह और साहस का आभास मिलने लगा था। जब पिता ने अपने सुयोग्य पुत्र राज्यवर्धन को हूणों से भिड़न्त के लिए भेजा, तो १४–१५ वर्ष की अवस्था वाले हर्ष भी बड़े भाई के साथ चलने के उत्साह का संवरण न कर सके। कुछ पड़ावों के बाद ही हर्ष का मन आखेट में लग गया तो वे आगे न जाकर हिमालय की तराइयों में शिकार करने लगे। यहीं से हर्ष के जीवन का आकस्मिक परिवर्तन आरम्भ हो जाता है। उन्हें पिता की बीमारी की खबर मिलती है। वे शीघ्र ही दौड़ पड़े; मार्ग में कुछ भी नहीं खाया-पिया। इससे उनका अनन्य पितृ प्रेम व्यक्त होता है।

राजद्वार पर पहुँचते ही उन्होंने उद्विग्न होकर सुषेण नामक वैद्यकुमार से पिता की हालत पूछी। सुषेण ने कोई आशाजनक बात न कही तो घबड़ाए हुए पिता के पास पहुँचे। उन्होंने उन्हें रुग्णावस्था में देखा। प्रभाकरवर्धन ने हर्ष को देखकर उठने की चेष्टा की। उन्होंने बड़ी कठिनता से यह कहा—'हे वत्स, दुबले जान पड़ते हो।' तब भंडि ने कहा कि हर्ष को भोजन किए हुए तीन दिन हो चुके हैं। यह सुन कर पिता ने गद्‌गद कंठ से कहा—'तुम्हारे आहार के बाद ही मैं पथ्य लूँगा।' पिता का पुत्र के प्रति स्नेह स्वाभाविक है, पर यहाँ स्वाभाविकता की सीमा पर यह स्नेह पहुँच गया है। गुणवान् पुत्र के प्रति पिता का इससे बढ़कर क्या भाव हो सकता है। हर्ष की गुणग्राहिता भी असामान्य थी। जब उन्होंने सुना कि रसायन नामक वैद्यकुमार ने सम्राट् के प्रति भक्ति और स्नेह से अभिभूत होकर आग में कूद कर जान दे दी, तो उनकी प्रतिक्रिया यह हुई कि उसने कुलपुत्रता धर्म को चमका दिया। स्वयं बाण ने हर्ष की गुणग्राहिता की प्रशंसा अपनी प्रथम भेंट के अवसर पर की थी। जब बाण ने अपना विशिष्ट परिचय दिया तब हर्ष ने कहा था कि मैंने भी ऐसा ही सुना है। तब बाण ने एकान्त में हर्ष की उदारता एवं गुणग्राहिता की प्रशंसा की है। अस्तु, इसी बीच जब प्रभाकरवर्धन मृत्युशय्या पर अन्तिम-साँस तोड़ने ही वाले थे तब हर्ष के जीवन की दूसरी मार्मिक घटना माता यशोवती के सती हो जाने की तैयारी सुनकर हुई। किसी प्रकार वे माँ को उनके निर्णय से विचलित न कर सके। तत्पश्चात् पिता भी दिवंगत हो जाते हैं। इन उद्वेजक घटनाओं से हर्ष अत्यन्त शोकमग्न अवस्था में पड़ गए। अनेक कुलपुत्र, गुरु, वृद्ध ब्राह्मण, मूर्धाभिषिक्त अमात्य, मस्करी, मुनि, वेदान्ती तथा पौराणिक लोगों ने हर्ष के शोक को उदाहरणों और दृष्टान्तों द्वारा कम किया। तब हर्ष के मन में राज्यवर्धन के विषय में अनेक विचार आने लगे। कहीं बड़े भाई पिता के मरण का घातक समाचार सुन कर बुद्ध की तरह आश्रम में न प्रविष्ट हो जायँ! हर्ष की यह भावना राज्यवर्धन के प्रति अपार भ्रातृ-प्रेम और हृदय की पवित्रता को व्यंजित करने वाली है। सचमुच इस प्रकार की आन्तरिक वृत्ति के कारण महानता की दृष्टि से हर्ष एक उच्च आदर्श का रूप धारण कर लेते हैं।

जैसा हर्ष ने राज्यवर्धन के विषय में मन में सोचा था, शोक से भरे हुए राज्यवर्धन ने आकर वही सोचा और अपनी तलवार फेंक दी। राज्यवर्धन के इस विचार से हर्ष का हृदय विदीर्ण हो गया। उन्होंने अपने आप में ही कोई ऐसा दोष अनुभव किया जिसके कारण राज्यवर्धन ने यह निश्चय कर डाला। हर्ष के उस विदीर्ण हृदय में कितनी पवित्रता और विशालता थी। इसी बीच एक घटना और घटती है। मालवराज द्वारा ग्रहवर्मा की मृत्यु और राज्यश्री के कारागार में बन्द होने की खबर तत्काल मिली। सुनते ही राज्यवर्धन का विषाद जाता रहा, वे आगबबूला हो गए। हर्ष को राज्यभार सम्हालने के लिए कहा और स्वयं फिर हाथ में कृपाण उठा लिया। यहाँ भी हर्ष ने साथ जाने के लिए आग्रह किया। राज्यवर्धन हर्ष के पराक्रम से परिचित थे, उन्होंने कहा—

'सारी पृथिवी को जीतने के लिए मान्धाता की तरह तुम धनुष उठाओगे, तो तुम ठहरो। मुझे अकेले ही शत्रु का नाश करने दो।' यह कहकर उन्होंने प्रस्थान किया। जब हर्ष को चौथी घटना यह सुन पड़ी कि एक मालवराज को खेल-खेल में पराजित कर लेने पर भी राज्यवर्धन को धोखे से गौड़ाधिप ने मार डाला, तो उनकी क्रोधाग्नि फूट पड़ी। तब हर्ष ने यह प्रतिज्ञा की—'यदि कुछ ही दिनों में इस पृथिवी को गौडरहित न बना दूँ और समस्त राजाओं के पैरों में बेड़ियाँ न पहना दूँ तो घी से धधकती हुई आग में पतंगों की तरह अपने शरीर को जला दूँगा।' हर्ष की इस प्रतिज्ञा में उसका समस्त ओज प्रदीप्त हो उठा है। युद्ध की तैयारियाँ होने लगीं। कुछ दिन बाद प्राग्ज्योतिपेश्वर कुमार ने हंसवेग के साथ एक छत्र और अनेक उपहार भेजे। हर्ष के हृदय में प्रत्युपकार की भावना का यह कितना सुन्दर प्रसङ्ग है। जब एकान्त में बैठे-बैठे उन्होंने यह सोचा—'आमरण मैत्री के अतिरिक्त इस प्रकार के सुन्दर उपहार का बदला और क्या हो सकता है?' भण्डि ने आकर राज्यश्री के विन्ध्याटवी में भाग जाने की खबर दी, तो हर्ष स्वयं सब काम छोड़ कर उसे खोजने निकल पड़े। बीच में शबर युवक निर्घात के माध्यम से दिवाकरमित्र नामक एक बौद्ध भिक्षु से भेंट होती है। दिवाकरमित्र के एक शिष्य ने हर्ष को राज्यश्री का पता बताया। अन्त में राज्यश्री मिल जाती है।

इस प्रकार हर्ष का व्यक्तित्व आदि से अन्त तक निर्भीक और साहसी, कर्त्तव्यपरायण और स्नेहमय मिलता है। बाण ने सम्राट् के उदात्त जीवन का बहुत नजदीक से अध्ययन किया था। बाण की लेखनी के स्पर्श से हर्ष के व्यक्तित्व की जो परिस्फूर्ति हर्षचरित में दिखाई देती है वह अपूर्व है। यह कहना कठिन है कि बाण की लेखनी ने हर्ष का स्पर्श कर इतनी शक्ति प्राप्त की अथवा हर्ष का व्यक्तित्व ही बाण की लेखनी के स्पर्श से समृद्ध हो गया। इसमें सन्देह नहीं कि हर्ष जैसा सम्राट् भारतवर्ष में कोई दूसरा नहीं हुआ। हर्ष की महती सफलता तो इसमें भी अभिलक्षित होती है कि उसने परस्परविरोधी, साम्प्रदायिक तथा धार्मिक वातावरण को भी एक सन्तुलित रूप दिया था। हर्ष किसी एक धर्म और एक सम्प्रदाय का पक्षपाती न था। उसके मन में सबके प्रति समान आदरभाव था। बाण ने एक तटस्थ दर्शक के रूप में ही उसके व्यक्तित्व का चित्रण किया है। व्यर्थ प्रशंसा का पुल बाँधना बाण जैसे स्वाभिमानी के लिए कहाँ तक सम्भव था।

हर्ष के व्यक्तित्व की यह प्रसंगतः सामान्य चर्चा है। ग्रन्थ के आद्यन्त अवलोकन से ही पाठक उसकी विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे। बाण की चित्रग्राहिणी प्रतिभा में हर्ष के व्यक्तित्व का चित्र ऐसी स्वाभाविकता से आलिखित है कि देखते ही बनता है।

राज्यश्री—यह हर्ष की छोटी बहन थी। यह नृत्य, गीत आदि कलाओं से प्रवीण थी। प्रभाकरवर्धन ने धूम-धाम से ग्रहवर्मा के साथ उसका विवाह किया। पिता के मरते ही राज्यश्री पर भी दुर्भाग्य के बादल उमड़ आए। मालवराज ने ग्रहवर्मा को जान से मार दिया और उसे कान्यकुब्ज के कारागार में बन्द कर रखा। वह किसी तरह बन्धन से छूट

कर परिवार के साथ विन्ध्याचल के जंगल में चली गईं। जब वहाँ वह अग्निप्रवेश करने के लिए तैयार थी तब हर्ष उसे ढूँढते हुए पहुँच गए। इस अवस्था में सहसा भाई को पाकर वह विलाप करने लगी। हर्ष ने रोते हुए कहा—'अब धीरज धरो, अपने को सम्हालो।' राज्यश्री पर इस समय दुःख का पहाड़ टूट पड़ा था, हर्ष ने मृत्यु के मुख से खींच कर उसे बचा लिया। वह अपने सतीत्व की रक्षा के लिए शत्रु के कारावास से भी भाग निकली। भारतीय नारी का यह उच्च आदर्श राज्यश्री में एकान्ततः प्रस्फुरित होता है। बौद्धभिक्षु आचार्य दिवाकरमित्र के सामने राज्यश्री ने हर्ष से विनयपूर्वक कषाय वस्त्र धारण की अनुज्ञा माँगी। एक विधवा के तपस्वी जीवन के लिए आत्मसंयम के अतिरिक्त और दूसरा क्या कर्तव्य रह जाता है। हर्ष ने भाई के वध का बदला लेने की जो प्रतिज्ञा की थी उसे सुनाकर तत्काल राज्यश्री को ऐसा न करने के लिए कहा। उन्होंने भिक्षु दिवाकरमित्र से कह दिया कि प्रतीज्ञा पूरी होने पर मैं और यह एक साथ कषाय ग्रहण करेंगे। तब राज्यश्री ने भाई की बात पर आग्रह नहीं किया।

इस प्रकार इन प्रमुख पात्रों की चर्चा के साथ ही हर्षचरित का कथानक भी बहुत अंश में सामने आ जाता है।

कादम्बरी

महाकवि बाणभट्ट की दूसरी 'अतिद्वयी' रचना कादम्बरी है। यह एक कथा है। आधुनिक परिभाषा में कथा को ही उपन्यास कहते हैं। यद्यपि कथा और उपन्यास में बहुत अन्तर है, तथापि काल्पनिकता का सम्बन्ध दोनों में एक-सा अभिलक्षित होता है। आधुनिक उपन्यास कथा का विकसित रूप है और कथा उपन्यास का पूर्वरूप। कादम्बरी संस्कृत साहित्य की सर्वोत्कृष्ट गद्य-रचना है और बाण की अमर कृति है। 'हर्षचरित इस पृथिवी लोक की तथ्यात्मक आख्यायिका है पर कादम्बरी दिव्य-लोक को भूतल पर लाने वाली काव्य-कल्पना है।' यह दृढ़ता के साथ कहा जा सकता है कि बाण हर्षचरित की अपेक्षा कादम्बरी में अधिक सफल हुए हैं। कादम्बरी की कथा के सम्बन्ध में यह मान्यता है कि यह गुणाढ्यकृत बृहत्कथा से ली गई है। गुणाढ्य ने बृहत्कथा को पैशाची भाषा में लिखा था, जो अब तक उपलब्ध नहीं है। उसके संस्कृत अनुवाद के रूप में क्षेमेन्द्रकृत बृहत्कथामंजरी और सोमदेवकृत कथासरित्सागर में कादम्बरी-कथा का मूल रूप सुरक्षित है। भारतीय प्राचीन साहित्य में उपजीव्य तीन ग्रन्थ विशेष रूप से रहे हैं—रामायण, महाभारत और बृहत्कथा। अतः सम्भव है कि बाण ने अपनी कथा की मूल घटनाएँ बृहत्कथा से ली हों, किन्तु यह निर्विवाद है कि उन्होंने अपनी प्रतिभा से उसे एक सर्वथा नवीन और मौलिक रूप दे दिया है।

कादम्बरी की कथा संक्षेप में इस प्रकार है—'विदिशा के राजा शूद्रक के समीप एक चाण्डालकन्या पंजरबद्ध आश्चर्यकारी शुक को उनकी सेवा में अर्पित करती है। यह

शुक अपने जन्म से लेकर महर्षि जाबालि के आश्रम में पहुँचने तक का वृत्तान्त सुनाता है। महर्षि जाबालि शुक के पूर्वजन्म की कथा सुनाते हैं—उज्जयिनी के राजा तारापीड थे। उनकी रानी विलासवती थी। उनके गुणवान् महामन्त्री शुकनास थे। बड़ी प्रतीक्षा के बाद राजा को एक पुत्र होता है। उसी समय शुकनास की पत्नी मनोरमा के गर्भ से भी पुत्र होता है। राजा के पुत्र का नाम चन्द्रापीड़ था और शुकनास के पुत्र का नाम वैशम्पायन। दोनों ने एक साथ गुरुकुल में अध्ययन किया। दोनों दिग्विजय के लिए सेना लेकर निकल पड़े। राजकुमार चन्द्रापीड़ एक बार किन्नर-मिथुन का पीछा करते हुए बहुत दूर अच्छोद नामक सरोवर के समीप पहुँच गए। वहाँ महाश्वेता नामक एक तपस्विनी गन्धर्वकन्या मिलती है। पूछने पर अवगत हुआ कि उसका अभीप्सित प्रिय पुण्डरीक मिलने के पूर्व ही मृत्यु को प्राप्त हुआ। प्रिय के भावी मिलन की आशा में वह अच्छोद सरोवर के किनारे रहने लगी थी। उसकी सखी कादम्बरी ने भी कौमार्यव्रत धारण किया था। वह चन्द्रापीड़ को कादम्बरी के पास ले जाती है वहाँ प्रथम साक्षात्कार में ही चन्द्रापीड़ और कादम्बरी दोनों अनुरक्त हो जाते हैं। चन्द्रापीड़ फिर लौट कर अपने स्थान पर आते हैं। वहाँ से पिता का पत्र पाकर अकेले घर आ जाते हैं। घर से फिर स्कन्धावार पहुँच कर वैशम्पायन को वहाँ न देख दौड़े-दौड़े महाश्वेता के पास जाते हैं। महाश्वेता ने जब यह कहा कि मुझसे उसने प्रणययाचना की तो मैंने उसको शुक बना दिया, तो इस प्रकार अपने सुहृद की आपत्ति से चन्द्रापीड के प्राण निकल जाते हैं। वहाँ कादम्बरी भी पहुँचकर चन्द्रापीड़ के पुनः मिलन की आशा से उनके शवशरीर की सेवा करती है। यहाँ जाबालि की कथा समाप्त हो जाती है।

तब शुक ने शूद्रक से कहा कि मैं जाबालि के आश्रम से महाश्वेता के लिए उड़ चला तो बीच ही में चाण्डालकन्यका ने पकड़ कर मुझे आप के समीप ला दिया। तब चाण्डाल-कन्यका ने कहा कि मैं लक्ष्मी हूँ, यह शुक पुण्डरीक है और आप चन्द्रापीड हैं। शूद्रक को कादम्बरी का प्रेम स्मृत हो उठा। उनके प्राण निकल गए और उधर चन्द्रापीड़ जीवित हो गए। शुक की आत्मा भी पुण्डरीक के मृत शरीर में आकर पुनः मिल गई, जो चन्द्रलोक में सुरक्षित था। तत्पश्चात् महाश्वेता और पुण्डरीक, कादम्बरी और चन्द्रापीड़ सब एकत्र हो गए और विवाहित होकर सुख-पूर्वक रहने लगे।

इस प्रकार कादम्बरी अनेक अप्राकृतिक घटनाओं से भरी होने पर भी कुतूहल उत्पन्न करने में अपूर्व है। उत्सुकता तो कथा के आरम्भ में चाण्डालकन्यका द्वारा शूद्रक की सभा में वैशम्पायन शुक के लाए जाने से ही लेकर आरम्भ हो जाती है और पाठक को बरबस आगे बढ़ने के लिए बाध्य होना पड़ता है। कथा की प्रधान नायिका कादम्बरी बड़ी लम्बी चढ़ान के बाद मिलती है। अनेक उपकथाएँ भी साथ-साथ चल पड़ती हैं जो कथा के सूत्र में पुष्टि लाने का काम करती हैं। महाश्वेता की प्रणयकथा कादम्बरी की प्रणयकथा के अन्तर्मुक्त होने पर भी अपना अस्तित्व अलग रखती है। कादम्बरी एक मुग्धा नायिका

है जो सिर्फ प्रणय करना जानती है, महाश्वेता तपी हुई वनिता है जो प्रणय के सच्चे मार्ग पर कादम्बरी को प्रतिष्ठित करने में सहायक होती है। कादम्बरी से महाश्वेता का व्यक्तित्व किसी अंश में दुर्बल नहीं। इसका यह अर्थ नहीं कि कादम्बरी बिलकुल एक कठपुतली रह गई है। वह सबके प्रभाव से अलग होकर अपने प्रणय का अस्तित्व बनाने में अत्यन्त निपुण है। आरम्भ में उसका वासना-जनित प्रेम भी आगे चल कर विरह-तप्त होकर महाश्वेता के प्रणय के समान ही पवित्र बन गया। आरम्भ से अन्त तक कादम्बरी कथा अनेक प्रकार की विविधतापूर्ण घटनाओं से भरी होने के कारण कवि के वस्तुविन्यास-कौशल का परिचय देती है।

बाण के चरित्र की अपनी विशेषता है। जैसा कि हम हर्षचरित में देख चुके हैं, उसी प्रकार कादम्बरी के भी सभी पात्र सजीव बन पड़े हैं। नवयुवक चन्द्रापीड जो अपनी सौम्यता में, महाराज तारापीड़ जो अपनी उदारता में, आदर्श महामन्त्री शुकनास जो अपनी अगाध प्रवीणता में, रानी विलासवती जो अपनी सुकुमारता में, छाया की भाँति चन्द्रापीड का अनुसरण करने वाली पत्रलेखा अपनी तत्परता में, कठोर कापिंजल अपनी स्नेहमयता में कादम्बरी के जीते-जागते पात्र हैं जो पाठक के मन पर अमिट छाप छोड़ जाते हैं। कादम्बरी के चित्रण में बाण ने भावों के सम्बन्ध में अपने मार्मिक निरीक्षण का अपूर्व परिचय दिया है। कादम्बरी के समस्त भाव सहृदय और समीक्षक पाठक के लिए अलग से अध्ययन के विषय हैं। बाण के मौलिक कवित्व का साक्षात्कार इन्हीं विषयों में होता है।

वर्णन-वैचित्र्य

कल्पनाओं का अतिरंजित हो जाना बाण जैसे कल्पनाशील मन वाले भावुकहृदय कवि के लिए कोई आश्चर्यजनक नहीं। सबसे बड़ी बात तो यह दृष्टि में आती है कि बाण ने अपने बहुमुखी जीवन के अनुभवों को समेट कर पद-पद में अनुस्यूत कर डाला है। हर्षचरित में बाण की दृष्टि के सामने उनके जो समस्त अनुभव थे, कादम्बरी में वे ही बिलकुल उनके तरल मानस से अन्तर्लीन होकर कुछ विलक्षण रूप में प्रस्फुरित होते हैं। जैसे कोई चित्रकार किसी प्रपात के मनोहर दृश्य के सामने बैठ कर उसका रेखाचित्र बना लेता है और घर पर जाकर आँखों के मार्ग से मन में उतारे हुए उस दृश्य के समस्त छविमय आकार को विविध प्रकार के रंगों से अभिव्यंजित करता है, ठीक उसी प्रकार बाण ने अभ्यास के लिए अनुभव के विविध रूपों का एक खाका तैयार कर लिया, जो हर्षचरित के रूप में सहृदय जनों के सामने है। फिर वे ही अनुभव नये-नये रंगरूप में अलौकिकता के साथ कादम्बरी के पद-पद में भीन गए हैं। यही कारण है कि कवि की सफलता हर्ष-चरित की अपेक्षा कादम्बरी में अधिक समझी जाती है। हर्षचरित में जो सेनापति सिंहनाद का उपदेश है उसकी कोटि में कादम्बरी का शुकनासोपदेश कितना विस्तृत और

पूर्ण बन गया है। ऐसा लगता है जैसे महर्षि व्यास ने महाभारत के अतिरिक्त प्रकरण में गीता को उपनिबद्ध कर दिया है वैसे ही महाकवि बाण ने शुकनासोपदेश के नाम से एक अतिरिक्त रचना ही कादम्बरी में उपनिबद्ध कर दी हो।

कादम्बरी शताधिक वर्णनों का अद्भुत संग्रह है। डा० वासुदेवशरणजी अग्रवाल के शब्दों में कादम्बरी में बाण की वर्णन-क्षमता का मृद्वीकापाक हुआ है। बाण की चित्र-ग्राहिणी प्रतिभा वर्णनों में वर्णनातीत सफल हुई है। कादम्बरी में बाण ने नदी, वन, वृक्ष सरोवर, नगर, सायं-प्रातः, चन्द्रोदय, धूलिपटल, राजकुल, इन्द्रायुध, अश्व आदि के वर्णनों में बड़ी दूरदर्शिता से काम लिया है। व्यक्ति चित्रण में उसके सौन्दर्य की सूक्ष्मतम कल्पना में बाण के अतिरिक्त कौन सफल हो सकता है? यद्यपि संस्कृत-साहित्य में वर्णनकर्ता कवियों की कमी नहीं है, कालिदास का तो कहना क्या! लेकिन बाण विस्तार-प्रधान वर्णन के पक्षपाती हैं। कालिदास जिस चित्र को थोड़े में ही अंकित कर सके हैं उसे बाण ने भव्य रूप देकर बड़ा बना दिया है। यही कारण है कि कालिदास के पश्चात् सर्वाधिक मौलिकता बाण की अपेक्षा अन्य को नहीं मिली। बाण की दृष्टि में किसी विशेष वर्णन में पक्षपात नहीं दिखाई देता। बाण जिस सूक्ष्मता से धवलदेहकान्तिप्रतिमण्डिता महाश्वेता का वर्णन करते हैं उसी सूक्ष्मता से नीलम की पुतली के समान काली-कलूटी चाण्डालकन्या का भी वर्णन करते हैं। अपेक्षाकृत बाण के वर्णन प्रातःकाल से अधिक सायंकाल के ही मिलते हैं। सम्भव है प्रातःकाल की अपेक्षा सायंकाल का दृश्य ही उनको अधिक पसंद रहा हो। नगरी उज्जयिनी के वर्णन से जाबालि के शान्त और पवित्र आश्रम का वर्णन भी कम अद्भुत नहीं। कादम्बरी के सौन्दर्य-वर्णनों में भी कम आकर्षण नहीं। मानवीय सौन्दर्य का वर्णन और तद्वाची शब्दों की विकसित सामग्री भी कालिदास से कहीं अधिक बाण की इस रचना में मिल जाती है। इसके अतिरिक्त इन्द्रायुध अश्व के सजीव वर्णन से बाण को 'तुरङ्गबाण' की पदवी भी मिली है। बाण के साहित्य के प्राण वर्णन ही हैं। उन्हें अलग कर देने पर कथा कुछ भी न रह जायगी।

बाण अत्यन्त परिहास-प्रिय व्यक्ति थे। कादम्बरी के चण्डिका-मन्दिर के बुड्ढे पुजारी के वर्णन में उनकी परिहासप्रियता का पता चलता है। उस पुजारी के वर्णन में बाण ने खुलकर मजाक किया है। 'देवी के चरणों पर बार-बार माथा रगड़ने से उसके माथे पर घट्ठा पड़ गया था। किसी ठगवैद्य द्वारा दिए हुए सिद्धांजन से उसकी एक आँख फूट गई थी इसलिये वह दूसरी आँख में प्रतिदिन तीन बार अंजन लगाता था जिससे लकड़ी की सलाई भी घिस कर चिकनी हो गई थी। रेशम के कोये का छल्ला पैर के अँगूठे में मढ़ लेने के कारण उसकी काट से अंगूठा घायल हो गया था। पिशाच चढ़े हुए लोगों का भूत उतारने के लिए वह मंत्र पढ़कर पीली सरसों से बार-बार उन्हें मारता तो वे भी उसकी ओर लपक कर लप्पड़ मारते जिससे [उसका कान दब कर चपटा हो गया था। वह दिन भर मच्छर की तरह भनभनाता हुआ सिर हिला कर कुछ गुनगुनाता रहता था। वह

लाचार ब्रह्मचारी था, अत एव जब दूर जगहों से आकर ठहरी हुई बुड्ढी तापसियों को देखता तो ताव खा-खा कर स्त्रीवशीकरण चूर्ण का उन पर प्रयोग करता था। कभी आए हुए बटोहियों को वहाँ न ठहरने देने के लिए उनसे जूझ जाता और तब वे भी बिगड़ कर उसके साथ गुत्थम-गुत्था करने लगते और उसे पटककर उसकी पीठ चटका देते। रतौंधी के कारण वह दिन में ही आ-जा लेता। उसका पेट निकला हुआ था और खाने की कोई थाह न थी। फाल्गुन में जब लोगों को मस्ती चढ़ती तो वे मचियासहित किसी बूढ़ी दासी को उठा ले आते और उसके साथ ब्याह रचा कर उसकी ठठोली करते।' इस प्रकार बाण के इस बुड्ढे पुजारी को देख कर मन में रस भर आते हैं। हास्य, बीभत्स और भयानक का जीता-जागता चित्र बाण ने यहाँ देकर अपनी अद्भुत कला का प्रदर्शन किया है।

कादम्बरी का एक प्रसंग बहुत ही आश्चर्यकारी है जहाँ बाण की कथानिर्माणक्षमता का अनुमान सहज ही होने लगता है। जब महाश्वेता के साथ चन्द्रापीड़ कादम्बरी के यहाँ भवन में जाकर ताम्बूल द्वारा उससे सम्मानित होते हैं। तत्पश्चात् उस समय कथा-क्रम शिथिल होता प्रतीत होता है। सबके सब चुपचाप यथास्थान बैठते हैं। कादम्बरी, चन्द्रापीड़, महाश्वेता एवं और सब उपस्थित सखी और परिजनों के लिए इस समय ऐसे हलके झोंके की आवश्यकता थी कि जिससे फिर वे अपनी स्वाभाविक स्थिति प्राप्त कर सकें। बाण ने वहाँ सहसा एक सारिका और परिहास नामक शुक के झगड़े का प्रसंग लाकर कथा के प्रवाह को विलक्षण युक्ति से सम्हाल लिया है। चन्द्रापीड़ ने इस प्रसंग में नर्म भाषित करके सबको प्रभावित कर लिया। वहाँ का वातावरण उन पर हावी न हो सका। वहाँ के लोगों और चन्द्रापीड़ में अपरिचयकृत दूरी हट गई और वे उन सबके ऊपर प्रभावशाली हो गए तथा परस्पर सबके निकट आ गए। इस प्रकार बाण की लेखनी कथा के वस्तु-विन्यास-वर्णनों के संवर्धन एवं मानस भावों के अंकन में सर्वत्र जगरूक रहती है। वर्णनों की भरमार से कथा-प्रवाह के शिथिल प्रतीत होते हुए भी उनकी सरसता एवं चित्रमयता से पाठक को किसी प्रकार का उद्वेजन नहीं हो पाता। वह कथा के अग्रिम मोड़ से परिचित होने के लिए उत्सुक होकर भी तत्काल वर्णनों के भीतर इतना डूब जाता है कि कथा की ओर से उसका ध्यान हट जाता है। इसे बाण की अपनी विशेषता समझना चाहिए।

यह पहले कहा जा चुका है कि कादम्बरी का उत्तर भाग बाणभट्ट के सुयोग्य पुत्र की रचना है। सौभाग्य की बात है कि उत्तरभाग भी बाणरचित पूर्वभाग की तरह ही बन गया है। सम्भव था बाण कुछ और विस्तृत करके लिखते। उत्तर भाग को देख कर ऐसा लगता है कि अगर भूषणभट्ट या पुलिन्द (न्ध्र) भट्ट ने अपना नाम बिना लिखे ही कादम्बरी की पूर्ति कर दी होती तो निश्चय ही यह किसी के लिए निर्णय करना कठिन हो जाता कि पूरी रचना एक ही कवि की है या नहीं। हाँ, इतना तो लोग अवश्य कहते कि बाण अन्त

में चल कर हड़बड़ा गए और कथा को शीघ्र समाप्त कर डाला। कहीं उत्तर भाग में भी पूर्व भाग के टक्कर की रचना हो गई है। फिर भी बाण-पुत्र यह कहते हुए तनिक भी रुकते नहीं कि मैंने पिता की वाणी के समुद्रगामी प्रवाह में अपनी वाणी की धारा मिला दी जिससे कथा समाप्ति को प्राप्त सके। उनका यह कथन सर्वथा सत्य है। बाण की धारा में मिल पाने से ही उनकी वाणी यह काम कर सकी, अन्यथा बाण–जैसे वर्णनशिल्पी के सामने किसी दूसरे का डट पाना कभी सम्भव न था। बाण-पुत्र में कुछ-कुछ कवित्व का जो गुण था वह उनके पिता के आशीर्वाद का ही फल था। उन्होंने कादम्बरी के सम्बन्ध में कहा है—

कादम्बरीरसभरेण समस्त एव मत्तो न किञ्चिदपि चेतयते जनोऽयम्।
भीतोऽस्मि यन्न रसवर्णविवर्जितेन तच्छेषमात्मवचसाऽप्यनुसन्दधानः॥

अर्थात् कादम्बरी (एक प्रकार की मदिरा तथा कादम्बरीकथा) के उत्तम रस को पीकर सहृदय जनों का वर्ग बिलकुल छक कर अपनी सुध-बुध खो बैठा है। ऐसी स्थिति में रस और वर्ण से विहीन अपनी वाणी द्वारा कादम्बरी की पूर्ति करते हुए मुझे कुछ भय नहीं, क्योंकि बेहोशी में किसी को पता न चलेगा।

बाण की दृष्टि में काव्य का स्वरूप

बाण की शैली जानने से पूर्व हमें बाण के विचार में काव्य के स्वरूप को जान लेना चाहिए। बाण काव्य के स्वरूप के सम्बन्ध में अपनी अलग दृष्टि रखते हैं, जैसा कि हर्ष-चरित के आरम्भ में उन्होंने समझाया है। बाण को उन कवियों की कविता पसंद न थी जो राग द्वेष में भर कर मनमाने ढंग से बकवास करते हैं। बाण के अनुसार ऐसे 'वाचाल' और 'कामकारी' लोग ही कुकवि हो जाते हैं। नई वस्तु उत्पन्न करने वाला ही सच्चे अर्थ में कवि कहलाने योग्य है और वही 'उत्पादक' है। बाण केवल स्वभावोक्ति (जाति) के पक्षपाती न थे। प्राय: उन दिनों साहित्य में कविता के नाम पर प्रचुर मात्रा में स्वभावोक्तिशैली का प्रचलन था। बाण की प्रतिक्रिया यह थी कि स्वभावोक्ति किसी प्रकार भी कविता नहीं हो सकती; क्योंकि उसमें नवीनता का सर्वथा अभाव रहता है। आगे चलकर अलंकारशास्त्र के आचार्यों ने वक्रोक्तिवाद को खड़ा करके बाण के निर्दिष्ट मार्ग का अनुसरण किया। स्वभावोक्ति एक अलंकारमात्र तक सीमित रह गई। वस्तु के यथार्थ रूप में कोई आकर्षण नहीं रहता, अन्यथा कविता लिखने की कोई आवश्यकता ही नहीं। कवि वस्तु के यथार्थ रूप को बदल डालता है और अपनी प्रतिभा से नई वस्तु का निर्माण करता है, यही बाण का अभिप्रेत पक्ष था। वक्रोक्ति ने श्लेषप्रधान शैली को उत्पन्न किया। श्लेषपूर्ण शैली का काव्य निर्माण भी चल पड़ा। उसकी झलक बाण के पूर्ववर्त्ती सुबन्धु की प्रत्यक्षरश्लेषमय रचना वासवदत्ता में मिलती है। यह शैली बाण को भी पसंद थी। कादम्बरी में उन्होंने लगातार श्लेषों से भरी हुई (निरन्तरश्लेषघना) शैली की प्रशंसा

की हैं। वस्तु की भावात्मक रचना में जब तक शब्दों की मरोड़ से उत्पन्न नवत्व का साक्षात्कार नहीं मिलता तब तक कवि प्रशंसा के पात्र नहीं, सम्भवतः बाण की यही दृष्टि थी। यह भी बात नहीं कि जाति या स्वभावोक्ति-शैली बाण को सर्वथा अनभिमत थी, उन्होंने अग्राम्या जाति की प्रशंसा की है, अर्थात् वह स्वभावोक्ति जो केवल वस्तु के यथार्थ रूप का चित्रण न होकर सुन्दरतापूर्ण चित्रण हो, बाण को सर्वथा मान्य थी।

बाण कविता में समन्वय दृष्टि के पक्षपाती थे। वे एकांगी दृष्टि को कविता के लिए उपयुक्त नहीं मानते थे। उन दिनों प्रायः पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण के कवि लोग एकांगी दृष्टि से काव्य लिखते थे, जैसा कि बाण ने स्वयं निर्देश किया है—

श्लेषप्रायमुदीच्येषु प्रतीच्येष्वर्थमात्रकम्।
उत्प्रेक्षा दाक्षिणात्येषु गौडेष्वक्षरडम्बरम्॥ (हर्ष०)

अर्थात् उत्तर के लोगों में श्लेष-प्रधान शैली में रचना करने की प्रवृत्ति है, पश्चिम के लोग अर्थमात्र पर ध्यान देते हैं, भाषा कैसी भी हो अर्थ बढ़िया होना चाहिए। दाक्षिणात्य लोग उत्प्रेक्षा करने में खूब पटु हैं, उत्प्रेक्षाशैली उड़ान भरना या हद तक कल्पना करना है, गौड़ देश के निवासी कवियों में अक्षराडम्बर ही खूब चलता है। अक्षराडम्बर अर्थात् विकट शब्दों की योजना की आनुप्रासिक प्रवृत्ति से तात्पर्य है। इस प्रकार चारों ओर साहित्यिक समाज में एकांगी दृष्टि से काव्य-निर्माण की प्रवृत्ति चल पड़ी थी जो बाण को अभिप्रेत न थी। बाण कविता में सब शैलियों का समन्वय मानते थे। बाण की दृष्टि में बढ़िया काव्य वह है जिसमें पांच बातों का मेल हो—

नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः।
विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुर्लभम्॥ (हर्ष० श्लोक १.८)

अर्थात् विषय की नवीनता, सुन्दर लगने वाली स्वभावोक्ति, श्लेष ऐसा जो क्लिष्ट न हो, स्फुट रस, जिसके निर्णय के लिए सहृदय को विशेष माथा-पच्ची न करनी पड़े, विकट या भारी भरकम शब्दों की योजना। बाण का कहना है कि सब मिल कर ये पाँचों बातें किसी एक काव्य में दुर्लभ हैं, परन्तु सच्चे अर्थ में वही काव्य कहने योग्य है जिसमें इन सब का समन्वय हो। बाण ने अपने काव्यों में इनके समन्वय का हमेशा ध्यान रखा है। बाण की यह समन्वयप्रधान शैली किसी प्रकार के एकांगी दृष्टिकोण के अधीन नहीं रही, यही उसकी विशेषता है। सचमुच श्लाघनीय रचना समन्वयप्रधान दृष्टिकोण का कवि ही कर सकता है, बाण की सफलता का रहस्य भी यही है। बाण रचना में विषय की सर्वाधिक नूतनता, सरल श्लेष-प्रधान शैली की अद्भुत योजना, वस्तुओं का अग्राम्य यथार्थ वर्णन, समासबहुल पदविन्यास तथा कथावस्तु का ग्रंथन, इन सब का विलक्षण सामंजस्य मिल जाता है।

कहा गया है कि बाण मनमाने ढंग की कविता करने वाले वाचाल एवं अनुत्पादक कवियों से खूब चिढ़े हुए थे। दूसरे कवि के वर्णों को बदल कर उनके स्थान में अपने शब्द रख कर काव्य निर्माण की प्रवृत्ति रखने वाले कवि बाण के शब्दों में चोर होते हैं। वे सहज ही पकड़े जाते हैं। ऐसे कवियों की रचना किसी अंश में आदर के योग्य नहीं। बाण की दृष्टि में कविता की भूमिका अपने स्वरूप में सर्वथा मौलिक और महत्त्वपूर्ण है। कविता की सिद्धि के लिए कवि को महती साधना करनी पड़ती है। साधना-विहीन कवि किसी प्रकार भी कविता की उच्च भूमिका में नहीं पहुँच सकता। बाण ने किसी विशेष कवि का नाम लेकर इस प्रकार की कुछ भी निन्दा की बात नहीं कही है। व्यक्तिगत आक्षेप बाण को अभिमत नहीं। प्रशंसा के अवसर पर वे विशेष कवियों की चर्चा हृदय खोल कर करते हैं। इसी प्रसंग में बाण ने अनेक कवियों का आदर-पूर्वक स्मरण किया है।

सर्वविद् महर्षि व्यास और आख्यायिका निर्माण करने वाले कवीश्वरों की वन्दना के पश्चात् बाण अपने पूर्ववर्ती गद्यकाव्य वासवदत्ता की प्रशंसा करते हैं। वासवदत्ता सुबन्धु-कृत होनी चाहिए। किन्तु कुछ विद्वानों की कथा के रूप में सुबन्धु की उपलब्ध श्लेष-बहुल-रचना वासवदत्ता आख्यायिका के प्रसंग में कवियों के दर्प को विचलित करने वाली बाण की निर्दिष्ट (आख्यायिका) वासवदत्ता से अतिरिक्त लगती है। अस्तु, वे वासदत्ता के गुण से प्रभावित अवश्य थे, पर अन्य कवियों की तरह विगलित-दर्प न थे, क्योंकि कादम्बरी के आरम्भिक पद्यों में बाण के अपनी कथा को 'निरन्तरश्लेषघना' और 'अतिद्वयी' अर्थात् वासवदत्ता और गुणाढ्यकृत बृहत्कथा का अतिक्रमण करने वाली कहा है।

फिर बाण ने भट्टार हरिचन्द्र नामक कवि के गद्यबन्ध चर्चा की है, जिसमें पद-बन्ध उज्ज्वल, मनोहर तथा अनुप्रास के रूप में क्रम से वर्णों की स्थिति है। उसकी शैली बाण के लिए आदर्श थी। भट्टार हरिचन्द्र के गद्यबन्ध के उपलब्ध न होने से यह ठीक पता नहीं चलता कि वे कौन थे। सम्भावना है कि राजशेखर ने जिन हरिचन्द्र का उल्लेख किया है वे ही बाण के भट्टार हरिचन्द्र हों। इस प्रकार बाण ने सातवाहन के सुभाषित-कोश गाथासप्तशती, प्रवरसेन की प्रसिद्ध रचना सेतुबन्ध और भास के यशस्वी नाटकों का सादर संस्मरण किया है।

महाकवि कालिदास बाणभट्ट के अत्यन्त प्रिय कवि थे। बाण ने उसकी मधुरसार्द्र सूक्तियों में खूब आनन्द लिया था। सचमुच कालिदास के बाद बाण का ही नाम लिया जा सकता है। बाण ने कालिदास को खूब समझा है और उनकी शैली को आदर्श मान कर और भी पल्लवित रूप में निर्माण करने की अद्भुत क्षमता अर्जित की है। गुणाढ्य को बृहत्कथा और आढ्यराज नामक कवि के काव्योत्साह भी बाण के लिए आश्चर्यकारी थे। आढ्यराज की प्रशंसा में बाण कहते हैं कि जिह्वा ही भीतर की ओर खिच जाती है और कविता करने के लिए प्रवृत्त नहीं होती।

इस प्रकार बाणभट्ट जितने अंश में दोषज्ञ थे उतने ही अंश में गुणज्ञ भी। फिर भी किसी विशेष के प्रति उनकी बुरी धारणा न थी। बाण के साहित्य में ऐसे व्यक्ति का कोई भी निर्देश नहीं मिलता जिससे बाणभट्ट क्षुब्ध हों। कादम्बरी में उन्होंने थोड़े में ही अपनी काव्यनिर्माणशैली की ओर संकेत किया है। जैसा कि कहा जा चुका है श्लेष-प्रधान शब्दों की अद्भुत योजना बाण की शैली की विशेषता है। कादम्बरी में इस शैली की प्रांजलता का साक्षात्कार होता है। बाण के शब्दों में बाण की शैली को 'निरन्तर-श्लेषघना' कहना चाहिए।

आख्यायिका और कथा

महाकवि बाण आख्यायिका और कथा दोनों के लेखक हैं। हर्षचरित आख्यायिका है और कादम्बरी कथा। अमरकोश में 'आख्यायिकोपलब्धार्था' कहा है, अर्थात् आख्या-यिका वह कथा है जिसका सत्यार्थ ज्ञात हो। कथा का विषय कल्पित होता है। आगे चल कर आख्यायिका के इस लक्षण का विकाश हुआ और भिन्न-भिन्न आचार्यों ने अपनी-अपनी परिभाषा की। हर्षचरित और कादम्बरी को देख कर आख्यायिका का विषय ऐतिहासिक होना और कथा का कल्पनाप्रसूत होना, ऐसा ज्ञात होता है। अग्निपुराण के अनुसार आख्यायिका वह है जिसमें लेखक के वंश की प्रशंसा कुछ विस्तार से हो, कन्याहरण, संग्राम, विपलम्भ आदि विपत्तियों का वर्णन हो, रीति और वृत्ति अति प्रदीप्त शैली में हों, परिच्छेदों का नाम उच्छ्वास हो, चूर्णक शैली का बाहुल्य हो तथा वक्र और अपवक्र नामक श्लोक हों (अग्नि० ३३६।१३-१४)। कथा में इसके विपरीत कुछ श्लोकों में कवि-वंश का संक्षिप्त वर्णन हो, मुख्यार्थ के अवतरण के रूप में दूसरी कथा कही जाय, जिसमें परिच्छेद न हों अथवा कहीं पर लम्बक हों (अग्नि० ३३६।१५-१७)। दण्डी ने भी काव्यादर्श में दोनों के भेद-बताने का प्रयत्न किया है। आख्यायिका का वक्ता स्वयं नायक होता है, कथा का नायक या अन्य कोई; किन्तु यह नियम सर्वत्र लागू नहीं। दण्डी दोनों में किसी विशेष अन्तर के पक्षपाती न थे। नाममात्र का ही भेद है, यही उनका तात्पर्य था। पर बाण ने दोनों को अलग-अलग माना है। हर्षचरित में वक्रादि छन्दों का भी प्रयोग किया है और उच्छ्वास के रूप में विभाग किया है। कथा में बाण ने इससे बिलकुल भिन्न दृष्टि अपनाई है। आगे चल कर आचार्यों ने हर्षचरित और कादम्बरी को देख कर ही आख्यायिका और कथा के लक्षण बनाये हैं। दण्डी के अनुसार नाम-भेद वाला पक्ष किसी को सम्मत नहीं।

बाण ने अनेक आख्यायिकाकार कवियों की आख्यायिकाएँ देखी थीं। सम्भवतः महाभाष्य में उल्लिखित वासवदत्ता नाम की आख्यायिका से ही बाण परिचित हों। सुबन्धु की वासवदत्ता, जो कथारूप में अभी उपलब्ध है, बाण के बाद की रचना हो। पतंजलि ने वासवदत्ता के अतिरिक्त सुमनोत्तरा और भैमरथी आख्यायिकाओं का भी

उल्लेख किया है। तात्पर्य यह कि बाण का हर्षचरित संस्कृत-साहित्य की पहली आख्यायिका नहीं, पर यह अवश्य है कि उपलब्ध पहली आख्यायिका यही दृष्टिपथ में आती है।

बाण की शैली

अब हमें संक्षेप में बाण की शैली के आधार पर वर्णनों का अध्ययन कर लेना चाहिए। बाण के समय से ही चार प्रकट की गद्यशैलियाँ चल पड़ी थीं, जिनमें बाण के साहित्य में तीन मिलती है, जैसे—एक दीर्घ समास वाली, दूसरी अल्प समास वाली और तीसरी समास-रहित। लम्बे-लम्बे समासों वाली शैली को उत्कलिका, छोटे-छोटे समासों वाली शैली को चूर्णक और समासरहित शैली को आविद्ध कहते हैं। बाण को इन तीनों शैलियों में बड़ी सफलता प्राप्त थी। उन्हें किसी विशेष शैली पर आग्रह नहीं था, फिर भी उत्कलिका अर्थात् दीर्घ समास वाली शैली बाण के चित्रात्मक प्रसंग के अनुकूल पड़ती थी। इसलिए बाण वर्णनों में प्रायः इसका आश्रयण करते हैं। हर्षचरित के दधीचिवर्णन, ग्रीष्मवर्णन आदि प्रसंगों में विशेष रूप से यह शैली प्रयुक्त है। वर्णनों में चलचित्र के समान शब्दों के माध्यम से छोटे-छोटे चित्र प्रस्तुत करने पड़ते हैं। संस्कृत भाषा की महती विशेषता है कि उन लघु चित्रों को प्रस्तुत करने में कवि कई शब्दों को गूँथकर एक लड़ी बना डालता है। बाण के जिस वर्णन को लीजिए, उसमें दीर्घ समासोंवाली शैली मिलेगी। वर्णन के अन्त में प्रायः बाण उत्कलिका को छोड़कर समासरहित आविद्ध शैली का आश्रयण करते हैं। आविद्ध शैली में किसी चित्र को प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। वस्तु से सम्बन्धित कुछ बातों की सामान्य चर्चा के लिए यह उपयोगी है। बाण ने अपने वर्णनों में प्रायः ऐसा ही किया है। चूर्णकशैली को जिसमें छोटे-छोटे समास होते हैं, बाण खूब लिखते हैं। इसके लिए कोई खास नियम नहीं है। वर्णन करते-करते कभी-कभी शास्त्रीय उपदेश भी करने की प्रवृत्ति बाण के साहित्य में जगह-जगह मिलती है। उसमें प्रायः अल्पसमास चूर्णकशैली बाण को पसंद है। बाण की शैली का निखरा हुआ रूप हर्षचरित के चतुर्थ उच्छ्वास में जहाँ राज्यश्री के विवाह का प्रसंग है, मिलता है। हर्षचरित की अपेक्षा कादम्बरी के वर्णन चित्रमयता और प्राञ्जलता तथा सरसता की दृष्टि से अपूर्व बन पड़े हैं। महाश्वेता, कादम्बरी आदि के वर्णनों में बाण की अलौकिक वर्णन-क्षमता का परिचय मिलता है।

बाण स्वयं कादम्बरी में गद्य की उत्कृष्ट शैली की ओर संकेत करते हुए लिखते हैं—'उत्कृष्टकविगद्यमिव विविधवर्णश्रेणिप्रतिपाद्यमानाभिनवार्थसञ्चयम्।' अर्थात् नाना प्रकार के वर्णों द्वारा नये अर्थ-समूह का प्रतिपादन करने वाला गद्य उत्कृष्ट होता है अथवा वह उत्कृष्ट कवि द्वारा लिखा जाता है। रीति की दृष्टि से बाण में पाञ्चाली रीति का प्राचुर्य है। स्वयं भोजराज भी इसे स्वीकार करते हैं—

शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चाली रीतिरिष्यते।
शिलाभट्टारिकावाचि बाणोक्तिषु च सा यदि॥ (सरस्वतीकण्ठाभरण)

अर्थात् शब्द और अर्थ का समान रूप से गुम्फन पाञ्चाली रीति में होता है, वह शिलाभट्टारिका और बाण दोनों की उक्तियों में पाई जाती है। विषय के अनुरूप शब्दावली का प्रयोग ही पाञ्चाली रीति का तात्पर्य है। बाण इसके सिद्धहस्त कवि हैं।

इस भूमिका में बाण के जीवन और साहित्य के सम्बन्ध में कुछ उपयोगी बातों की चर्चा की गई है। आशा है बाण के विद्यार्थी इससे लाभान्वित होंगे। श्रद्धेय डा० वासुदेव शरण जी अग्रवाल ने हर्षचरित और कादम्बरी पर अलग-अलग अपना सांस्कृतिक अध्ययन प्रस्तुत किया। भूमिका में मैंने उनकी दृष्टि का बहुत अंश में अनुसरण करने का प्रयत्न किया है। बाण के साहित्य को जानने के लिए जो कुछ अन्य स्रोत भी मिले हैं मैंने उनका उपयोग किया है।

अनुवाद के सम्बन्ध में

हर्षचरित का अनुवाद मैंने किया यह कहने की हिम्मत मुझमें नहीं। अनुवाद आरम्भ करने के पूर्व मैंने अपने गुरुदेव डा० अग्रवाल जी से इस सम्बन्ध में पूछा था। उन्होंने सहर्ष अनुमति दी और उत्साहित किया। तत्काल स्वयं चौखम्बा विद्याभवन के अध्यक्ष महोदय से उन्होंने बातें भी कर लीं और मुझे अनुवाद तैयार करने के लिए सूचित किया। उन्होंने उत्साहित करते हुए यह कहा कि कहीं शंका हो तो पूछ लेना। मैंने अपना कार्य आरम्भ कर दिया। इसी बीच अध्यापनार्थ मुझे वैद्यनाथधाम गुरुकुल आना पड़ा। मैं ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता गया मेरी कठिनाइयाँ भी बढ़ने लगीं। किसी-किसी प्रसंग में मैंने अपने आपको सर्वथा असमर्थ पाया। अनुवाद की परिसमाप्ति की लोलुपता और गुरुदेव का असान्निध्य दोनों ने मुझे अहोरात्र उद्वेलित किया, तब मैंने ऐसे प्रसंगों में 'हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन' की शरण ली और बड़ी सरलता से पूरे ग्रन्थ का अनुवाद तैयार कर लिया। इस अनुवाद की आधारभित्ति गुरुदेव की कृति ही है। अतः गुरुदेव के लिए मैं अपनी कृतज्ञता कैसे प्रकट करूँ? आशा है वे मेरी विवशताजन्य धृष्टता को क्षमा कर देंगे।

चौखम्बा विद्याभवन के अध्यक्ष महोदय धन्यवाद के पात्र हैं, जिन्होंने मेरे अनुवाद को अपने यहाँ से प्रकाशित किया और आगे के कार्य के लिए भी प्रेरित किया है।

जगन्नाथ पाठक

विषय-सूची

प्रथम उच्छ्वास (वात्स्यायनवंशवर्णन)

द्वितीय उच्छ्वास (राजदर्शन)

तृतीय उच्छ्वास (राजवंशवर्णन)

चतुर्थ उच्छ्वास (चक्रवर्तिजन्मवर्णन)

पञ्चम उच्छ्वास (महाराज-मरण-वर्णन)

षष्ठ उच्छ्वास (राजप्रतिज्ञावर्णन)

सप्तम उच्छ्वास (छत्रलब्धि)

अष्टम उच्छ्वास (विन्ध्याद्रिनिवेशन)

द्वितीय संस्करण

प्रथम संस्करण में जो त्रुटियाँ रह गई थीं, उन्हें इसमें जहाँ तक हो सका है, दूर करने का प्रयत्न किया गया है। आशा है, हर्षचरित के मूल अर्थ तक पहुँचने में यह अनुवाद प्रामाणिक रूप में सहायक होगा।

इधर बिहार के कुछ विद्वानों में महाकवि बाणभट्ट के जन्म-स्थान को लेकर बहुत दिनों से विवाद चला आ रहा है। कुछ लोग शाहाबाद के किसी स्थान को बाणभट्ट की जन्मभूमि सिद्ध करते हैं, तो कुछ लोग गया जिले के किसी स्थान को। अनुकूल तर्क अपने-अपने अनुसार दोनों पक्षों के लोग उपस्थित करते हैं। अस्तु, बाणभट्ट ने 'हर्षचरित' में अपने ग्राम का नाम 'प्रीतिकूट' निर्दिष्ट किया है, जो शोणभद्र के तट पर था।

—जगन्नाथ पाठक

॥ श्रीः ॥

हर्षचरितम्

'सङ्केत'-संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

प्रथम उच्छ्वासः

¹नमस्तुङ्गशिरश्चुम्बिचन्द्रचामरचारवे ।
त्रैलोक्यनगरारम्भमूलस्तम्भाय शम्भवे ॥ १ ॥

❀ सङ्केतः ❀

श्च्योतन्मदाम्बुभरनिर्भरचण्डगण्डशुण्डाग्रशौण्डपरिमण्डितभूरिभृङ्गान् ।
विघ्नानिवानवरतं चलगण्डतालैरुत्सारयञ्जयति जातघृणो गणेशः ॥
शङ्करनामा कश्चिच्छ्रीमत्पुण्याकरात्मजो व्यलिखत् ।
शिष्टोपरोधवशतः सङ्केतं हर्षचरितस्य ॥

'सर्वकर्माणि कुर्वीत प्रणिपत्येष्टदेवताम्' इति शिष्टाचारमनुपालयन् 'अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः । यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते ॥' इति काव्यलक्षणामपूर्वां सृष्टिं स्थिरां प्रवर्तयन्नेष कविः शिवं बहुशक्तियुतमपि नियतशक्त्यात्मकमेव स्तौति—नमस्तुङ्गेत्यादिना । न क्वचित्प्रणतो यो मूर्धा तत्स्पर्शी चन्द्र एव सितवालतुल्यप्रभाप्रसरतया स्वेदाविनाशाद्विशिष्टस्थानस्थितश्च चामरम् । त्रैलोक्यमेव नानाभङ्गिशोभित्वान्नगरं तदारम्भे मूलस्तम्भः । नगरारम्भे हि मूलस्तम्भो भवति ।

त्रिभुवनरूपी नगर के निर्माण-आरम्भ के मूलस्तम्भ; (जिनके) उन्नत (कहीं भी न झुकने वाले) मस्तक पर चन्द्र के चँवर की शोभा है (उन) भगवान् शङ्कर को नमस्कार है† ॥ १ ॥

† कवि ने भगवान् शंकर को त्रिभुवन-नगर के निर्माण-आरम्भ का मूलस्तम्भ

१. जीवानन्दपाठे प्रथमः श्लोकः—
चतुर्मुखमुखाम्भोजवनहंसवधूर्मम । मानसे रमतां नित्यं सर्वशुक्ला सरस्वती ॥

¹हरकण्ठग्रहानन्दमीलिताक्षीं नमाम्युमाम् ।
कालकूटविषस्पर्शजातमूर्च्छागमामिव ॥ २ ॥

तच्च पट्टबन्धादिवदुत्प्रेक्षणानन्तरमुन्नते पृष्ठदेशे चन्द्रतुल्यं श्वेतं चामरं क्रियत इति स्थितिः। केचित्पुनः—त्रैलोक्यनगरस्यारम्भे मूलं मूलकारणं परमाणवस्तेषामुपाश्रयेण मूलकारणत्वात्स्तम्भ इव। ते हि तद्वशात्कार्यमारमन्ते। तस्य निमित्तकारणत्वादित्याहुः। 'स्वयम्भूः शम्भुरादित्यः' इति नामसहस्रे दृष्टत्वाद्धरेः, 'शम्भुर्ब्रह्मत्रिलोचनौ' इत्यभिधानकोशदर्शनाच्च ब्रह्मणोऽपि नमस्कारोऽयमित्यन्ते वदन्ति। व्याकुर्वते च हरिपक्षे—त्रैलोक्याक्रमणकाले। यद्वा—'यस्याग्निरास्यं द्यौर्मूर्धा खं नाभिश्चरणौ मही' इत्यभिप्रायेण तुङ्गमुच्छ्रितं द्युलक्षणं यच्छिरस्तच्चुम्बिचन्द्र एव चामरं तेन चारवे। ब्रह्मपक्षे—चन्द्रः स्वर्णं तन्मयं चामरमिव चामरं केशकलापः। हिरण्यकेशो हि ब्रह्मा त्रैलोक्यादीनि शेषं सर्वत्र तुल्यमिति ॥ १ ॥

हरेत्यादिना। प्रियं प्रति गाढस्नेहादि सौकुमार्यं चोपमयोच्यते। कालकूटविषेति अर्थसार्थः सामान्यपदप्रयोगो मेरुमहीधरचूतवृक्षादिवत्। आग्रमः प्रारम्भः ॥ २ ॥

उमा को प्रणाम करता हूँ, जिनकी आँखें शिव के कण्ठालिङ्गन के आनन्द से मुंद गई हैं, मानों शिव के गले में स्थित कालकूट विष के स्पर्श हो जाने से उन्हें मूर्च्छा आ गई हो ॥ २ ॥

कहा है, जिस प्रकार शङ्कर के उन्नत मस्तक पर चन्द्र की शोभा है उसी प्रकार प्राचीन वास्तुकला के अनुसार पहले मूलस्तम्भों पर चन्द्राकृति चंवर बनाये जाते थे, जो स्तम्भ के उपरिभाग में लगे होते थे। चन्द्र के साथ चंवर का अभेद इस अंश में भी है कि दोनों श्वेतवर्ण एवं श्रमापहारक हैं, चन्द्र की किरणों के समान ही चंवर के उजले केश-जाल छिटके रहते हैं। किसी के अनुसार ईश्वर (शिवजी) जगत के निमित्त कारण होने से त्रिभुवन रूपी नगर के आरम्भ में मूल अर्थात् मूलकारण (उपादान कारण) परमाणुओं के आश्रय हैं, स्तम्भ हैं।

किसी ने इस श्लोक को ब्रह्माजी और विष्णु के पक्ष में भी लगाया है। विष्णु वामनावतार में त्रैलोक्य को लांघने के समय उनके सिर से चन्द्र का चंवर लग गया, अर्थात् आकाश रूप उनके सिर से चंवर रूप चन्द्र लगा रहता है। और ब्रह्माजी हिरण्यकेश होने के कारण स्वर्णमय केशकलाप वाले हैं। इस पक्ष में चन्द्र का अर्थ हिरण्य या सुवर्ण है।

पाठान्तरम्—१. हरकण्ठाग्रहानन्द। २. स्पर्शाज्जात।

नमः सर्वविदे तस्मै व्यासाय कविवेधसे ।
चक्रे पुण्यं सरस्वत्या यो वर्षमिव भारतम् ॥ ३ ॥

संप्रत्युत्कृष्टकवित्वाभिमानेन तादृशमेव कविवरं स्तौति—नमः सर्वेत्यादिना । सर्वां वेदादिका विद्या गीतादिकलाश्च वेत्ति यस्तस्मै । तदुक्तम्—'नासौ शब्दो न तद्वाच्यं न सा विद्या न सा कला । जायते यत्र काव्याङ्गमहो भारो महाकवेः ॥' इति कविरेव वेधाः । उक्तं च—'अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः' । कवीनां वेधाः । कविशब्दोऽत्रोपचारात्कविबुद्धिषु वर्तते । तेन कविबुद्धीनां श्रेष्ठ इत्यर्थः । तथा चाह मुनिः—इतिहासोत्तमादस्माज्जायन्ते कविबुद्धयः' इति । यद्वा व्युत्पत्त्युत्पादनद्वारेण कवय एवंभूताः सन्तः क्रियन्ते । मुख्य एव कविशब्दस्यार्थः । यदुक्तम्—'इदं कविवरैः सर्वैराख्यानमुपजीव्यते' इति । पुण्यं पावनम् । यदुक्तम्—'भारताध्ययनात्पुण्यादपि पादमधीयतः । श्रद्दधानस्य पूयन्ते सर्वपापानि देहिनः ॥' इति । सरस्वती वाणी, तस्या लताया इव पुष्पादिहेतुत्वाद्वर्षं वृष्टिमिव । वर्षं वा स्थानविशेषः । यतोऽसौ तत्रास्ते । यदुक्तम्—'यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्' । भरतानधिकृत्य कृतो ग्रन्थो भारतस्तम् । यद्वा—भारतं वर्षमिव । भरतः कश्चिद्राजा तस्य निवासं भारतं वर्षं भूभागैकदेशस्तदिव । उक्तं च—'स्याद्वृष्ट्यां लोकधात्र्यंशे वत्सरे वर्षमस्त्रियाम्' इति । यद्वा—भारतवर्षान्तरस्था भावा मनुष्येषु सुलभास्तद्वन्महाभारतस्था सरस्वती । एतदपि सरस्वत्याख्यया पुण्यम् ॥ ३ ॥

समस्त (विद्याओं और कलाओं को) जानने वाले और कवियों के प्रजापति महर्षि व्यास को प्रणाम है, जिन्होंने सरस्वती (नदी) से पवित्र (भारत) वर्ष की भाँति (अपनी) सरस्वती (वाणी) से भारत (महाभारत ग्रन्थ) का निर्माण किया† ॥ ३ ॥

† जिस प्रकार कालिदास के आदर्श थे—महर्षि वाल्मीकि, उसी प्रकार महर्षि व्यास को सम्भवतः इन्होंने अपना आदर्श माना था । यह चयन बाण के स्वभाव के अनुकूल था । बाण अपनी कृति के द्वारा सर्व जगत् को 'बाणोच्छिष्ट' कर लेना चाहते थे, जैसा महर्षि व्यास ने भी कहा है—'जो जो यहां (महाभारत में) है, वह अन्यत्र है और जो-जो यहां नहीं है, वह कहीं नहीं है ।' इसी प्रकरण के नवम पद्य में स्वयं बाण ने कवि की उस वाणी को सराहा है जो महाभारत की कथा के समान सभी प्रकार के वृत्तान्तों से युक्त होकर तीनों जगत् में व्याप्त नहीं हो जाती है अर्थात् अपनी व्याप्ति में सबको समेट नहीं लेती है ।

प्रायः कुकवयो लोके रागाधिष्ठितदृष्टयः[१] ।
कोकिला इव जायन्ते वाचालाः [२]कामकारिणः ॥ ४ ॥
सन्ति श्वान इवासंख्या जातिभाजो गृहे-गृहे ।

एवं सर्वज्ञतागुणकथनेन कविप्रशंसां कृत्वा काव्यप्रशंसामाह—प्राय इत्यादिना । काव्यमेतं नाम स्वभावसुभगम् । येनेदृशा अपि कवयः प्रायः प्राचुर्येण कोकिला इव जायन्ते वल्गुवाचः सम्पद्यन्ते, किं पुनः संविशिष्टा न जायेरन् । केचित्पुनर्भूयसा कुत्सिताः कवयो जायन्त इति कुकविनिन्दैवेयमिति व्याख्यातवन्तः । रागो द्वेषपूर्वकोऽनर्थाभिनिवेशस्तेनाधिष्ठिता दृष्टिर्बुद्धिर्येषाम् । वाचाला असंबद्धप्रलापिनः । कामेन स्वेच्छया, न त्वलंकारकृद्दर्शितनीत्या कुर्वन्ति ये ते । कोकिलपक्षे—कुकन्ति गृह्णन्ति चेतांसीति कुकाः, ते च ते वयो मयूरप्रवराः पक्षिणः, रागो लौहित्यम् । दृष्टिश्चक्षुः । वाचा भारत्या । आला आ समन्ताल्लान्त्यावर्जयन्ति यतस्तादृशाः सन्तः । कामं व्यसनं कुर्वन्ति तच्छीलाः । कामोद्दीपनविभावतां यान्तीत्यर्थः । यद्वा—अवाचालाः । अकारप्रश्लेषोऽत्र ॥ ४ ॥

सन्तीत्यादि । असंख्या अगणनार्हाः । जाति स्वरूपवर्णनामात्ररूपां वक्रोक्तिशून्यां भजन्ते । 'गतोऽस्तमर्को भातीन्दुर्यान्ति वासाय पक्षिणः' इत्यादिवत् । श्वानोऽप्यसंख्याः । नास्ति संख्यं संग्रामो येषां ते । जातिशब्देनात्र श्वजातिसमवेता अमेध्यभक्षणादयो गृहीताः । यद्वा—श्वत्वं नाम जातिस्तत्प्रतिपादनं प्रयोजनान्तरशून्यतामावेद-

---

राग (लाली) से युक्त दृष्टि वाले कोकिल जिस प्रकार वाचाल एवं कामोद्दीपक होते हैं उसी प्रकार संसार में प्रायः कुकवि राग (द्वेषपूर्वक अनर्थाभिनिवेश) से युक्त दृष्टि वाले होकर असम्बद्ध प्रलाप करते हैं और स्वेच्छानुसार काम करते हैं (न कि आलङ्कारिकों द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर चलते हैं) ॥ ४ ॥

कुत्तों के समान घर-घर में केवल जन्म लेनेवाले† कवि असंख्य हैं, जो स्वरूप मात्र का वर्णन करते हैं । शरभों के समान उत्पादक‡ अर्थात् नव निर्माण करने वाले कवि

---

† जातिभाजः, अर्थात् वे कवि जो केवल जाति (स्वभाव वर्णना मात्र) करने वाले, वक्रोक्तिशून्य हैं ।

‡ उठे पैरों वाले । शरभ एक प्राणी है जिसके आठ पैर होते हैं और सब ऊपर की ओर उठे रहते हैं ।

---

१. मूर्तयः । २. कामचारिणः ।

उत्पादका न बहवः कवयः शरभा इव ॥ ५ ॥
अन्यवर्णपरावृत्त्या बन्धचिह्ननिगूहनैः ।
अनाख्यातः सतां मध्ये कविश्चौरो विभाव्यते ॥ ६ ॥
श्लेषप्रायमुदीच्येषु प्रतीच्येष्वर्थमात्रकम् ।
उत्प्रेक्षा दाक्षिणात्येषु गौडेष्वक्षरडम्बरम् ॥ ७ ॥

यति । उत्पादना नवनिर्माणकारिणः, ऊर्ध्वपादाश्च । शरभा हि प्राणिभेदाः । अष्टपादा एते । श्वजातीया इति केचित् ॥ ५ ॥

अन्येति । कविश्चौरः सहृदयानां मध्येऽनाख्यातः न कथितोऽपि ज्ञायते । न आ समन्तात्ख्यातः, अपि तु किञ्चित्प्रथितो वा । अन्ये पूर्वकविनिबद्धविलक्षणा ये वर्णा अक्षराणि तेषां रचनेन बन्धचिह्नं श्रीलक्ष्मीप्रभृतिरचनालिङ्गम् । अन्ये तु भाषालंकारप्रभृतिबन्धचिह्नमाहुः । अथ च सतां साधूनां मध्ये चौरो लक्ष्यते । कीदृक् ? न ना अना कापुरुषः अख्यातोऽप्रसिद्धः । केन ? अन्यः प्राक्तनच्छायाव्यतिरिक्तस्त्रासकृतः पाण्डिमादिर्वर्णो मुखरागविशेस्तत्परिवर्तनेन । यद्वा—शूद्रत्वे सति द्विजादिवर्णाश्रयेण । स्वजात्युचितस्य स्वभावस्य त्युक्तुमशक्यत्वाद्भावप्रकटनमवश्यमेव भवति । यतो बन्धः शृङ्खलादिकृतो ग्रन्थिस्तच्चिह्नं त्वग्दूषणादि ॥ ६ ॥

श्लेषेत्यादि । मात्रकपदेन श्लेषयमकाद्यलंकारशून्यत्वं दर्शयति । अक्षरेत्यादिनार्थविशेषाभावं प्रसादादिगुम्फनाभावं चाख्याति । एतदुक्तं भवति—क्वचित्कश्चिद् गुणोऽपि भवति । स च भवन्नपि न सहृदयजनावर्जक इति । अमुनैवाभिप्रायेण नव इत्यादीनि प्रत्येकं विशेषणपदानि वक्ष्यति ॥ ७ ॥

जगत् में बहुत नहीं हैं ॥ ५ ॥

सहृदय जनों के बीच अप्रसिद्ध कवि दूसरे कवि के वर्णों को बदल देने से एवं निर्माण के चिह्नों को छिपाने से चोर समझा जाता है, क्योंकि चोर भी लोगों के बीच मुख के अकस्मात् फीके पड़ जाने से और हाथों पर लगे हुए बेड़ी के दागों को छिपाने से पहचान लिया जाता है ॥ ६ ॥

उत्तरी क्षेत्र के कवियों की रचना श्लेष-प्रधान होती है। पश्चिमी क्षेत्र के कवि प्रधान रूप से अर्थाडम्बर में लगे रहते हैं। दाक्षिणात्य कवि उत्प्रेक्षा करने में निपुण होते हैं और गौड़देशीय (प्राच्य) कवियों की रचना में अक्षरमात्र का प्राचुर्य रहता है ॥ ७ ॥

---

१. डम्बरः ।

नवोऽर्थो जातिरग्राम्या[1] श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः ।
[2]विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुष्करम् ॥ ८ ॥
किं कवेस्तस्य काव्येन सर्ववृत्तान्तगामिनी ।
कथेव भारती यस्य न [3]व्याप्नोति जगत्त्रयम् ॥ ९ ॥
उच्छ्वासान्तेऽप्यखिन्नास्ते येषां वक्त्रे सरस्वती ।

नव इत्यादि । नव आद्यैः कविभिरनिबद्धः; चमत्कारी च । जातिः स्वभावोक्तिः । अग्राम्येति । न तु 'गतोऽस्तमर्कः' इत्यादिरूपा । सधर्मेषु तन्त्रप्रयोगः श्लेषः । अक्लिष्टः सम्यगनेकार्थप्रतिपादनक्षमः । स्फुटो दुर्बोधभङ्ग्यादिभिरदूषितः। रसः शृङ्गारादिः । विकट उदारतालक्षणबन्धगुणयुक्तः । यत्र सति नृत्यन्तीव पदानि प्रतिभासन्ते ॥ ८ ॥

किमित्यादि । वृत्तानि वर्णमात्रागणसमार्धसमविषमरूपाणि तदन्तगमनं तद्विरचनक्षमत्वम् । भारती वाणी । व्याप्नोति । अदृष्टमपि दृष्टमिव जगत्त्रयं प्रतिभानवशाद्व्युत्पत्तेश्च तथात्वेन प्रकाशयति । यद्वा—जगत्त्रयप्रथिता भवतीति स्फुट एवार्थः। भरतानधिकृत्य ग्रथिता भारती कथेव । सापि सर्वे ये वृत्तान्ताः सत्पुरुषचरितान्युपाख्यानानि च तान्गमयति बोधयति । तथा सर्वत्र ज्ञेया भवति । तथा च— 'नारदोऽश्रावयद्देवानसितो देवलः पितॄन् । गन्धर्वयक्षरक्षांसि श्रावयामास वै शुकः ॥' इत्युक्तम् ॥ ९ ॥

अधुना स्वगुरुतः स्वप्रभृतिभिः कृतानाख्यायिकादीन्काव्यभेदान्स्तुवन्ननौद्धत्यार्थं सर्वत्र नमस्कारमाह—उच्छ्वासान्त इति । उच्छ्वास इवोच्छ्वासो विश्रान्तिस्थानं सर्गादिवत्कथासन्धिस्तस्यान्तेऽप्यखिन्ना उच्छ्वासान्तरकरणक्षमाः । अविच्छिन्नप्रतिभाना इति यावत् । गुरुत्वाद्बहुवचनम् । 'नान्त्यन्ते ह्यम्बुधेर्वक्त्रम्' इति वक्त्रलक्षणम्'।

नवीन हर्ष (जिसे अबतक किसी कवि ने नहीं लिखा हो, अर्थात् चमत्कारी), अग्राम्य जाति (अर्थात स्वभावोक्ति) अक्लिष्ट (बिना माथापच्ची के ही समझ में आ जाने वाली) श्लेष, सुबोध रस एवं आकर्षक शब्दों का संचयन—इन सब गुणों का एकत्र (किसी काव्य में) होना कठिन है ॥ ८ ॥

उस कवि के काव्य से क्या, जिसकी वाणी सब प्रकार के वृत्तान्तों वाली महाभारत की कथा के समान तीनों जगत् में व्याप्त नहीं होती ॥ ९ ॥

जो उच्छ्वास के बाद भी नहीं थकते और जिनके मुख में सरस्वती विराजमान है

---

१. अग्राम्याः । २. विकटो । ३. प्राप्नोति दिगन्तरम् ।

कथमाख्यायिकाकारा न ते वन्द्याः कवीश्वराः ॥ १० ॥
कवीनामगलद्दर्पो नूनं वासवदत्तया ।
शक्त्येव पाण्डुपुत्राणां[1] गतया कर्णगोचरम् ॥ ११ ॥
पदबन्धोज्ज्वलो[2] हारी कृतवर्णक्रमस्थितिः ।
भट्टारहरिश्चन्द्रस्य गद्यबन्धो[3] नृपायते ॥ १२ ॥

वक्त्रे सरस्वती । वृत्तविशेषयोगिनीत्यर्थः । एतस्मिन्नाख्यायिकाकृद्भिर्भाविवस्तुसंसूचनाय वाग्विरच्यते । तथा चाह भामहः—'वक्त्रं चापरवक्त्रं च काव्ये काव्यार्थशंसिनि' इति । आख्यायिकाः कुर्वन्तीत्याख्यायिकाकाराः । यद्वा—आख्यायिकेवाकारो येषाम् । अथ 'कविं पुराणम्' इति न्यायेन कवयश्च त ईश्वरा हरिहरब्रह्माणः । उच्छ्वसन्ति भूतान्यस्मिन्निन्त्युच्छ्वासः कल्पस्तदन्ते संहारेऽपि तेऽखिन्नाः कल्पान्तारजननोद्योगिनस्तेषां मुखे वागीशी । उक्तं च—सरस्वतीवाग्बलमुत्तमोऽनिलः' इत्यादि । आख्यायिकाभिराख्यानैराकारो येषाम् । सर्वस्य हि शास्त्रागमसमधिगम्याः, न पुनः प्रत्यक्षलक्ष्याः । ते च वन्द्याः सर्वस्य ॥ १० ॥

कवीनामिति । वासवदत्ता कथा, वासवेन शक्रेण दत्ता च । कर्णः श्रवणं, राधेयश्च । कवीनां काव्यकर्तृणां, द्रोणादीनां च ॥ ११ ॥

पदेत्यादि । पदानां सुप्तिङन्तानां बन्धः प्रकृष्टा रचना । रीतिरित्यर्थः । स्वमण्डलावष्टम्भश्च । हारी हृद्यः, हारयुक्तश्च । अहारीति वा । न कस्यचिदपि यो हरति । कृता वर्णानामक्षराणां क्रमेण भामहादिप्रदर्शितनीत्या स्थितिरवस्थानं यत्र, कृतयुगवद्वर्णानां द्विजादीनां क्रमेण मन्वादिस्मृतिकारप्रकाशितमार्गेण स्थितिः पालनं यस्मिन्सतीति च । भट्टारेति पूजावचनम् ॥ १२ ॥

ऐसे आख्यायिकाओं का निर्माण करने वाले कवि क्यों नहीं वन्दनीय हैं ? ॥ १० ॥

निश्चय ही सुबन्धु की रचना 'वासवदत्ता' के कानों तक पहुँचते ही कवियों का अभिमान उस प्रकार चूर्ण हो गया जिस प्रकार इन्द्र द्वारा प्राप्त 'शक्ति' नामक अस्त्र विशेष को कर्ण के पास देखते ही द्रोण आदि का गर्व बिलकुल नहीं रहा ॥ ११ ॥

आर्य हरिश्चन्द्र द्वारा निर्मित गद्यकाव्य राजा के समान है, उसमें शब्दों की रचना निर्मल है, वह मनोहर है एवं उसमें आलङ्कारिकों के मतानुसार अक्षरों की एक क्रम से संघटना है । (राजा भी अपने पद या मण्डल पर जम कर रहता है, हार धारण करता है, या 'अहारी' पाठ के अनुसार किसी का हरण नहीं करता एवं ब्राह्मण आदि वर्णों की क्रमानुसार स्थिति रखता है) ॥ १२ ॥

---

१. पुत्रस्य । २. पदबद्धोज्ज्वलो हारिकृतकण्ठक्रमस्थितिः । ३. पद्य ।

[1]अविनाशिनमग्राम्यमकरोत्सातवाहनः ।
विशुद्धजातिभिः कोशं रत्नैरिव सुभाषितैः ॥ १३ ॥
कीर्तिः प्रवरसेनस्य प्रयाता कुमुदोज्ज्वला ।
सागरस्य परं पारं कपिसेनेव सेतुना ॥ १४ ॥
सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः[2] ।
सपताकैर्यशो लेभे [3]भासो देवकुलैरिव ॥ १५ ॥
[4]निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु ।

अविनाशिनमित्यादि । अविनाशिनं प्रसिद्धम्, अनश्वरं । च अग्राम्यं वैदग्ध्ययुक्तम्, अग्रामभवं च । जातिः स्वभावोक्तिरूपोऽलङ्कारः । कोशः समुच्चयः, गञ्जश्च । सुभाषितैः सूक्तिभिः, शोभनं च भाषितं प्रभाववर्णनं येषां तैः ॥ १३ ॥

कीर्तिरित्यादि । प्रवरसेन कश्चित्कविः प्रवे प्लुते रसो येषां ते प्रवरसा वानरास्तेषामिनः स्वामी, प्रवरा च सेना यस्य स सुग्रीवश्च । कुमुदवत्कैरववत् । यद्वा—कुं भूमिस्तस्या मुत् प्रहर्षस्तयेति, कुमुदेन वानरसेनापतिना च । सेतुः प्राकृतकाव्यग्रन्थः, सेतुश्च ॥ १४ ॥

सूत्रेत्यादि । सूत्रधारः पूर्वरङ्गस्य प्रवक्ता चाचिक्यः' स्थपतिश्च । भूमिकाः पात्राणि रामाद्यनुकार्यावस्थाभूमयः, उपभोगनिमित्तान्युत्पत्तिस्थानानि । पताका अर्थप्रकृतिः । उक्तं च—'बीजं बिन्दुः पताका च प्रकरी कार्यमेव च । अर्थप्रकृतयो ह्येताः पञ्च सर्वप्रयोगगाः ॥' इति । 'यद्वृत्तं तु परार्थं स्यात्प्रधानस्योपकारकम् । प्रधानवच्च कल्पेत सा पताकेति कीर्त्यते ॥' इति वैजयन्ती च पताका ॥ १५ ॥

निर्गतास्विति । निर्गता उच्चारितमात्राः । आस्तां तावदर्थावगतिः, आपात एव

सातवाहन ने निर्दोष गुणालङ्कारयुक्त सुभाषितों का एक संग्रह तैयार किया जो विशुद्ध जाति के रत्नों के कोष के समान कभी विनष्ट नहीं होने वाला, वैदग्ध्यपूर्ण हुआ ॥ १३ ॥

प्रवरसेन नामक कवि की कुमुद के समान उज्ज्वलकीर्ति सेतु (बन्ध) नामक प्राकृत काव्य के द्वारा पार कर गई, जैसे कुमुद नाम के एक वानर-सेनापति से शोभित वानर की सेना सेतु के द्वारा समुद्र पार पहुँच गई थी ॥ १४ ॥

भास ने देवमन्दिरों के समान अपने नाटकों से लोक में ख्याति प्राप्त की जिनका आरंभ सूत्रधार करता है, जिनमें पात्रों की भूमिकायें (अवस्थाएं) और सहायक कथायें (पताका) रहती हैं ॥ १५ ॥

नई उकसी हुई मंजरियों के समान मधुर एवं सरस कालिदास की सूक्तियों

१. कुविनाशिनम् । २. भूपिकैः । ३. भासा । ४. निसर्गसूरवंशस्य ।

प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते ॥ १६ ॥
समुद्दीपितकन्दर्पा कृतगौरीप्रसाधना।
हरलीलेव नो कस्य विस्मयाय बृहत्कथा ॥ १७ ॥

गीतध्वनिवत्किमपि श्रोत्रहारिण्यः। यदुक्तम्–'अपर्यालोचितेऽप्यर्थे बन्धसौन्दर्यसंपदा। गीतवद्धृदयाह्लादं तद्विदां विदधाति यत् ॥ तत्काव्यम्' इत्यादि। तथा निर्गताः सर्वदेशप्रतीताः, अन्यत्र–निर्गता अभिनवोद्भिन्नाः न वा कस्येत्यनेनैतदुक्तम्। आस्तां तावत्काव्यतत्त्वविदः सहृदया विवेक्तारः येऽपि शास्त्रप्रहितबुद्धयो दुरूढमत्सरप्रायास्तेषामपि या हृदयमाह्लादयन्ति। तथा चोक्तम्—'असुणिअ परमंथाण वि हरेइ वाआमआणं कइम्माण। आणाणजकुवलअवणमलद्धगंधाण वि सुहाइ ॥' इति। मधुराश्च ताः सान्द्राः सरसाः। अन्यत्र–मधुना मकरन्देन किञ्जल्केन रसेन सान्द्राः सुगन्धयः ॥ १६ ॥

समुदित्यादि। बृहत्कथा कस्य न विस्मयाय। अपि तु सर्वस्यैव गर्वविनाशाय भवतीत्यर्थः। अद्भुतकथावर्णनाद्वाऽऽश्चर्याय। समुद्दीपितो वृद्धिं नीतः कंदर्पो यस्याम्। कामजनानां बहूनां वृत्तान्तानां वर्णनादुद्बोधितः स्मरो ययेति वा। काव्यसेवया हि शृङ्गाररसः समुद्भवति। तथा चोक्तम्—'ऋतुमाल्यालंकारप्रियजनगान्धर्वकाव्यसेवाभिः। उपवनगमनविहारैः शृङ्गाररसः समुद्भवति ॥' यद्वा समुद्दीपितः ख्यातिं नीतः कन्दर्पो नरवाहनदत्तो यस्यामिति। स हि कामांश इत्यागमः। कृतं गौर्या विद्याभेदस्याराधनं यस्याम्। सा हि नरवाहनदत्तेनेशारूपाराधितेति तत्रोक्तम्। यद्वा—गौरीं प्रति पूरयति गौरीप्रः। साधनपरिकरबन्धो यथा प्रस्तावो यस्माम्। गौरीप्रेरितेन हि हरेण तथा तस्यां परिकरबन्धः कृतो यथा सातीव पिप्रिये। हरलीलापि समुत् सहर्षा, दग्धकामा च। कृतं गौर्याः प्रसाधनं मण्डनं यस्याम्। क्व कामं प्रति तादृग्द्वेषः, क्व च कान्तां प्रति प्रसाधनमिति कृत्वा विस्मयमाश्चर्यम् ।१०॥

उत्तरमात्र से ही किसे आनन्द नहीं आता? ॥ १६ ॥

जैसे कामदेव को जलाकर भस्म करना और पार्वती का शृङ्गार करना आदि परस्पर विरुद्ध बातों से शिव की लीला किसे नहीं विस्मित करती, उसी प्रकार वर्णनों द्वारा कन्दर्प (कामदेव या नरवाहनदत्त) को प्रकाशित करने वाली एवं पार्वती के प्रति आराधना से युक्त (गुणाढ्य की) बृहत्कथा किसे नहीं विस्मय-विमुग्ध करती? ॥ १७ ॥

¹आढ्यराजकृतोत्साहैर्हृदयस्थैः स्मृतैरपि ।
जिह्वान्तःकृष्यमाणेव न कवित्वे प्रवर्तते ॥ १८ ॥
तथापि नृपतेर्भक्त्या भीतो निर्वहणाकुलः ।
करोम्याख्यायिकाम्भोधौ जिह्वाप्लवनचापलम् ॥ १९ ॥
सुखप्रबोधललिता सुवर्णघटनोज्ज्वलैः² ।
शब्दैराख्यायिका भाति शय्येव प्रतिपादकैः ॥ २० ॥

आढ्येति । आढ्यराजः कश्चित्कविः । उत्साहो नृत्ते तालविशेषः । उदीर्यमाणऽगीत्याधारभूतपदोपचारात्काव्यमप्युत्साह इति केचित् । यत्र पूर्वं श्लोकेनार्थं उपक्षिप्यते, पश्चात्स एव गद्येन वितन्यते, मध्ये वृत्तानिबन्धश्च भवति, स परिसमाप्त्यर्थं उत्साह उच्यत इत्यन्ये । अपिः समुच्चये । यद्वा—आढ्यराजहृदयस्था अप्यन्तर्जिह्वां नाकर्षयन्ति, तत्कथा त एव स्मृता इत्यपि शब्दार्थः ॥ १८ ॥

एवमनौद्धत्यमुक्त्वाह—तथेत्यादि । तथापीत्थं जानन्नपि जिह्वाप्लवनलक्षणं चापलं करोमि । यतो नृपतेर्भक्त्याहमभि इतः समन्ताद्युक्तः । निर्वहणे समाप्त्याकुलः । जिह्वा चाब्धावकालवातस्तत्र वहन्त्यां कश्चिद्यथा प्लवनरूपं चापलं करोति । अत्र पक्षे—अभीतोऽत्रस्तः निर्वहणं पारप्राप्तिः । 'कृत्ये च' इति णत्वम् ॥ १९ ॥

सुखेत्यादि । सुखेन जायासम्मितत्वेन हृदयाह्लादनपूर्वम्, न तु वेदितहासादिवत्, यः प्रबोधः प्रकृष्टं बोधनं धर्मादिसाधनव्युत्पत्तिः । उक्तं च—'कटुकौषधि-

---

आढ्यराज के उत्साह या महान् कार्यं को हृदयस्थ करके स्मरण करने पर मानो मेरी जीभ मुँह के भीतर की ओर खिंची जा रही है और कविता करने में प्रवृत्त नहीं हो रही है (निष्कर्ष यह कि आढ्यराज के सामने मैं कवि बनने का साहस नहीं कर पा रहा हूँ) ॥ १८ ॥

ऐसा जानता हुआ भी मैं सम्राट् के प्रति अपने असाधारण अनुराग से प्रेरित होकर आख्यायिका रूपी समुद्र को पार करने में आकुलता और भय का अनुभव करते हुए भी अपनी जीभ (अर्थात् वाणी द्वारा) के चप्पू द्वारा तैरने की चपलता कर रहा हूँ ॥ १९ ॥

बिना किसी आयास के सुखपूर्वक समझ में आ जाने से सुन्दर लगने वाली और आकर्षक रचना वाले एवं विवक्षित अर्थ को व्यक्त करने वाले शब्दों से आख्यायिका उस शय्या के समान शोभित है जिसपर सुखपूर्वक नींद तोड़ी जाती है और जो सोने से मढ़े पावों से चमकती है ॥ २० ॥

---

१. आद्य । २. घटनोज्ज्वला; घटितोज्ज्वला ।

जयति[1] ज्वलत्प्रतापज्वलनप्राकारकृतजगद्रक्षः[2] ।
सकलप्रणयिमनोरथसिद्धिश्रीपर्वतो हर्षः ॥ २१ ॥

वत्काव्यमविद्याव्याधिभेषजम् । आह्लाद्यमृतवत्काव्यमविवेकगदापहम् ॥' इति । सुवर्णघटना शोभनाक्षररचना । प्रतिपादकैर्विवक्षिताभिधायकैः । शय्यापक्षे—सुखं यः प्रबोधः स्वापादुत्थानम् । सुवर्णघटना हेमयोजना । प्रतिपादकैः खट्वाया उन्नामकैः । तदा पादानां प्रतिच्छन्दाः प्रतिपादकाः पुरुषयत्नोत्थापिताः पादमुद्रास्तैः । अत्र च शोभनो वर्णोऽलक्तादिकृतः ॥ २० ॥

इदानीं यमुद्दिश्येयमाख्यायिका क्रियते तस्य 'तथापि नृपतेर्भक्त्या' इत्यनेन नृपतिशब्देन सामान्येन निर्देशं कृत्वा विशेषेणाह—जयतीत्यादि । ज्वलन्दीप्ततया प्रसरन्, प्रताप एव ज्वलनस्तं प्राति पूरयति य आकारस्तेन कृता जगति रक्षा येन सः । सकलानां प्रणयिनां ये मनोरथास्तत्सिद्धौ श्रियां पर्वतो गिरिः । श्रियस्तत्र कटीभूता इव स्थिता इति यावत् । यद्वा—यथा पर्वतस्थः कश्चिद्दुरभिभवः, तद्वद्धर्षस्था श्रीरिति । अथ च श्रीपर्वताख्यो गिरिरोहगेव । तथा च ज्वलत्प्रकृष्टतापो यो ज्वलनो जठराग्निः स एव निषेधकत्वात्प्राकारः सालस्तेन कृता मुक्तेर्विघ्नहेतुतया जगतो भूलोकस्य रक्षा येन सः । अन्यत्रोत्पादनं तद्यावत् । अन्ये तु—त्रिपुरदाहे यो विघ्नमकरोद्गणेशस्तदा हरेण ज्वलत्प्रकृष्टतापो ज्वलनप्रकारो निर्मितः । तेन तत्र रक्षा विधीयत इत्याहुः । ज्वलनप्राकारश्च द्वौ मुद्रारूपौ मन्त्रविशेषौ स्तः, ताभ्यां कृतजगद्रक्ष इति केचित् । प्रणयिनः सिद्धिकामाः । हर्षः कथानायकः । इतरत्र—हर्षकारितया हर्षः । सर्वत्र च परमार्थतो हर्ष एव जयति । तस्यैवाभिलषणीयत्वात्स एव काव्येन क्रियत इति ध्वनयति ॥ २१ ॥

सम्राट् हर्ष की विजय हो, जो चारों ओर प्रज्वलित प्रतापाग्नि की दीवार बनाकर सारे जगत् की रक्षा करते हैं और जो समस्त प्रियजनों के मनोरथ सिद्ध करने में †श्रीपर्वत के सदृश हैं ॥ २१ ॥

† श्रीपर्वत—यह आन्ध्र के गुण्टूर जिले का एक पर्वत है जो छठी-सातवीं शताब्दियों में मन्त्र-तन्त्र के लिए प्रसिद्ध था। मन्त्रयान का जन्मस्थान यहीं था। मालतीमाधव और कादम्बरी में भी इसका उल्लेख है। इसके सम्बन्ध में तत्कालीन समाज में यह प्रसिद्धि थी कि यहां हर प्रकार के मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं। मालतीमाधव की एक भिक्षुणी सौदामिनी मन्त्र-तन्त्र सीखने श्रीपर्वत पर गई थी और कादम्बरी के जरद्द्रविड धार्मिक को भी श्रीपर्वत से सम्बन्धित अचम्भों की बहुत बातें याद थीं।

१. जयुत्युज्ज्वलत्प्र, जयज्ज्वलत्प्र, । २. प्रकार ।

एवमनुश्रूयते—पुरा किल भगवान्स्वलोकमधितिष्ठन्परमेष्ठी विकासिनि पद्मविष्टरे समुपविष्टः [1]सुनासीरप्रमुखैर्गीर्वाणैः[2] परिवृतो [3]ब्रह्मोद्याः कथाः कुर्वन्नन्याश्च निरवद्या विद्यागोष्ठीर्भावयन्कदाचिदासाञ्चक्रे। तथासीनं च तं त्रिभुवनप्रतीक्ष्यं मनुदक्षचाक्षुषप्रभृतयः प्रजापतयः सर्वे च सप्तर्षिपुरःसरा [4]महर्षयः सिषेविरे। केचिदृचः स्तुतिचतुराः समुदचारयन्। [5]केचिदपचितिभाञ्जि यजूंष्यपठन्। केचित्प्रशंसासामानि[6] सामानि जगुः। अपरे [7]विवृतक्रतुक्रियातन्त्रा-

एवमिति। अनुश्रूयते पारम्पर्येणाकर्ण्यते। किलेत्यत एवागमसूचनाय। भगवानिति केवलनिर्देश उल्लुण्ठनपरिहारार्थम्। ब्रह्मलोकमित्युक्ते सत्युत्कर्षदायिन्यात्मीयताप्रतिपत्तिर्न स्यादिति स्वग्रहणं साभिप्रायम्। अधितिष्ठन्बहुमानेन तद्योगक्षेमादिकमुद्वहन्। परमे पदे तिष्ठतीति परमेष्ठी। विकासिनीति नित्ययोग इनिः। विष्टरमासनम्। सुनासीरः इन्द्रः। गिरः स्तुतिरूपा वर्णयन्ति भजन्तीति गीर्वाणा देवाः। गीरेव बाणः शरो येषामिति वा, परिवृतश्चतुर्दिक्कं वृतः परिवलितः। तस्य चतुर्मुखत्वात्। ब्रह्म वदन्तीति ब्रह्मोद्याः। 'वदः सुपि क्यप्च'। ब्राह्मणा वेदेन, ब्रह्मणि परमात्मनि वा वेदितव्या ब्रह्मोद्याः। उक्तं च—'ब्रह्मोद्या सा कथा यस्यामुच्यते ब्रह्म शाश्वतम्' इति। सामान्यविशेषभावेन 'उष्ट्रासिकामासते' इतिवत्। ब्रह्मवदनरूपा वा कथास्तासां वक्ष्यमाणगोष्ठ्यभिप्रायेण प्राधान्यात्स्वयं करणम्। निरवद्या दोषरहिताः। तथा च वात्स्यायनः—'या गोष्ठी लोकविद्विष्टा या च स्वैरविसर्पिणी। परहिंसात्मिका या च न तामवतरेद्बुधः॥ लोकचित्तानुवर्तिन्या क्रीडामात्रैककार्यया। गोष्ठ्या सह चरन्विद्वाँल्लोकसिद्धिं नियच्छति॥' समानविद्या-

ऐसा सुना जाता है—बहुत पहले की बात है, भगवान् ब्रह्मा अपने ब्रह्मलोक में शासन कर रहे थे। किसी विकसित कमल के आसन पर विराजमान हो इन्द्रप्रमुख देवताओं के बीच घिरे हुए शाश्वत ब्रह्म के विषय में चर्चा कर रहे थे और अन्य दोषरहित विद्यागोष्ठियों में भाग ले रहे थे। उस प्रकार बैठे हुए तीनों लोकों के पूजनीय भगवान् ब्रह्मा की सेवा में मनु, दक्ष, चाक्षुष आदि प्रजापति और सप्तर्षि आदि सब महर्षि संलग्न थे। स्तुति में चतुर उनमें कुछ ने ऋचाओं का पाठ किया। कुछ ने पूजन के यजुर्वेदीय मन्त्र पढ़े। कुछ ने प्रशंसामूलक सामों का

१. शुनासीर। २. गीर्वाणगणैः। ३. ब्रह्मोदिताः। ४. महामुनयः। ५. अपि विभाञ्जि। ६. सामानि। ७. विततक्रतु०।

न्मन्त्रान्व्याचचक्षिरे। विद्याविसंवादकृताश्च तत्र तेषामन्योन्यस्य [1]विवादाः प्रादुरभवन्।

अथातिरोषणः प्रकृत्या महातपा मुनिरत्रेस्तनयस्तारापतेर्भ्राता नाम्ना दुर्वासा द्वितीयेन मन्दपालनाम्ना मुनिना सह कलहायमानः [2]सामगायन्क्रोधान्धो विस्वरमकरोत्। सर्वेषु च तेषु [3]शापभयप्रतिपन्नमौनेषु मुनिष्वन्यालापलीलया चावधीरयति[4] कमलसम्भवे, भगवती कुमारी किञ्चिदुन्मुक्तबालभावे भूषितनवयौवने वयसि[5]

वित्तशीलवुद्धिवयसामनुरूपैरालापैरेकत्रासनबन्धो गोष्ठी। प्रतीक्ष्यः पूज्यः सम्यगुदात्तादित्रैश्वर्यादिप्राधान्यादुदचारयञ्जगुः। अपचितिः पूजा। सामानि जगुरिति साम्नां गानमेवोचितम्। विद्याविसंवादकृता इति, न तु मात्सर्यादिना। प्रादुरभवन्नित्यनौचित्यशङ्कया तत्कर्तृत्वपरिहारः।

प्रकृत्येति। अन्यथा ब्रह्मसन्निधानेन कथमीदृगाक्षेपः। कथमीदृशोऽवकाश इत्याह—महातपा इति। मुनिरित्यनेनास्य ज्ञानप्राधान्यात्तुल्यतोद्भासनमतीवोपकारः। अत्रेस्तनय इति न केवलं महातपस्त्वेन यावदत्रितनयत्वेन ब्रह्मलोकप्राप्तिरस्य। ततस्तारापतेरित्यादिना तथाभूतपरमप्रजापतिसम्बन्धयोग्यत्वमस्याख्यायते। द्वितीयेनेति तत्समत्वमुच्यते। कथं सामगानेऽप्यनवहित इत्याह—क्रोधान्ध इति। सर्वेष्वित्यादौ देवी सरस्वती श्रुत्वा जहासेति क्रियाप्रतिपत्तिरस्य मा भूदित्युत्तमप्रकृतित्वादन्येत्याद्युक्तम्। अन्येन सहालापलीलाकथाक्रीडया। कुमारीति। कुमारीत्वेनास्या

गान किया। अन्य लोगों ने यज्ञक्रियाओं के उपयोग में आनेवाले मन्त्रों की व्याख्या की। वहाँ उन लोगों के बीच मत-मतान्तर को लेकर परस्पर विद्याविषयक विवाद उठ खड़े हुए।

तब स्वभाव से अत्यन्त क्रोधी, महातपस्वी, अत्रि का पुत्र, तारापति (चन्द्र) का भ्राता दुर्वासा का मुनि मन्दपाल नाम के दूसरे मुनि के साथ झगड़ा कर बैठा और सामगान करते हुए क्रोध से अन्धा होकर स्वर-भङ्ग कर दिया। शाप न दे दे, इस डर से सबके सब मुनि चुप हो गए और दूसरों के साथ बात करने के बहाने ब्रह्माजी ने भी (उस विस्वर सामगान की) उपेक्षा की। पर कुमारी सरस्वती (वहीं उपस्थित थी)। वह कुछ-कुछ बालभाव छोड़ नये यौवन को सुशोभित करने वाली उम्र में आ पहुँची थी।

---

१. विद्याविवादाः। २. सामगायः। ३. शापभयात्प्र। ४. अवधीरयति। ५. नवे वयसि।

वर्तमाना, गृहीतचामरप्रचलद्भुजलता पितामहमुपवीजयन्ती, निर्भर्त्सनताडनजातरागाभ्यामिव [१]स्वभावारुणाभ्यां पादपल्लवाभ्यां समुद्भासमाना, शिष्यद्वयेनेव पदक्रममुखरेण नूपुरयुगलेन वाचालितचरणयुगला, धर्मनगरतोरणस्तम्भविभ्रमं बिभ्राणा जङ्घाद्वितयम्[२], सलीलमुत्कलहंस[३]कुलकलालापप्रलापिनि मेखलादाम्नि[४] विन्यस्तवामहस्तकिसलया, विद्वन्मानसनिवासलग्नेन गुणकलापेनेवांसाव[५]लम्बिना [६]ब्रह्मसूत्रेण पवित्रीकृतकाया, भास्वन्मध्यनायकमनेकमुक्तानुयातमपवर्गमार्गमिव [७]हारमुद्वहन्ती, वदनप्रविष्टसर्वविद्यालक्तक-

---

हास्यादिकं नानुचितमिति दर्शयति। भूषितेत्यनेन दर्शनीयत्वमाह– पितामहमिति। सर्वप्राधान्यमनेनोक्तम्। निर्भर्त्सनं ताडनं तेन तदर्थं वा यत्ताडनं रोषाद्भूमिहननं तद्वशाच्च जातरागाभ्यामिव पादपल्लवाभ्यामित्यनेनारुणत्वं सौकुमार्यं चाह। अत एव गाढताडनेन रक्तत्वमुत्प्रेक्षितम्। ताडितो वायं ताडितस्तत्तुल्यो रागो जातो ययोरिति व्याख्येयम्। पदक्रमं पादन्यासपरिपाटी। अन्यत्र च—पदानि च क्रमश्च तत्पदक्रमम्, चरणौ पादौ चरणाश्च विशिष्टशाखापाठकता वाचालिताः शोभिता ययेति। उत्का उत्सुकाः। मेखलादाम्नि रशनागुणे। मानसं चित्तं, सरोविशेषश्च।

चँवर पकड़ कर भुजलता को हिलाते हुए पितामह (ब्रह्माजी) पर झल रही थी। दुर्वासा के प्रति झुंझलाहट के कारण भूमि पर पटकने से मानो लाल हुए स्वाभाविक लाल अपने पादपल्लवों से शोभित हो रही थी। पदन्यास से मुखरित होने वाले नूपुरों से उसके दोनों चरण वाचाल हो रहे थे, मानो पदपाठ और क्रमपाठ के अभ्यास में मुखर दो शिष्य अपने चरण अर्थात् शाखा का स्वाध्याय कर रहे हों। उसकी दोनों जाँघें धर्मनगर के तोरणस्तम्भ का अनुकरण कर रही थीं। उत्सुक कलहंस की भाँति अव्यक्त शब्द करती हुई करधनी (मेखलादाम) पर वह लीला के साथ बायें हस्त-किसलय को रखे हुए खड़ी थी। विद्वानों के मानस (चित्त या मानस सरोवर) में हमेशा निवास करने से संक्रान्त हुए गुणों (श्लेष से तन्तुओं) के रूप में कंधे पर लटकते हुए ब्रह्मसूत्र से उसका शरीर पवित्र हो रहा था। वह चमकते हुए मध्यमणि युक्त और अनेक मोतियों से गुम्फित हार को पहने थी, जो सूर्य के मध्य से ले जाने वाले और अनेक मोक्षगामी जीवों द्वारा अनुसृत मोक्षमार्ग की तरह था। मुख में प्रविष्ट समस्त विद्याओं के चरण

---

१. स्वभावारुणपाद। २. द्वितीयम्। ३. कुलकल, कुलाकलालापप्र। ४. धाम्नि। ५. नेवांशाव। ६. सहजब्रह्म। ७. हारमुरसासमु।

रसेनेव पाटलेन[1] स्फुरता दशनच्छदेन विराजमाना, संक्रान्तकमलासनकृष्णाजिनप्रतिमां [2]मधुरगीताकर्णनावतीर्णशशिहरिणामिव कपोलस्थलीं दधाना, तिर्यक्[3]सावज्ञनुन्नमितैकभ्रूलता, श्रोत्रमेकं विस्वरश्रवणकलुषितं प्रक्षालयन्तीवा[4]पाङ्गनिर्गतेन लोचनाश्रुजलप्रवाहेणेतरश्रवणेन च विकसितसितसिन्धु[5]वारमञ्जरीजुषा हसतेव प्रकटितविद्यामदा, श्रुतिप्रणयिभिः प्रणवैरिव कर्णावतंस[6]कुसुममधुकरकुलैरुपास्यमाना, सूक्ष्मविमलेन प्रज्ञाप्रतानेनेवांशुकेनाच्छादितशरीरा,[7] वाङ्मयमिव

गुण अपि भास्वान्दोप्रो मध्यनायकः पदकं यत्र तत्। अथ च भास्वतो मध्यं तेन नयनि सः। यदुक्तम्—'परिव्राड्योगयुक्तश्च शूरश्चाभिमुखे हतः। द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमण्डलभेदिनौ॥' इति। मुक्ता मौक्तिकानि, मोक्षगामिनश्च। हारं मुक्ताकलापं च, अपवर्गमपि। हारं हरसम्बन्धिनं तत्प्रसादप्राप्यत्वात्। 'अलक्तकरसेनेव पाटलेन' इति वा पाठः। स्फुरतेति रोषात्। भगवतीकपोले शशिहरिणस्यैवावतारः सम्भाव्यत इति शशिपदम्। अत्र हि कपोले ब्रह्मकृष्णाजिनसंक्रान्तिः, तत्र कामसम्भावना सामान्यहरिणस्यावतरणे। कलुषितं प्रक्षालयन्तीवेति। सलिलस्य क्षालनमेव युक्तमिति समुचितेयमुक्तिः। श्रुतिप्रणयिभिरिति। श्रूयते इति श्रुतिर्ध्वनिस्तया प्रणवः प्रशंसातिशयो येषां तैः यद्वा=श्रुती श्रोत्रे तत्कर्तृकः प्रणयः प्रार्थना मधुरः ध्वनित्वाद्येषां तैः। कर्णसम्बन्धैरिति व्याख्याने तु कर्णावतंसेत्यादिना पौनरुक्त्यमपरिहार्यम्। श्रुतिर्वेदोऽपि। सूक्ष्मार्थदर्शित्वात्सूक्ष्मस्तीक्ष्णः विमलस्तत्त्वग्राही। अन्यत्र—सूक्ष्मं तनु, विमल शुक्लम्। प्रतानः प्रसारः।

के आलते मे मानों पाटल हुए (क्रोध से) फड़कते ओठ उसे सुशोभित कर रहे थे। उसके कपोलों पर ब्रह्माजी के काले मृगचर्म की छाया पड़ रही थी; मानो उसके मीठे गीतों को सुनने के लिए चन्द्रमा का मृग ही वहाँ उतर कर आ गया हो। उसकी एक भौंह कुछ तिरस्कार का भाव लिये हुए टेढ़ी और ऊपर की ओर उठी हुई थी। आँख के कोने से निकलते हुए आँसू की धारा से मानो वह भ्रष्ट पाठ के श्रवण करने से कलुषित अपने एक कान को धो रही थी और उसके दूसरे कान पर खिले हुए श्वेत सिन्धुवार की मञ्जरी हँस रही थी जिसमें उसका विद्यामद प्रकट हो रहा था। उसके कान पर लगे कनफूल पर भौंरे छाये हुए थे, मानों वह श्रुति (वेद) से प्रेम करने वाले अनेक प्रणवों ('ओं' अक्षरों) से उपासित हो रही थी। प्रज्ञा के प्रतान की तरह बहुत बारीक तन्तुओं से बना और उज्ज्वल

१. पाटलेनेव च। २. साममधुर; समम; प्रतिबिम्बां मधुर। ३. सावर्णमु। ४. तीवाङ्गविनि। ५. सिन्दु। ६. संसक्तमधु; वतंसमधु। ७. तनुलता।

निर्मलं दिक्षु दशनज्योत्स्नालोकं विकिरन्ती[1] देवी सरस्वती श्रुत्वा जहास ।

दृष्ट्वा च तां तथा हसन्तीं स मुनिः 'आः पापकारिणि, दुर्गृहीतविद्यालवावलेपदुर्विदग्धे, मामुपहससि' इत्युक्त्वा शिरःकम्पशीर्यमाणबन्धविशरारोरुन्मिषत्पिङ्गलिम्नो जटाकलापस्य[2] रोचिषा[3] सिञ्चन्निव रोषदहनद्रवेण दश दिशः, कृतकालसन्निधानामिवान्धकारित[4]ललाटपट्टाष्टापदामन्तकान्तःपुरमण्डनपत्रभङ्गमकरिकां भ्रुकुटिमावध्नन्, अतिलोहितेन चक्षुषाऽमर्षदेवतायै स्वरुधिरोपहारमिव प्रयच्छन्,

दृष्ट्वेत्यादौ । स मुनिस्तां तथा हसन्तीं दृष्ट्वा शापजलं जग्राहेति सम्बन्धः । तथेति पादताडनभ्रूक्षेपादिपूर्वम् । स मुनिरिति प्राग्वर्णितस्वरूपः । आ इत्यक्षमायाम् । मामिति योऽहं त्रैलोक्यप्रख्यातरोषणस्तमेवेति । समीप एव विशीर्यते तच्छीलो विशरारुरितश्चामुतश्च । अत एवोन्मिषत्पिङ्गलिमा । रोचिषा दीप्त्या । रोषदहनो द्रवो रस इव, द्रवत्वं च यद्यपि विशिष्टस्यैव तेजसः सुवर्णादि सम्भवति, तथाप्यत्रोपचारात्साहश्यम् । कालः कृष्णो गुणो यमश्च । अन्धकारितं संकुचितत्वाददर्शनीयमेव चकितं ललाटपट्टमेवाष्टापदम् । यथा प्रतिपङ्क्ति अष्टौ पदान्यस्येत्यष्टापदं चतुरङ्गफलकम् । अत एवानेन भ्रूसमुन्नमनमव्यक्तीकृतरेखवत्तया विस्पष्टव्यलीकमेतत् । 'ललाटमुपगीयते । भ्रूवोर्मूलसमुत्क्षेपाद्भ्रुकुटिं परिचक्षते' । सुशब्दः सुतरां

अंशुक उसका शरीर ढँक रहा था । वह वाङ्मय के समान निर्मल अपने दाँतों से चाँदनी का आलोक दिशाओं में छिटका रही थी । (दुर्वासा के स्वरहीन पाठ को) सुन कर वह हँस पड़ी ।

दुर्वासा ने सरस्वती को उस प्रकार हँसते देखकर 'ओ पाप करने वाली, निम्न रूप से प्राप्त विद्या के लेश पर अभिमान से भरी ओ दुर्विदग्धे ! तू मेरा उपहास कर रही है ?' यह कह कर बार-बार शिरःकम्प के कारण बंधन के शिथिल हो जाने पर इधर उधर खुले हुए पीताभवर्ण की चमक से युक्त, जटा-समूह के तेज से मानो क्रोधाग्नि के द्रव से समस्त दिशाओं को सींचने लगे । भौंहें चढ़ने लगीं, यमराज का सन्निधान प्राप्त कर चुकी थीं, उनके ललाटरूपी शतरंज खेल के पट्टे को मानो अपनी कालिमा से मलिन

१. किरन्ती । २. जटासञ्चयस्य । ३. शोचिषा । ४. ललाटाष्टापदां, ५. अन्तिकमण्डन ।

निर्दयदष्टदशनच्छदभयपलायमानामिव वाचं रुन्धन्दन्तांशुच्छलेन, [१]अंसावस्रंसिनः शापशासनपट्टस्येव ग्रथ्नन्ग्रन्थिमन्यथा कृष्णाजिनस्य, [२]स्वेदकणप्रतिबिम्बितैः [३]शापशङ्काशरणागतैरिव सुरासुरमुनिभिः प्रतिपन्नसर्वावयवः, कोपकम्पतरलिताङ्गुलिना करेण [४]प्रसादनलग्नामक्षरमालामिवाक्षमालामाक्षिप्य कामण्डलवेन वारिणा [५]समुपस्पृश्य शापजलं जग्राह ।

अत्रान्तरे स्वयम्भुवोऽभ्याशे[६] समुपविष्टा देवी मूर्तिमती पीयूषफेन-

नैरपेक्ष्यसूचनाय वा चोभयसम्बन्धः । अंसावस्रंसिन इति । संरम्भाच्छासनपट्टः शुक्लत्वाल्लिपिकाष्ण्यर्चिच सितासितवर्णसंवलितमध्यः पर्यन्तशुक्लश्च भवति । अत एव ते बिन्दुचित्रत्वादुपान्तशुक्लत्वाच्च कृष्णाजिनमुत्प्रेक्षते । यथा शासनपट्टे सति क्वचित्प्रामादावधिकारो भवति, तद्वच्च जनसमूहः प्रार्थनां करोति । स हस्तपादादिके सर्वस्मिन्नङ्गे गलति । कोपेत्यादौ कम्पग्रहणम् । रोषः शरीरं बाधत इति यावत् । सन्निवेशसाधर्म्यादुक्तम्—अक्षरमालामिवेति । सरस्वतीसम्बन्धितया चोक्तम्—प्रसादनलग्नामिति । विक्षिप्यन्ते । यश्च विरुद्धपक्षः प्रसादयति स विक्षिप्यते तिरस्क्रियते । कामण्डलवेन मुनिकरकभवेन । समुपस्पृश्याचम्य ।

अत्रान्तर इत्यादौ मूर्तैश्चतुर्भिर्वेदैः सह सावित्री समुत्तस्थाविति सम्बन्धः ।

कर रही हो और जैसे वे यमराज के अन्तःपुर की पत्रभङ्गमकरिकाएँ हों। आँखें अत्यन्त लाल हो गईं, मानो वे अमर्ष देवता के लिए अपने ही रुधिर का उपहार भेंट कर रहे थे। बड़ी बेदर्दी से ओठ कट जाने के भय से मानों भागती हुई वाणी को वे अपने दाँतों की प्रभा के बहाने मानों रोक रहे थे। शाप के शासनपट्ट की भाँति कंधे गिरते हुए कृष्ण मृगचर्म की गांठ दूसरे प्रकार से बाँधने लगे। शाप के भय से शरण में आये हुए की तरह सुर, असुर और मुनि उनके स्वेदकणों से भरे समस्त अङ्गों में प्रतिबिम्बित हो रहे थे। क्रोध से उत्पन्न कँप-कँपी के कारण चंचल अंगुलियों वाले हाथ से उन्होंने मानो प्रसन्न करने के लिए लगी हुई अक्षरमाला की भाँति अपनी अक्षमाला को फेंक दिया और कमण्डलु के जल से आचमन करके शाप देने के लिए जल उठाया।

इस अवसर पर देवी सावित्री ब्रह्माजी के समीप सदेह बैठी थीं। वह अमृत के फेन

१. अंसस्रंसिनः। २. स्वेदंप्रति। ३. शापभयाच्छरण। ४. प्रसादलग्नामक्षमालां विक्षिप्य; अक्षरावलिकामिवाक्षरमाला। ५. स समुप। ६. अभ्यासे।

पटलपाण्डुरं कल्पद्रुमदुकूलवल्कलं[1] वसाना, [2]बिसतन्तुमयेनांशुकेनोन्नतस्तनमध्यबद्धगात्रिकाग्रन्थिः, [3]तपोबलनिर्जितत्रिभुवनजयपताकाभिरिव तिसृभिर्भस्मपुण्ड्रकराजिभिर्विराजितललाटाजिरा, स्कन्धावलम्बिना [4]सुधाफेनधवलेन तपःप्रभावकुण्डलीकृतेन गङ्गास्रोतसेव[5] योगपट्टकेन विरचितवैकक्ष्यका,[6] सव्येन ब्रह्मोत्पत्तिपुण्डरीकमुकुलमिव [7]स्फटिककमण्डलुं करेण कलयन्ती, दक्षिणमक्षमालाकृतपरिक्षेपं कम्बुनिर्मितोर्मिकादन्तुरितं[8] तर्जनतरङ्गिततर्जनीकमुत्क्षिपन्ती करम्, 'आः पाप, क्रोधोपहत, दुरात्मन्, अज्ञ, अनात्मज्ञ, ब्रह्मबन्धो, मुनिखेट[9], अपसद, [10]निराकृत, कथमात्मस्खलितविलक्षः सुरासुरमुनि-

---

अभ्याशे समीपे। गात्रिकाग्रन्थिर्ग्रन्थिविशेषः स्वस्तिकाकारः स्त्रीणामुत्तरीयस्य स्तनोद्देशे भवति। तिलकं पुण्ड्रकं स्कन्धावंसौ वायुस्थानानि च स्कन्धाः। फेनैस्तद्धवलेन। 'तिर्यग्वक्षसि विक्षिप्तं वैकक्ष्यकमुदाहृतम्'। सव्येन वामेन। पुंडरीकमुकुलं मुकुलितं पद्मम्। कलयन्ती क्षिपन्ती, धारयन्ती वा। परिक्षेपः परिवलनम्। कम्बुः शङ्खः। ऊर्मिका बालिका। दन्तुर इव दन्तुरो व्याप्तस्तम्। तर्जनं निर्भर्त्सनम्। तरङ्गिता तर्जिता चलिता। तर्जनी प्रदेशिन्यङ्गुष्ठनिकटाङ्गुलिः क्रोधोपहतेत्यात्मविनाशायैव ते क्रोध इत्युक्तं, भवति। ब्रह्मबन्धो निकृष्टब्राह्मण। अपसदो नीचः।

पटल के सदृप उज्ज्वल कल्पद्रुम से प्राप्त दुकूलाकृति छाल को पहने थी। उसने अपने उन्नत स्तनों के मध्य को बिसतन्तु के बने हुए अंशुक को स्वस्तिकाकार गाँठी से बाँध रखा था। भस्म की तीन रेखायें उसके ललाट के प्रांगण में शोभायमान थीं मानो उसने अपने तपोबल से जीते हुए तीनों भुवन की जयपताका हो। कंधे पर अवलम्बित, अमृत फेन से समान धवल और मानों तपस्या के प्रभाव से टेढ़े किये हुए गङ्गा के सोते के समान उसने अपने योगपट्ट को वक्ष पर टेढ़ा लटका कर वैकक्ष्यक बना लिया था। उसके बाँयें हाथ में ब्रह्माजी की उत्पत्ति वाले पुण्डरीक के मुकुल के सदृश स्फटिक मणि का कमण्डलु डोल रहा था। यह अपनी दाहिनी भुजा को ऊपर की ओर फेंक रही थीं जो अक्षमाला से परिवेष्टित, शंख की बनी अंगूठी से व्याप्त थी और जिसकी तर्जनी चञ्चल हो रही थी (वह बोल उठी—) 'अरे पापी, क्रोध का मारा, दुरात्मा, मूर्ख, अपने आप को न पहचानने वाला, पतित ब्राह्मण, पाखण्डी साधु, नीच, स्वाध्यायशून्य, अपनी गलती से लज्जित,

---

१. दुकूल। २. बिश। ३. तपोनिर्जित। ४. फेनध। ५. गङ्गाप्र। ६. वैकक्षा। ७. स्फुरि। ८. दन्तुरं। ९. खेटापसदनिराकृत। १०. निराकृते

[1]'मनुजवृन्दवन्दनीयां त्रिभुवनमातरं भगवतीं सरस्वतीं शप्तुमभिलषसि' इत्यभिदधाना, रोषविमुक्तवेत्रासनैरोङ्कारमुखरित[2]मुखैरुत्क्षेप[3]दोलायमान-जटाभारभरितदिग्भिः[4] परिकरबन्धभ्रमित[5]कृष्णाजिनाटोपच्छायाश्यामाय-मानदिवसैरमर्षनिःश्वासदोलाप्रेङ्खोलितब्रह्मलोकैः सोमरसमिव स्वेदविसर-व्याजेन स्रवद्भिरग्निहोत्रपवित्रभस्मस्मेरललाटैः [6]कुशतन्तुचामरचीरचीव-रिभिराषाढिभिः प्रहरणीकृतकमण्डलुमण्डलैर्मूर्तैश्चतुर्भिर्वेदैः सह बृसीमपहाय सावित्री समुत्तस्थौ ।

ततो 'मर्षय भगवन्, अभूमिरेषा शापस्य' इत्यनुनाथ्यमानोऽपि

निराकृतोऽस्वाध्यायः विलक्षो लज्जितः । सुरासुरमनुजाश्च परस्परविरुद्धानुष्ठानाः । अत्र पुनरीदृशामपि न विप्रतिपत्तिरिति भावः । अभिलषसीति । इच्छामात्रकमपीदं महत्साहसमित्यर्थः । ओंकार एव मुखरितं मुखं येषां तैः । परिकरबन्धः पर्यङ्क-बन्धः । स चोत्थितस्यापि संरम्भभाजो भवति । आटोपो वक्षःप्रदेशे श्यामायमानो रात्रिरिवाचरद्दिवसा यैर्हेतुभिरित्यर्थः । अमर्षनिःश्वासैर्दोलावत्प्रेङ्खोलितश्चलितो ब्रह्मलोको यः । कुशतन्तूनां चामरमिव चामरं गुच्छः । कुशतन्तुनचामरं दर्भपिञ्जू-लम्, चीरचीवरं वृक्षत्वग्वस्त्रं ते विद्येते येषां तैः । 'आषाढसंज्ञो दण्डस्तु पालाशो व्रतचारिणाम्' ।

तत इत्यादौ शापोदकं जग्राहेति विससर्जेति सम्बन्धः । मर्षय क्षमस्व । अनु-

---

देवता, असुर, मुनि मनुष्यसमूह द्वारा वन्दनीय त्रिभुवन की माता देवी सरस्वती को शाप देना चाहता है ?' यह कहती हुई सावित्री मूर्तिमान चारों वेदों के साथ कुशासन छोड़ उठ खड़ी हुई । क्रोध से उन मूर्तिमान् वेदों ने भी अपने-अपने वेत्रासन छोड़ दिए, उनके मुख ओंकार की ध्वनि से भर रहे थे, वेग से ऊपर को ओर फेंकने से उनका चञ्चल जटाभार मानों दिशाओं में फैलने लगा । उनकी कमर में लपेट कर बाँधे हुए काले मृगचर्म की बनी छाया से दिन में अंधेरा छाने लगा, वे अपने अमर्षजन्य निःश्वासों से सारे ब्रह्मलोक को दोलायमान करने लगे । उनके शरीर से सोमरस के समान स्वेदजल निकल रहे थे । अग्नि-होत्र के पवित्र भस्म से उनके ललाट चमक रहे थे । वे कुश के तन्तुओं से बने चामर एवं वल्कल और आषाढसंज्ञक पलाश का दण्ड धारण किये हुए थे । वे अपने कमण्डलु से मारने के लिए तत्पर हो उठे ।

तब 'हे भगवन्, क्षमा करो, यह शाप देने योग्य नहीं' इस प्रकार देवताओं के प्रार्थना

---

१. मनुजमाननीयां । २. मुखर । ३. आक्षेप । ४. भरितशिरोभिः । ५. कृष्णाजिनपटच्छा । ६. कुशतन्तुचारुचामर ।

विबुधैः, 'उपाध्याय । स्खलितमेकं क्षमस्व' इति बद्धाञ्जलिपुटैः प्रसाद्यमानोऽपि स्वशिष्यैः, 'पुत्र, मा कृथास्तपसः प्रत्यूहम्' इति निवार्यमाणोऽप्यत्रिणा, रोषावेशविवशो दुर्वासाः 'दुर्विनीते ! व्यपनयामि ते विद्याजनितामुन्नतिमिमाम्, अधस्ताद्गच्छ मर्त्यलोकम्' इत्युक्त्वा तच्छापोदकं विससर्ज ।[1] प्रतिशापदानोद्यतां सावित्रीम् 'सखि, संहर रोषम्', असंस्कृतमतयोऽपि जात्यैव द्विजन्मानो माननीयाः' इत्यभिदधाना[3] सरस्वत्येव न्यवारयत् ।

अथ तां तथा शप्तां सरस्वतीं दृष्ट्वा पितामहो भगवान्कमलोत्पत्तिलग्नमृणालसूत्रामिव धवलयज्ञोपवीतिनीं तनुमुद्वहन्, उद्गच्छदच्छाङ्गुलीयमरकतमयूखलताकलापेन त्रिभुवनोपप्लवप्रशमकुशापीडधारि-

---

नाध्यमानः प्रार्थ्यमानः । प्रत्यूहं विघ्नम् । उन्नतिमिति । उच्चदेशस्थश्चाधस्तान्नीयत इति समुचितेयमुक्तिः । असंस्कृतमतयः संस्काररहिताः ।

अथेत्यादौ भगवान्पितामहः सुधीरमुवाचेति सम्बन्धः । तथेति । तेन प्रकारेण निरपराधां सरस्वतीमित्यर्थः । धवलयज्ञोपवीतिनीमिति । प्रशंसायां नित्ययोगे वा मत्वर्थीयः । 'विसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः' इतिवत् । अन्यथा कर्मधारये कृते मत्वर्थीय एकवुद्ध्यनुमितौ बहुव्रीहौ प्रतिपत्तिर्भवतीति । इतरत्र तु बुद्धिद्वयमिति लघुत्वात्प्रक्रमस्तेत्युक्तम्। उद्गच्छन्नच्छाङ्गुलीयमरकतस्य मयूखलताकलापो यस्य तेन करेण आपीडः समूहः । पातं विन्यासम् । पातयन्कुर्वन् । अत्र हि धात्वर्थंगनानुष्ठानमात्र

करने पर भी, 'आचार्य एक अपराध क्षमा करें' इस प्रकार अपने शिष्यों से प्रसन्न किये जाने पर भी 'पुत्र, तपस्या में विघ्न न करो', इस प्रकार अत्रि द्वारा रोके जाने पर भी क्रोध के वशीभूत दुर्वासा ने कहा—'दुर्विनीते, मैं तेरे इस विद्याजनित गर्व को दूर करता हूँ, तू नीचे मर्त्यलोक में जा और शाप के जल को छिड़क ।' प्रतिशाप देने के लिए सावित्री तैयार हो गई तो सरस्वती ने 'सखी, तू अपने क्रोध को समेट ले, संस्कारशून्य बुद्धि होने पर भी जाति के कारण ही ब्राह्मण हमारे मान्य हैं' यह कहते हुए रोक दिया ।

तब पितामह भगवान् ब्रह्मा ने दुर्वासा के शाप से ग्रस्त सरस्वती को देखा । उनके शरीर पर सफेद जनेऊ ऐसा लगता था मानों कमल में उत्पत्ति के होने से उसके मृणा

---

१. प्रतिशापोद्यतां सावित्री० । २. रुपाम् । ३. इत्यभिदधती ।

णेव दक्षिणेन करेण निवार्य शापकलकलम्, अतिविमलदीर्घैर्भाविकृत-युगारम्भसूत्रपातमिव दिक्षु पातयन् दशनकिरणैः सरस्वतीप्रस्थानमङ्गल-पटहेनेव पूरयन्नाशाः, स्वरेण सुधीरमुवाच—'ब्रह्मन्, न खलु साधु-सेवितोऽयं पन्थाः येनासि प्रवृत्तः। निहन्त्येष परस्तात्। उद्दाम-प्रसृतेन्द्रियाश्वसमुत्थापितं हि रजः कलुषयति दृष्टिमनक्षजिताम्। कियद्दूरं वा चक्षुरीक्षते। विशुद्धया हि धिया पश्यन्ति कृतबुद्धयः सर्वानर्थानसतः सतो वा। निसर्गविरोधिनी चेयं पयःपावकयोरिव धर्मक्रोधयोरेकत्र वृत्तिः। आलोकमपहाय कथं तमसि निमज्जसि क्षमा हि मूलं सर्वतपसाम्। परदोषदर्शनदक्षा दृष्टिरिव कुपिता बुद्धिर्न ते आत्मरागदोषं पश्यति। क्व महातपोभारवैवधिकता, क्व पुरो-

---

वृत्तिः क्रिया। यथा—'संवस्ते क्षालिते वस्त्रे' इति। पन्था व्यवहारः, मार्गश्च। निहन्ति पातयति। प्रसृतानि गन्तुं प्रवृत्तानि, प्रसृता च जङ्घा। रजोरागः, धूलिश्च। कलुषयति कार्याकार्यदर्शनासमर्थां करोति। दृष्टि बुद्धिम्, नेत्रं च। अक्षाणी-न्द्रियाणि, रथाङ्गं चाक्षः। तेन च रथो लक्ष्यते। कृतबुद्धयः संस्कृतमतयः। असदविद्यमानम्। निसर्गः स्वभावः। आलोको विवेकः, प्रकाशश्च। तमः अन्धकारम्, अज्ञानमपि। दोषाः, सव्यमण्डलत्वादीनि च। कुपिता क्रुद्धा, धातुवैषम्यदूषिता च। आत्मरागदोषमिति। आत्मभूतगुणदर्शनम्, लौहित्यलक्षणं च विकारम्, 'वोढा

सूत्र लग गए हो। उन्होंने अपने दाहिने हाथ से, जिसकी निर्मल अंगूठी के मरकत से किरणें फूट कर निकल रही थीं और जो त्रिभुवन के कष्ट को दूर करने के लिए कुश की पवित्री धारण कर रहा था, शापजन्य कोलाहल को शान्त किया। अति विमल और फैलती हुई दाँतों की किरणों से मानों भविष्य के होने वाले सतयुग का आरम्भिक सूत्रपात करते हुए; सरस्वती के प्रस्थान के समय मङ्गलपटह के समान अपनी आवाज से दिशाओं को भरते हुए ब्रह्माजी ने गम्भीरतापूर्वक कहा—'हे ब्राह्मण, आपने जिस मार्ग को अपनाया है वह अच्छे लोगों के द्वारा सेवित नहीं है, अन्त में गिरा देता है। जो जितेन्द्रिय नहीं हैं उनकी आँखें उच्छृङ्खल (बेलगाम) इन्द्रियरूपी घोड़ों द्वारा उठी रज (धूल, राग) निस्तेज बना देती हैं। चर्मचक्षु कहाँ तक देख सकते हैं? बुद्धिमान् लोग अपने विशुद्ध प्रज्ञारूपी चक्षुसे समस्त भले-बुरे को देख लेती हैं। जल और अग्नि के समान धर्म और क्रोध का एक जगह रहना स्वभावविरुद्ध है। प्रकाश (विवेक) को छोड़ अन्धकार (अज्ञान) में क्यों गिर रहे हो? क्षमा तो सब तपस्याओं का मूल है। दूसरों की बुराइयों को ही देखने में निपुण

भागित्वम्? अतिरोषणश्चक्षुष्मानन्ध एव जनः। नहि कोपकलुषिता विमृशति मतिः कर्तव्यमकर्तव्यं वा। कुपितस्य प्रथममन्धकारीभवति विद्या, ततो भ्रुकुटिः। आदाविन्द्रियाणि रागः समास्कन्दति, चरमं चक्षुः। आरम्भे तपो गलति, पश्चात्स्वेदसलिलम्। पूर्वमयशः स्फुरति, अनन्तरमधरः। कथं लोकविनाशाय ते विषपादपस्येव जटावल्कलानि जातानि। अनुचिता खल्वस्य मुनिवेषस्य हारयष्टिरिव वृत्तमुक्ता चित्तवृत्तिः। शैलूष इव वृथा वहसि कृत्रिममुपशमशून्येन चेतसा तापसाकल्पम्। अल्पमपि न ते पश्यामि कुशलजातम्। अनेनातिलघिम्नाऽद्याप्युपर्येव प्लवसे ज्ञानोदन्वतः। न खल्वेनडमूका एडा जडा वा सर्वं एते महर्षयः। रोषदोषनिषद्ये स्वहृदये निग्राह्ये किमर्थं

भारस्य धीमद्भिर्जनैर्वैवधिकः स्मृतः। दोषैकग्राहिहृदयः पुरोभागी निगद्यते॥' रागोऽभूतगुणाभिनन्दनम्, रक्तता च। जटाः शिखाः, मूलानि वल्कलानि मुनिवस्त्राणि, त्वचश्च। वृत्तमुक्ता शीलेन त्यक्ता, परिवर्तुलमौक्तिका च। 'जायोपजीवी हि जनः शैलूषः कथितो बुधैः'। आकल्पो वेषः। जातं प्रकारः। अतिलघिमानुपादेयता तुच्छत्वात्। उपर्येवेत्यन्तःप्रवेशाभावात्। लघुश्च जलोपरि प्लवते। 'कथिता अनेडमूकाः श्रोतुं वक्तुं च खलु न ये शक्ताः। एडास्तु श्रुतिहीना जडास्तु मूर्खा बुधैः प्रोक्ताः'॥ रोष एव दोषस्तस्य निषद्या नियमेनावस्थितिर्यत्र तस्मिन्स्व-

---

दृष्टि के समान तुम्हारी क्रोध से अभिभूत बुद्धि अपने ही भीतर उत्पन्न रोग दोष को नहीं देख पा रही है। कहाँ महान् तप के भार को वहन करने की क्षमता और कहाँ एकमात्र दूसरों के अवगुण ग्रहण करना! अत्यन्त क्रोधी स्वभाव का नेत्रधारी भी अन्धा है, क्योंकि क्रोध से कलुषित हो जाने पर बुद्धि कर्तव्य और अकर्तव्य का विचार नहीं कर पाती। पहले क्रोधी व्यक्ति की विद्या धुंधली हो जाती है और पीछे उनकी भौंह। पहले राग इन्द्रियों को घेरता है, पीछे (लाली रूप में) आँखों में व्याप्त हो जाता है। आरम्भ में तपस्या विगलित हो जाती है। पश्चात् स्वेदजल। पहले अयश स्फुरित होने लगता है फिर अधर (फड़फड़ाने लगते हैं) विषवृक्ष के समान तुम्हारे जटारूपी वल्कल लोक विनाश के लिए कैसे उत्पन्न हो गए? तुम्हारी शीलरहित चित्तवृत्ति इस मुनिवेष के लिए वर्तुल मोतियों वाली हारयष्टि के समान अनुचित है। शमभाव से रहित चित्त के द्वारा नट के समान कृत्रिम तपस्वी के वेष को व्यर्थ ही ढो रहे हो। (इससे) तुम्हारा भी कल्याण नहीं देख रहा हूँ। इसी हल्केपन से आज भी तुम ज्ञान-समुद्र के ऊपर-ऊपर ही तैर रहे हो। वे सब महर्षि कानों के बहरे, आँखों के अन्धे और मूर्ख नहीं हैं। जब कि

मसि निगृहीतवाननागसां सरस्वतीम् । एतानि तान्यात्मप्रमादस्खलित-वैलक्ष्याणि, यैर्याप्यतां यात्यविदग्धो जनः' इत्युक्त्वा पुनराह—'वत्से सरस्वति, विषादं मा गाः । एषा त्वामनुयास्यति सावित्री । विनोदयिष्यति चास्मद्विरहदुःखिताम् । आत्मजमुखकमलावलोकनाव-धिश्च ते शापोऽयं भविष्यति' इति । एतावदभिधाय विसर्जितसुरा-सुरमुनिमनुजमण्डलः ससंभ्रमोपगतनारदस्कन्धविन्यस्तहस्तः समु-चिताह्निककरणायोदतिष्ठत् । सरस्वत्यपि शप्ता किञ्चिदधोमुखी धवल-कृष्णशारां कृष्णाजिनलेखामिव दृष्टिमुरसि पातयन्ती सुरभिनिः-श्वासपरिमललग्नैर्मूर्तैः शापाक्षरैरिव षट्चरणचक्रैराकृष्यमाणा शापशोकशिथिलितहस्ताऽधोमुखीभूतेनोपदिश्यमानमर्त्यलोकावतरणमार्गेव-

---

हृदये ते । यद्वा-रोषदोषस्य निषद्या आपणत्वं तस्यामन्त्रणम् हे रोषदोषनिषद्ये इति व्याख्येयम् । निगृहीतवान्प्राप्तवान् । 'आगः पापापराधयोः । वैलक्ष्यं लज्जितम् । याप्यो गर्ह्यः । पुनराहेति । अविश्रान्तेऽप्युक्तिक्रमे पुनरित्युपादानं वाच्यतापरिहा-राय । वत्से इति प्रसादाविष्करणार्थम् । एषेति । या तवैव स्निग्धा । विनोद-यिष्यति सुखयिष्यति । सरस्वतीति । सरस्वत्यपि शप्ता गृहमगादिति सम्बन्धः । शारां शबलाम् धवलकृष्णामित्येव वक्तव्ये शारग्रहणं संवलितवर्णद्वयप्रतीत्य-र्थम् । अधोमुखीभूतेनेति । योऽधिकरणवशादनिष्टमुपदिशति स लज्जादिनावश्यम-

---

जहाँ क्रोध जैसा महान् दोष वर्तमान है ऐसे अपने हृदय को तुम्हें नियन्त्रित करना चाहिए तो फिर क्यों तुमने निरपराध सरस्वती को शाप से जकड़ डाला । अपनी असावधानी से हुई गलतियों से लज्जित होने का यही अवसर है, जिनसे मूर्ख जन निन्दनीय होता है ।' यह कह कर ब्रह्मा जी ने फिर कहा—'वत्से सरस्वति ! दुःखी मत हो, यह सावित्री तेरे साथ जायगी । हमारे विरह से दुखी होने पर यह तुझे बहलायेगी । पुत्र का मुखकमल देखने तक तेरे इस शाप की अवधि है ।' इतना कह कर ब्रह्माजी ने सुर, असुर और मुनि के मण्डल को अपने-अपने स्थान पर विदा किया और स्वयं शीघ्र पहुँचे हुए नारद के कन्धे पर हाथ रख कर समुचित दैनिक क्रिया करने के लिए उठ खड़े हुए । सरस्वती भी शप्त होने के कारण कुछ सिर झुकाकर सावित्री के साथ घर चली । कृष्ण मृतचर्म की रेखा जैसी उज्ज्वल और श्याम अपनी आँखें वह वक्ष पर डाल रही थी । मूर्तिमान् शाप के अक्षरों के समान भौंरे उनकी श्वास की सुगन्धि के साथ लग गए, मानों उसे रोक रहे थे । शापजन्य शोक से उसके हाथ शिथिल पड़ गए थे । नीचे की ओर दौड़ती हुई उसके नखों की किरणें मानों उसे मर्त्यलोक में अवतीर्ण होने का मार्ग बतला रही थीं । ब्रह्मलोक में निवास करने

नखमयूखजालकेन नूपुरव्याहाराहूतैर्भवनकलहंसकुलैर्ब्रह्मलोकनिवासिहृदयै-रिवानुगम्यमाना समं सावित्र्या गृहमगात् ।

अत्रान्तरे सरस्वत्यवतरणवार्तामिव कथयितुं मध्यमं लोकमवततारांशुमाली । क्रमेण च मन्दायमाने मुकुलितविसिनीविसरव्यसनविषण्ण-सरसि वासरे, मधुमदमुदितकामिनीकोपकुटिलकटाक्षक्षिप्यमाण इव क्षेपीयः क्षितिधरशिखरमवतरति तरुणतरकपिलपनलोहिते लोकैक-चक्षुषि भगवति, प्रस्नुतमुखमाहेयीयूथक्षरत्क्षीरधाराधवलिते-ष्वासन्नचन्द्रोदयोद्दामक्षीरोदलहरीक्षालितेष्विव दिव्याश्रमोपशल्येषु, अपराह्णप्रचारचलिते चामरिणि चामीकरतटताडनरणितरदने रदति सुरस्रवन्तीरोधांसि स्वैरमैरावते, प्रसृतानेकविद्याधराभि-

---

धोमुखीभवति । जालकं समूहः । व्यादार उक्तिः ।

मध्यमं लोकं भूमिम् । अंशुमाली रविः । क्रमेणेत्यादावस्मिन्सति सावित्री सरस्वतीमवादीदिति सम्बन्धः । विसरशब्द औणादिकः षण्डपर्यायः । मुदिता सञ्जातमन्मथाः । कामिन्यः शृङ्गारिण्यः । सम्भोगान्तरायकारी कथमयमद्यापि नास्तमेतीत्यतः कोपः क्षिप्यमाणश्चातित्वरितं पतति । क्षेपीयस्तूर्णंतरम् । लपनं वदनम् । लोकेत्यादिना सम्भोगविघ्नकारित्वमेव प्रकाश्यते । माहेयी गौः । उद्दामः प्रवृद्धि गतः । उपशल्यं समीपम् । चामीकरं सुवर्णम् । रदना दन्ताः । रदति विलिखति । सुरस्रवन्ती गङ्गा । रोधस्तटम् । स्वैरं स्वेच्छम् । 'या दूतिका गमन-कालमपाहरन्ती सोढुं स्मरज्वरभरार्तिपिपासितेव । निर्याति वल्लभजनाधरपान-

---

वाले लोगों के हृदय के समान भवन के कलहंस उसके नूपुरों की आवाज से बुलाये जाने पर उसका पीछा करने लगे ।

इसी बीच सूर्य मानो सरस्वती के अवतीर्ण होने या समाचार कहने के लिए मध्यमलोक (भूलोक) में उतरे । क्रमशः दिन मन्द पड़ने लगा । कमलिनी-समूह के मुकुलित होने के दुःख से सरोवर दुखी हो गए । मदिरा से मदमाती कामिनियों के क्रोध के कारण टेढ़े कटाक्षों द्वारा मानो फेंके जाने पर बड़ी शीघ्रता से तरुण वानर के मुँह के सदृश लाल वर्ण वाले संसार के एकमात्र नेत्र भगवान् सूर्य अस्ताचल के शिखर पर उतरने लगे । दिव्य आश्रमों के समीपवर्ती प्रदेश आर्द्र स्तनों वाली गौओं के झुण्ड से बहती हुई दूध की धारा से धवल हो रहे थे । मानो निकट में होने वाले चन्द्रोदय से बढ़े हुए क्षीरसागर की तरंगों द्वारा प्रक्षालित हो रहे हों । सन्ध्याकालीन भ्रमण के लिए निकला हुआ, चँवर धारण किये हुए

सारिकासहस्रचरणालक्तकरसानुलिप्त इव प्रकटयति च तारापथे पाटलताम्, तारापथप्रस्थितसिद्धदत्तदिनकरास्तमयार्घ्यावर्जिते रञ्जितककुभि, कुसुम्भभासि स्रवति पिनाकिप्रणतिमुदितसंध्यास्वेदसलिल इव रक्तचन्दनद्रवे, वन्दारुमुनिवृन्दारकवृन्दबध्यमानसंध्याञ्जलिवने, ब्रह्मोत्पत्तिकमलसेवागतसकलकमलाकर इव राजति ब्रह्मलोके; समुच्चारिततृतीयसवनब्रह्माणि ब्रह्मणि, ज्वलितवैतानज्वलनज्वालाजटालाजिरेष्वारब्धधर्मसाधनशिबिरनीराजनेष्विव सप्तर्षिमन्दिरेषु, अघमर्षणमुषितकिल्बिषविषगदोल्लाघलघुषु यतिषु संध्योपासनासीनतपस्विपङ्क्तिपूतपुलिने प्लवमाननलिनयोनियानहंसहासदन्तुरितोर्मिणि मन्दाकिनीजले,

---

लोभात्सा कथ्यते कविवरैरभिसारिकेति ॥' तारापथो नभः। आवर्जिते प्रकीर्णे। ककुभो दिशः। कुसुम्भं पद्मकम्। रक्तचन्दनद्रवे स्रवति सतीति योजना। वन्दारु वन्दनशीलम्। वृन्दारकशब्दः प्रशंसायाम्। सवनं प्रातर्मध्याह्ने सायं च सोमयागैकदेशस्नानमित्यन्ये। ब्रह्म वेदः। वैतानो यज्ञभवः। जटालानि व्याप्तानि। अजिराण्यङ्गणानि। आरब्धे धर्मसाधने शिबिरे पुण्योपकरणस्कन्धावारे नीराजनाख्यं शान्तिकर्म येषु। धर्मोपकरणविषये मा दोषः प्रादुरभवन्निति। 'शमनं सर्वपापानां जप्यं त्रिष्वघमर्षणम्'। गदो रोगः। उल्लाघं स्वस्थताकरम्। यतयश्चतुर्थाश्रमिणः। सद्यो जलत्यक्तं तटं पुलिनम्। नलिनयोनिर्ब्रह्मा। हंसानां हासः

इन्द्र का हाथी ऐरावत सुवर्ण के तटों पर अपने दाँतो को पाट कर बजाता हुआ स्वच्छन्द होकर मन्दाकिनी के किनारों को खोदने लगा। आकाश लाल हो गया, मानो मार्ग में इधर-उधर घूमती हुई सहस्रों विद्याधरी अभिसारिकाओं के चरणों में लगे महावर से पुत गया हो। आकाश में घूमते हुए सिद्धों द्वारा सूर्यास्त के अर्घ्यरूप में ढाला गया, दिशाओं को रंजित करता हुआ कुसुम्भी रंग का रक्तचन्दन चू रहा था, मानो शिव के प्रणाम करने में विभोर संध्या के शरीर से पसीना निकल रहा हो। वंदनशील मुनिजन अपनी सन्ध्योपासना में अंजलियाँ बाँध रहे थे, मानो ब्रह्माजी की उत्पत्ति वाले कमल की सेवा के लिए समस्त कमल इकट्ठे हों, इस प्रकार ब्रह्मलोक सुशोभित हो रहा था। ब्रह्माजी तीसरी बार (संध्याकालीन) सवन (यज्ञीय स्नान) विषयक वेद का उच्चारण कर रहे थे। सप्तर्षियों के गृह-प्रांगण में यज्ञाग्नि की ज्वालाएँ व्याप्त थीं, मानो शिविर में धर्म का एक कार्य नीराजन (आरती) नामक शान्तिकर्म हो रहा हो। अघमर्षण मन्त्र के जप से पाप के विषाक्त रोग का विनाश हो जाने से यतिलोग स्वस्थ हो रहे थे। (मन्दाकिनी के तट का) पुलिन संध्योपासना के लिए तपस्वियों के बैठने से और भी पवित्र हो रहा था। तैरता हुआ ब्रह्मा जी

जलदेवतातपत्रे पत्त्ररथकुलकलत्रान्तःपुरसौधे निजमधुमधुरामोदिनि कृतमधुपमुदि मुमुदिषमाणे कुमुदवने, दिवसावसानताम्यत्तामरसमधुरमधुसपीतिप्रीते सुषुप्सति मृदुमृणालकाण्डकण्डूयनकुण्डलितकंधरे धुतपत्रराजिवीजितराजीवसरसि राजहंसयूथे, तटलताकुसुमधूलिधूसरितसरिति सिद्धपुरपुरंध्रिधम्मिल्लमल्लिकागन्धग्राहिणि सायंतने तनीयसि निशानिश्वासनिभे नभस्वति, संकोचोदञ्चदुच्चकेसरकोटिसंकटकुशेशयकोशकोटरकुटीशायिनि षट्चरणचक्रे, नृत्योद्धूतधूर्जटिजटाटवीकुटजकुड्मलनिकरनिभे नभस्तलं स्तबक-

---

शौक्ल्यं, हंसा एव वा शुक्लतया हासः। दन्तुरा एव दन्तुरिताः। ये च सहासास्ते लक्ष्यमाणदन्तद्वया दन्तुरा इव दृश्यन्ते। आतपत्रं छत्रम्। पत्त्ररथाः पक्षिणः। कलत्रं दाराः। मधु मकरन्दः, मद्यं च। मधुपा भ्रमराः, मद्यपाश्च। मुमुदिषमाणे विचिकिसिषति। अन्यत्र—मोदितुमिच्छति। प्रारिप्स्यमानगीतादिगोष्ठीबन्ध इति यावत्। 'मञ्चः क्रोशन्ति' इतिवत्। ताम्यदिति। ताम्यन्ति, न तु तान्तानि, प्रदोषस्य न तावत्प्रवृत्तत्वात्। 'मधु, मद्यमपि। सपीतिस्तु सहपानम्। अनेन तु प्रेमातिशय आवेद्यते। सुषुप्सति निद्रासति। मृद्विति। कण्डूयनं विक्रियाविशेषम्। कुण्डलिता चक्रीकृता। राजीवं पद्मम्। राजहंसा इत्यत्रैकशेषः। तटशब्दः प्रत्यासत्त्युपलक्षणार्थः। पुरंध्रिरुत्तममहिला। धम्मिल्लाः संयताः कचाः। मल्लिका भूपदी एषा च सायमेवोन्मिषति। सायंतने दिनान्तभवे। कोषः कुड्मलम्। कोटरमभ्यन्तरम्। कुटी गेहम्। शयनमत्र विश्रमणम्, न तु स्वापः, पौनरुक्त्यापत्तेः अटवीति। विवक्षितम्। तत्रैवाकृत्रिमकुसुमसंबन्धात्। कुटजं गिरिमल्लिका। कुड्मल-

---

का वाहन हंस अपनी उज्ज्वल हंसी से मन्दाकिनी की तरंगों को निम्नोन्नत बना रहा था। जलदेवता के छत्रस्वरूप और पक्षि-कामिनियों के अन्तःपुर के प्रासादरूप, और मकरंद को मीठी सुगन्ध वाले, तथा भौंरो को प्रसन्न करने वाले कुमुद तत्काल खिल रहे थे। राजहंसों का समूह ढंपते हुए कमलों के मीठे मधु (मकरन्द या मद्य) के सहपान करने से छक कर, गर्दन को कुण्डलित करके कोमल मृणालों द्वारा शरीर खुजलाते हुए, पंखों को फड़फड़ा कर पद्मसरोवरों को हवा देते हुए ऊँघ रहा था। तट की लताओं के फूलों की धूल उड़ा कर धूसर बनाती हुई, सिद्धों के नगर की उत्तम महिलाओं के बंधे हुए केशपाश की मल्लिका की गंध लेकर रात की सांस के समान वायु मंद-मंद बहने लगी। झुण्ड के झुण्ड भौंरे सिकुड़ जाने से पराग भरे कमलों के कोशों की संकीर्ण कुटिया में विश्राम करने लगे। नृत्य के समय हिलती हुई भगवान् शंकर की जटाटवी से कुटज फूल-जैसे गुच्छेदार तारे आकाश में छिटक गए। संध्या की लाली छि-

यति तारागणे, संध्यानुबन्धताम्रे परिणमत्तालफलत्वक्त्विषि कालमेघमेदुरे, मेदिनीं मीलयति नववयसि तमसि तरुणतरतिमिरपटलपाटनपटीयसि समुन्मिषति यामिनीकामिनीकर्णपूरचम्पककलिकाकदम्बके प्रदीपप्रकरे, प्रतनुतुहिनकिरणकिरणलावण्यालोकपाण्डुन्याश्याननीलनीरमुक्तकालिन्दीकुलबालपुलिनायमाने शातक्रतवे कृशयति तिमिरमाशामुखे, खमुचि मेचकितविकचितकुवलयसरसि शशधरकरनिकरकचग्रहाविले विलीयमाने मानिनीमनसीव शर्वरीशबरचिकुरचये चाषपक्षत्विषि तमसि, उदिते भगवत्युदयगिरिशिखरकटककुहरहरिखरनखरनिवहहेतिनिहतनिजहरिणगलितरुधिरनिचयनिचितमिव लोहितं वपुरुदयरागधरमधरमिव विभावरीवध्वा धारयति श्वेतभानौ,

---

कलिका। निकरः समूहः। अनुबन्धः संस्कारः। परिणमज्जरठीभवत्। तालस्तृणराजः। मेदुरं घनम्। मीलयति स्थगयति। नवायसि प्रत्यग्रे। चम्पको हेमपुष्पकः। आश्यानमीषच्छुष्कम्। नीरं जलम्। कालिन्दी यमुना। नीलमाभिप्रायेणैतत्पदम्। यस्तटभागो वारिणा त्यक्तस्तत्पुलिनम्। कूलं ततोऽन्यत्। कृशयति। तनूकुर्वति। खमुचि त्यक्ताकाशे। भूभागमपलम्बमान इत्यर्थः। मेचकितं निर्विभागतां नीतम्। शशधरकरैः स्वीकारेण करम्बितेऽत एव क्षयं गच्छन्ति। अन्यत्र चन्द्ररश्मीनां धारणेन सेवनेन किंकर्तव्यतामूढ एवमधिगलत्स्थार्द्रतां भजमाने केशपाशपक्षे तु विस्रंसमाने। चाषः किकीदिविः पक्षी। हरिः सिंहः। नखरा नखाः। हेतिरायुधम्। विभावरी रात्रिः। श्वेतभानुश्चन्द्रः। अचलः, अर्था-

---

हुए, पकते हुए तालफल की त्वचा के समान कलौंस भरी ललाई वाला प्रलयकालीन मेघों के सदृश गहन पहला अंधेरा धरती पर छा गया। रात्रिरूपी कामिनी के कान में खोसी हुई चम्पा की कली-जैसे दीपक गहन अंधेरे को हटाने लगे। यमुना का रेतीला किनारा नीले जल के हट जाने पर जैसा लगता है उसी प्रकार पूर्व दिशा का मुख चन्द्रमा की कुछ-कुछ रश्मियों के लुनाई-भरे आलोक से पीला होने लगा और अन्धकार को क्षीण करने लगा। विलीन होता हुआ अंधकार आकाश को छोड़ने लगा, खिले हुए कुवलय वाले सरोवर विभिन्न वर्ण के हो गए। चाष पक्षी के पंख जैसा और रात्रि रूपी भीलनी के बालों जैसा अँधेरा चन्द्र की किरणों के कचग्रह से मानिनी नायिका के मन के समान धीमा पड़ने लगा। रात्रिवधू के अधरराग के समान लाल चन्द्रमा उदित हो गया, मानो उदयाचल की खोह में रहने वाले सिंह के द्वारा पकड़े पंजे से मारे गए अपने हिरन के रक्त से वह रंग गया था। उदयाचल से बहती हुई चन्द्रकान्त मणियों की

अचलच्युतचन्द्रकान्तजलधाराधौत इव ध्वस्ते ध्वान्ते, गोलोकगलित-दुग्धविसरवाहिनि दन्तमयकरमुखमहाप्रणाल इवापूरयितुं प्रक्रते पयोनिधिमिन्दुमण्डले, स्पष्टे प्रदोषसमये सावित्री शून्यहृदयामिव किमपि ध्यायन्तीं सास्रां सरस्वतीमवादीत्—सखि, त्रिभुवनोपदेशदानदक्षायास्तव पुरो जिह्वा जिह्रेति मे जल्पन्ती। जानास्येव यादृश्यो विसंस्थुला गुणवत्यपि जने दुर्जनवन्निर्दाक्षिण्याः क्षणभङ्गिन्यो दुरतिक्रमणीया न रमणीया दैवस्य वामा वृत्तयः। निष्कारणा च निकारकणिकापि कलुषयति मनस्विनोऽपि मानसमसदृशजनादापतन्ती। अनवरतनयनजलसिच्यमानश्च तरुरिव विपल्लवोऽपि सहस्रधा प्ररोहति। अतिसुकुमारं च जनं संतापपरमाणवो मालतीकुसुममिव म्लानिमानयन्ति। महतां

दुदयाचलः, गोलोको रश्मिसमूहो वा। मकरमुखमिव मुखमग्रमस्येति समासः। विसंस्थुला निर्मयादाः। दुर्जनवन्निर्दाक्षिण्याः क्रूराः। क्षणभङ्गिन्य इत्याश्वासनगर्भयमुक्तिः। वामाश्च स्त्रिय ईदृश्य एव। निकारः परिभवः। कणिका लेशः, शर्करिका च। कलुषयति दूषयति, कालुष्यं नयति च। मानसं चेतः सरश्च। अनवरतमश्रुणा सिच्यमानः। अनवरतं घटसारणीप्रणालादिना नयनं प्रापणं यस्य तादृशो जलेनोक्ष्यमाणश्च। विपल्लव आपल्लेशः, विगतपल्लवश्च। प्ररोहति स्थिरीभवति। तरुपक्षे प्ररोहा विद्यन्ते यस्य स प्ररोहः, स इवाचरति प्ररोहतीति व्याख्या। संतापः खेदः, ऊष्मा च। मालतीकुसुमं सुमनःपुष्पमतिसुकुमारम्। महान्त उत्तमाः

जलधारा से मानो सारा अंधेरा धुल गया। आकाश मे उठ कर चन्द्रमा अपनी सफेद चाँदनी से समुद्र को ऐसे भरने लगा जैसे हाथी के दाँतों का बना हुआ मकरमुखी पनाला गोलोक से दूध की धार बहा रहा हो। इस प्रकार प्रदोष समय के स्पष्ट हो जाने पर सावित्री शून्य-हृदय होकर कुछ सोचती और बड़बड़ाती हुई सरस्वती से बोली—'सखि, तू त्रिभुवन को उपदेश देने में चतुर है' तेरे सामने मेरी जीभ कुछ बकते हुए शर्मिन्दा हो रही है। तू तो जानती ही है कि गुणवान् लोगों के विषय में जैसी दैवी प्रवृत्तियाँ मर्यादाहीन, दुर्जनों की तरह क्रूर, क्षणभङ्गुर, दुरन्त एवं अरमणीय होती है। समानता न रखने वालों द्वारा बिना किसी कारण के उत्पन्न परिभव का लेश भी मनस्वी के भी मन को कलुषित कर डालता है। विपत्ति का अंकुर निरन्तर आँसुओं से सींचे जाने पर (पल्लव रहित भी) वृक्ष के समान हजारों शाखा-प्रशाखाओं में बढ़ता ही जाता है। मालती के फूल की तरह अतिसुकुमार लोगों को सन्ताप के परमाणु मुरझा डालते हैं।

चोपरि निपतन्नणुरपि सृणिरिव करिणां क्लेशः कदर्थनायालम्। सहजस्नेहपाशग्रन्थिबन्धनाश्च बान्धवभूता दुस्त्यजा जन्मभूमयः। दारयति दारुणः क्रकचपात इव हृदयं संस्तुतजनविरहः, सा नार्हस्येवं भवितुम्। अभूमिः खल्वसि दुःखक्ष्वेडाङ्कुरप्रसवानाम्। अपि च पुराकृते कर्मणि बलवति शुभेऽशुभे वा फलकृति तिष्ठत्यधिष्ठातरि प्रष्ठे पृष्ठतश्च कोऽवसरो विदुषि शुचाम्। इदं च ते त्रिभुवनमङ्गलैककमलममङ्गलभूताः कथमिव मुखमपवित्रयन्त्यश्रुबिन्दवः। तदलम्। अधुना कथय कतमं भुवो भागमलङ्कर्तुमिच्छसि। कस्मिन्नवतितीर्षति ते पुण्यभाजि प्रदेशे हृदयम्। कानि वा तीर्थान्यनुग्रहीतुमभिलषसि। केषु वा धन्येषु तपोवनधामसु तपस्यन्ती स्थातुमिच्छसि। सज्जोऽयमुप-

---

द्राघीयांसश्च। सृणिरङ्कुशः। मातरोऽपि जन्मभूमयः। दारुणो विषमः, काष्ठस्य च। क्रकचः करपत्रम्, हृदयं चित्तम्, मध्यं च। संस्तुतः परिचितः। सेति। सर्वनामपदं जानासीत्यादिपूर्वोक्तार्थगर्भीकारेण। अभूमिरस्थानम्, अक्षेत्रं च। क्ष्वेडो विषम्। शुभेऽशुभे वेत्यादि। सप्रतिपक्षा लोकोक्तिरियम्। 'अव्युत्पन्नमतिः कृतेन न सता नैवासता व्याकुलः' 'गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः' इत्यादिवत्। अधिष्ठातरि स्वामिनि। प्रष्ठेऽग्रगामिनि। अपवित्रतां नयन्ति, न तु शोभां त्याजयन्ति। धामसु स्थानेषु। तपस्यन्ती तपश्चरन्ती। सज्जः प्रगुणः। आज्ञाकार्यमिति दृष्टस्वरूपः। निःसामान्यविस्रम्भभाजनतामभिव्यनक्ति सखीजनशब्दः। इवश्रेय-

---

छोटा भी अंकुश जैसे हाथियों पर गिर कर उनको परेशान कर देता है वैसे ही बड़ों के ऊपर थोड़े ही क्लेश का पड़ना बहुत कष्टकर हो जाता है। बंधु-बांधव के समान अपनी जन्मभूमियाँ, जिनके साथ स्वाभाविक स्नेहपाश का गठबन्धन हो चुका है, दुस्त्यज है। अपने परिचित जनों का विरह दारुण आरे की तरह हृदय को चीर डालता है। पर तुझे इस तरह नहीं होना चाहिए। दुःखरूपी विष के पौधे के उत्पन्न होने के लिए तू स्थान नहीं है। और भी, जब कि पूर्वजन्म के बलवान् शुभ या अशुभ कर्म आगे और पीछे फल देने वाले हैं हा तो बुद्धिमान् को शोक करने का क्या अवसर है? त्रिभुवन का मंगल करने वाला तेरे कमल के समान इस मुख को अमंगल आँसू क्यों अपवित्र कर रहे हैं? बस रहने दे अब बता—धरती के किस भाग को अलंकृत करना चाहती है? किस पुण्यवान् प्रदेश में उतरने के लिए तेरा हृदय तुझे प्रेरित कर रहा है? किन तीर्थों को तू अनुगृहीत करना चाहता है? तपोवन के किन धन्य स्थानों में तपस्यानिरत रहने के लिए सोच रही है?

चरणचतुरः सहपांशुक्रीडापरिचयपेशलः प्रेयान्सखीजनः क्षितितलावतरणाय। अनन्यशरणा चाद्यैव प्रभृति प्रतिपद्यस्व मनसा वाचा क्रियया च सर्वविद्याविधातारं दातारं च श्वःश्रेयसस्य चरणरजःपवित्रितत्रिदशासुरं सुधासूतिकलिकाकल्पितकर्णावतंसं देवदेवं त्रिभुवनगुरुं त्र्यम्बकम्। अल्पीयसैव कालेन स ते शापशोकविरतिं वितरिष्यति' इति।

एवमुक्ता मुक्तमुक्ताफलधवललोचनजललवा सरस्वती प्रत्यवादीत्—'प्रियसखि, त्वया सह विचरन्त्या न मे कांचिदपि पीणामुत्पादयिष्यति ब्रह्मलोकविरहः शापशोको वा। केवलं कमलासनसेवासुखमार्द्रयति मे हृदयम्। अपि च त्वमेव वेत्सि मे भुवि धर्मधामानि समाधिसाधनानि योगयोग्यानि च स्थानानि स्थातुम्' इत्येवमभिधाय विरराम। रणरणकोपनीतप्रजागरा चानिमीलितलोचनैव ता निशामनयत्।

सस्य कल्याणस्य दातारम्। सुधासूतिश्चन्द्रः। कलिका तारिका। शापविरतिर्ब्रह्मणैवोक्ता। अतस्तत्र किमन्यापेक्षयेत्याशङ्क्याह—अल्पीयसैव कालेनेति।

आर्द्रयति स्नेहयति। धर्मधामानि। मध्यदेशादीनि समाधिश्चित्तैकाग्र्यम्।

उपचार करने में चतुर, बाल्यकाल से ही धूल की क्रीडाओं का साथी और प्रिय यह जन तेरे साथ पृथिवी पर उतरने के लिए तैयार है। अनन्यशरण तू आज से ही मन, वचन और कर्म से भगवान् शंकर को मान, जो समस्त विद्याओं के विधाता एवं कल्याण को देने वाले, देवों के देव और त्रिभुवन के गुरु हैं। जिन्होंने अपने चरण की धूल से सुर, असुर दोनों को पवित्र किया है और चन्द्र की एक कला को अपना कर्णावतंस बनाया है। बहुत थोड़े समय में वे तेरे शापजन्य शोक को दूर कर देंगे।'

इस प्रकार सावित्री के कहने पर मोती की भाँति सफेद आँसू के कण आँखों से टपकाती हुई सरस्वती बोली—'प्रिय सखी, ब्रह्मलोक का विरह या शापजनित शोक कोई भी पीड़ा उत्पन्न नहीं कर सकेंगे, जब तक तेरे साथ मैं विचरण कर रही हूँ। केवल ब्रह्माजी की सेवा का सुख मेरे हृदय को पिघला रहा है। पृथिवी पर मेरे लिए धर्म के स्थान जो समाधि (चित्त की एकाग्रता) के साधन एवं योग (चित्तवृत्ति का निरोध) के उपयुक्त हैं उन्हें तू ही जानती है।' इतना कह वह चुप हो गई। मानसिक उथल-पुथल (रणरणक) के कारण उसकी नींद उचट गई और उसने आँखें बिना बंद किये उस रात को बिताया।

अन्येद्युरुदिते भगवति त्रिभुवनशेखरे खणखणायमानस्खलत्खलीन-क्षतनिजतुरगमुखक्षिप्तेन क्षतजेनेव पाटलितवपुष्युदयाचलचूडामणौ जरत्कृकवाकुचूडारुणारुणपुरःसरे विरोचते नातिदूरवर्ती विविच्य पितामहविमान हंसकुलपालः पर्यटन्नपरवक्त्रमुच्चैरगायत्—

'तरलयसि दृशं किमुत्सुकामकलुषमानसवासलालिते।
अवतर कलहंसि वापिकां पुनरपि यास्यसि पङ्कजालयम्' ॥

तच्छ्रुत्वा सरस्वती पुनरचिन्तयत्—'अहमिवानेन पर्यनुयुक्ता। भवतु।

योगे हि तदुक्तम्—'आदौ समाधिमासीत पश्चाद्योगमुपाचरेत्' इति। रणरणको दुःखमरतिकृतम्।

अन्येद्युरन्यस्मिन्नहनि। एते च कालाः संख्यादयो व्यवहारा इहत्या ब्रह्मलोक उपचारिताः। शेखर इव। शेखरो मुण्डमालकः। खलीनं कविका। क्षतजं रक्तम्। कृकवाकुः। कुक्कुटः। चूडा मांसमयी शेखरिका। विविच्य विचार्य। विमानपालः स्वप्रस्तावे हंसी यदाह तेन सरस्वती पर्यनुयोजितेवाभूत्। अपरवक्त्राख्यं वृत्तमाख्यायिकासु प्रयोज्यम्। तथा चाह भामहः—'वक्त्रं चापरवक्त्रं च काव्ये काव्यार्थशंसिनि' इति। तरलयसीत्यादि। अकलुषं मानसं यस्य स निर्मलचेता ब्रह्मा, मानसाख्यं सरः। लालिता शीलिता। वापिका पुष्करिणी, उप्यन्तेऽस्यां तानि कर्माणीति वापिका, मर्त्यभूमिरपि। पङ्कजमा-

---

दूसरे दिन तीनों भुवन के शिरोमाल एवं उदयाचल के चूडामणि भगवान् सूर्य उदित हुए। उनका मण्डल टहाका लाल था, मानों खण-खण करते हुए लगाम की क्षति से उत्पन्न अपने घोड़ों के मुखरुधिर के फव्वारे उस पर पड़ गए हों। वृद्ध कुक्कुट की चूड़ा के समान लाल वर्ण वाला अरुण उनके आगे बैठा था। कुछ ही दूर पर घूमते हुये ब्रह्मा जी के वाहन हंसों के रक्षक ने सोच कर ऊँचे स्वर से अपवक्त्र का गान किया—

'अरी कलहंसी, मानसरोवर के निर्मल जल में रहने वाली तू अपनी उत्सुक आँखों को क्यों चंचल कर रही है? अभी बावली में उतर जा, फिर पंकजालय (सरोवर) में जाना†।'

उसे सुन कर सरस्वती ने फिर सोचा—'मानों मुझसे इसने कहा है। अच्छा, मैं

---

† इस श्लोक में हंसपाल सरस्वती को भी सिखावन दे रहा है कि सरस्वती, तू निर्मलचित्त ब्रह्मा जी की लाड़ली है, क्यों अपनी उत्सुक आँखें थका रही है? अभी वापिका (मर्त्यलोक) में उतर, फिर ब्रह्मा जी (पंकजालय) को प्राप्त कर लेना।

मानयामि मुनेर्वचनम्' इत्युक्त्वोत्थाय कृतमहीतलावतरणसंकल्पा परित्यज्य वियोगविक्लवं स्वपरिजनं ज्ञातिवर्गमविगणय्यावगणा त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य चतुर्मुखं कथमप्यनुनयनिर्वर्तितानुयायिव्रतिव्राता ब्रह्मलोकतः सावित्री-द्वितीया निर्जगाम।

ततः क्रमेण ध्रुवप्रवृत्तां धर्मधेनुमिवाधोधावमानधवलपयोधराम्, उद्धुरध्वनिम्, अन्धकमथनमौलिमालतीमालिकाम्, आलीयमान-बालखिल्यरुद्धरोधसम्, अरुन्धतीधौततारवत्वचम् त्वङ्गत्तुङ्गतरङ्गतर-त्तरलतरतारतारकाम्, तापसवितीर्णतरलतिलोदकपुलकितपुलिनाम्

लयो यस्य स ब्रह्मा, सरश्च। पर्यनुयुक्ता उपपत्त्या बोधिता। अवगणा केवला सावित्रीव्यतिरेकेण नान्यपरिवारा। कथमपीति। न भृत्यादिवत्। व्रतव्रातस्त-पस्विसमूहः।

तत इत्यादावीदृशं मन्दाकिनीमनुसरन्ती सरस्वती मर्त्यलोकमवतारेति संब-न्धः। ध्रुवं नित्यं वियत्। तस्मात्प्रवृत्ताम्। ध्रुवस्तारकाविशेषो ध्रुवान्नित्यस्थानाद्वा विष्णोर्वा, ध्रुवावूरू पश्चाद्भागौ सक्थिनी ध्रुवे वा, तयोः प्रकर्षेण वृत्तां परिवर्तुलां वा अध इति पदेन धावनक्रियासहत्वाज्जलस्य ग्रहणं सूच्यते। अत एव धवलाः शुक्लाः पयोधरा मेघा यस्यास्ताम्। इतरत्राधो धावमानाः पयःपूर्णत्वाल्लम्बमानाः क्षीरस्रुतेश्च धवलाः स्तना यस्या। अधो धावमानं वेगेन प्रसरद्धवलं पयो धारयति या ताम्, अयो धावमानो धावलो यः पयोधो वत्सस्तं राति ददाति या ताम्, धवलो वृष-स्तस्मै पयो धारयति या तां वेत्यादिकाः कुव्याख्या एव। उद्धर उद्भटः। अन्धक-

, मुनि दुर्वासा के वचन मानती हूँ।' यह कह कर पृथिवी पर उतरने के लिए संकल्प करके उठी और वियोग से व्याकुल अपने परिवार को छोड़, अपने बन्धु-बांधवों को न मान, ब्रह्मा जी की तीन बार प्रदक्षिणा करके, साथ आते हुए तपस्वियों को किसी प्रकार अनुनय-विनय द्वारा लौटा कर, अकेले सावित्री को साथ ले ब्रह्मलोक से निकल पड़ी।

तब क्रम से सरस्वती सात सागरों की पटरानी मंदाकिनी का अनुसरण करती हुई मर्त्यलोक में उतरी। वह मंदाकिनी ध्रुव (नित्यस्थान, विष्णु) से निकली हुई कामधेनु के समान नीचे लटकते हुए पयोधरों (मेघों, स्तनों) को धारण कर रही थी। उसकी ध्वनि गम्भीर थी। वह अंधक के शत्रु भगवान् शंकर के मस्तक की मालती-माला थी। तटपर बालखिल्य मुनियों की भीड़-भाड़ थी। अरुन्धती वहाँ वल्कल का संमार्जन करती थी। उसकी दौड़ती हुई ऊँची लहरों पर चंचल तारे हिलोरें ले रहे थे। उसकी रेतों को तापस

आप्लवनपूतपितामहपातितपितृपिण्डपाण्डुरितपाराम्, पर्यन्तसुप्तसप्तर्षिकुशशयनसूचितसूर्यग्रहसूतकोपवासाम्, आचमनशुचिशचीपतिमुच्यमानार्चनकुसुमनिकरशाराम्, शिवपुरपतितनिर्माल्यमन्दारदामकाम्, अनादरदारितमन्दरदरोदृषदम्, अनेकनाकनायकनिकायकामिनीकुचकलशविलुलितविग्रहाम्, ग्राहग्रावग्रामस्खलनमुखरितस्रोतसम्, सुषुम्णास्रुतशशिसुधाशीकरस्तवकतारकिततीराम्, धिषणाग्निकार्यधूमधूसरितसैकताम्, सिद्धविरचितवालुकालिङ्गलङ्घनत्रासविद्रुतविद्याधराम्, निर्मोकमुक्तिमिव गगनोरगस्य, लीलाललाटिकामिव त्रिविष्टपविटस्य, विक्रयवीथीमिव पुण्यपण्यस्य, दत्तार्गलामिव नरक-

---

मथनः शिवः । आलीयमानाः श्लिष्यन्तः । वालखिल्या । मुनिभेदाः । रोधस्तटम् । त्वङ्गच्चरत । आप्लवनं स्नानम् । पितरो देवविशेषाः, आज्यपाः, सोमपाः, बर्हिषादयश्च । आचमनेत्यादिना । पितामहवन्न स्नानादिनिष्ठात्वमस्योच्यते । अत्र एव शचीपदेन संभोगसक्तत्वमिव पोषितम् । निकायः समूहः सुषुम्णाख्योऽमृतमयो रविरश्मिः । धिषणो बृहस्पतिः । सिद्धकृतत्वेन लिङ्गेषु भगवत्संनिधानमावेद्यते । निर्मोकः सर्पकञ्चुकः । विस्रंसतया शुक्लत्वेन लहरिकावलीत्वेन निर्मोकमुक्तिमिवेत्युत्प्रेक्षा । गगनमिवोरगः कृष्णतया । ललाटिका ललाटालंकारः विटो भुजङ्गः । उष्णीषं

अपने तरल तिलोदक से पुलकित कर रहे थे। स्नान से पवित्र ब्रह्माजी द्वारा पितरों के लिए लुढ़काये गये पिण्डों से उसका तट उज्ज्वल हो रहा था। पास में सोये सप्तर्षियों की कुश-शय्या से सूचित हो रहा था कि उन्होंने यहाँ सूर्यग्रहण के अशौच का उपवास किया है। आचमन से पवित्र होकर इन्द्र द्वारा भेंट किए गए पूजा के फूलों से वह विविध वर्णं वाली हो रही थी। शिवपुर से गिरी मंदरमाला को वह धारण कर रहा था। आयास के बिना ही उसने मन्दराचल की कन्दराओं के चट्टान तोड़ डाले थे। अनेक स्वर्ग नायकों की दिव्याङ्गनाओं के कुचकलशों से (आहत होकर) वह डोल रही थी। घड़ियालों और चट्टानों पर निपात होने से उसके प्रवाह मुखर हो उठते थे। सूर्य की (अमृतमय रश्मि) सुषुम्णा से निकले अमृत के फुहारे मन्दाकिनी के तीर पर तारों की तरह बिछ गए थे। बृहस्पति के यज्ञ से उत्पन्न धुवाँ नदी की रेत को धुआंस कर रहा था। सिद्धों द्वारा बनाये गए बालू के शिवलिङ्ग का अकस्मात् लंघन हो जाने से उत्पन्न त्रास के कारण विद्याधर इधर-उधर भाग रहे थे। मानों वह मन्दाकिनी गगन-सर्प की उज्ज्वल लहराती हुई केंचुल हो, त्रिभुवनरूपी विट (धूर्त) की लीला-ललाटिका (ललाट का अहंकार) हो, पुण्यरूप सौदे की बाजार-गली हो, नरक के नगर-द्वार को बन्द करने वाली आगल

नगरद्वारस्य, अंशुकोष्णीषपट्टिकामिव सुमेरुनृपस्य, दुगूलकदलिकामिव कैलासकुञ्जरस्य, पद्धतिमिवापवर्गस्य, नेमिमिव कृतयुगस्य सप्तसागरराजमहिषीं मन्दाकिनीमनुसरन्ती मर्त्यलोकमवततार। अपश्यच्चाम्बरतलस्थितैव हारमिव वरुणस्य, अमृतनिर्झरमिव चन्द्राचलस्य, शशिमणिनिष्यन्दमिव विन्ध्यस्य, कर्पूरद्रुमद्रवप्रवाहमिव दण्डकारण्यस्य, लावण्यरसप्रस्रवणमिव दिशाम्, स्फाटिकशिलापट्टशयनमिवाम्बरश्रियाः स्वच्छशिशिरसुरसवारिपूर्णं भगवतः पितामहस्यापत्यं हिरण्यवाहनामानं महानदम्,) यं जनाः शोण इति कथयन्ति । दृष्ट्वा च तं रामणीयकहृतदया तस्यैव तीरे वासमरचयत्। उवाच च सावित्री—'सखि, मधुरमयूरविरुतयः कुसुमपांशुपटलसिकतिलतरुतलाः परिमलमत्तमधुपवेणीवीणारणितरमणीया रमयन्ति मां मन्दी-

---

शिरोवेष्टनं दिक्षु प्रसिद्धम् । दुगूलशब्दो दुकूलसमानार्थः । पद्धतिर्मार्गः । अपवर्गो मोक्षः । कृतयुगस्य रचितयुगकाष्ठस्य रथस्येत्यर्थः । यथा नेमिवशाद्रथग्रहणं तथा तद्वशात्कृताख्यस्य युगस्य । सप्तसागरराजः । क्षीरसमुद्रः । चन्द्राख्य पर्वत इति केचित् । शशिमणिश्चन्द्रकान्तः । पितामहस्येति । तद्भवत्या तदाश्रयणम् । सिकता विद्यन्ते यस्य स सिकतिलः । मत्तशब्देन सशब्दत्वम्, वेणीपदेन स तन्त्रीसन्निवेशसादृश्यमाह। वेणी पंक्तिः। लिङ्ग्यतेऽनेनेति लिङ्गमाकारः। पञ्च ब्रह्माणि सद्योजातः, वामदेवः, अघोरः, तत्पुरुषः । ईशानश्चेति । मुद्राबन्धो विशिष्टकराङ्गुलिसन्निवेशः।

(अर्गला) हो, सुमेरु पर्वत रूपी राजा की अंशुक नामक महीन वस्त्र की उष्णीप (पगड़ी) पर बंधी हुई लंबी पाट हो, कैलास रूपी हाथी की रेशमी पताका हो, मोक्ष का मार्ग हो, सतयुग के रथ की धुरा हो। आकाश में उतरी हुई सरस्वती ने भगवान् पितामह के अपत्य हिरण्यवाह नामक महानन्द को देखा जो वरुण देवता का जैसा हार हो, जो चन्द्र पर्वत से झरता हुआ अमृत-निर्झर के समान था, जो विन्ध्य पर्वत से बहता हुआ चन्द्रकान्त मणि के प्रवाह के सदृश था, जो दण्डकारण्य के कर्पूर वृक्ष से बहते हुए कपूरी प्रवाह के समान था। दिशाओं के लावण्यरस का वह जैसे सोता था। मानों वह आकाश-लक्ष्मी के शयन के लिए गढ़ा हुआ स्फटिक का शिलापट्ट (पाटा) हो। वह महानन्द स्वच्छ, शिशिर और सुरस (स्वादिष्ट) जल से भरा था, उसे लोग शोण भी कहते हैं। शोण को देखकर सरस्वती का हृदय उसकी रमणीयता में रम गया और उसने वहीं डेरा डाला। उसने सावित्री से कहा—'सखी, इस महानद के तटवर्ती कछार में मोर मधुर ध्वनि करते हैं। वृक्षों के नीचे फूलों की रज बालू की तरह ढेर हो जाती है। फूलों की गन्ध से मतवाले

कृतमन्दाकिनीद्युतेरस्य महानदस्योपकण्ठभूमयः । पक्षपाति च हृदयमत्रैव स्थातुं मे' इति । अभिनन्दितवचना च तथेति तया तस्य पश्चिमे तीरे समवातरत् । एकस्मिंश्च शुचौ शिलातलसनाथे तटलतामण्डपे गृहबुद्धिं बबन्ध । विश्रान्ता च नातिचिरादुत्थाय सावित्र्या सार्धमुच्चितार्चनकुसुमा सस्नौ । पुलिनपृष्ठप्रतिष्ठितशिवलिङ्गा च भक्त्या परमया परब्रह्मपुरःसरां सम्यङ्मुद्राबन्धविहितपरिकरां ध्रुवागीतिगर्भामवनिपवनवनगगनदहनतपनतुहिनकिरणयजमानमयीर्मूर्तिरष्टावपि ध्यायन्ती सुचिरमष्टपुष्पिकामदात् । अयत्नोपनतेन फलमूलेनामृतरसमप्यतिशिशयिषमाणेन च स्वादिम्ना शिशिरेण शोणवारिणा शरीरस्थितिमकरोत् । अतिवाहितदिवसा च तस्मिल्लतामण्डपशिलातले कल्पितपल्लवशयना सुष्वाप । अन्येद्युरप्यनेनैव क्रमेण नक्तंदिनमत्यवाहयत् ।

ध्रुवाख्या विशिष्टा गीतिः । वनं तोयम् । यजमान उग्रः । अष्टौ पुष्पाण्येवाष्टपुष्पिका । तत्र गन्धप्रधानं पार्थिवम्, अर्घस्नानादिकं रसप्रधानमाप्यम्, प्रदीपाभरणप्रभादिरूपप्रधानं तैजसम्, अनुलेपनप्रभृति स्पर्शप्रधानं वायवीयम्, सुषिरातोद्यगीतादिकं शब्दप्रधानमाकाशीयम्, अनुध्यानं मानसम्, अस्ति सर्वत्रैवेश्वर इति निश्चयो बौद्धम्, अहमेवेश्वर इत्याहंकारिकम् । यद्वा, आसनवर्गप्रवृत्तिष्वष्टसु प्रत्येकमष्टपुष्पिका । अतिशेतुमभिभवितुमिच्छतातिशिशयिषमाणेन । स्वादिम्ना मृष्टत्वेन । शरीरस्थितिमिति । न त्वातृप्तिभोजनम् । अन्येद्युरन्यस्मिन्नहनि ।

भौंरे वीणा के समान गुञ्जार कर रहे हैं । इसके सामने मन्दाकिनी भी कुछ नहीं । मेरा हृदय भी इसी स्थान में रहने के पक्ष में है ।' सावित्री ने 'तथा' कह कर सरस्वती की बात का समर्थन किया । तब सरस्वती उसे लेकर उस महानद के पश्चिमी तीर पर उतरी । वहीं एक पवित्र शिलातल से युक्त लतामण्डप को घर मान कर ठहर गई । कुछ देर तक विश्राम करने के बाद उठी और सावित्री के साथ पूजा के फूल चुन कर स्नान किया । तब उसने नदी के किनारे रेत में बैठ कर बालू का शिवलिंग प्रतिष्ठित किया और पञ्चब्रह्म की स्तुति के अनन्तर सम्यक् प्रकार से कई मुद्राबन्ध किए और ध्रुवागीति के साथ पृथिवी, वायु, जल, आकाश, अग्नि, सूर्य, चन्द्र और यजमानमयी शिव की आठ मूर्तियों का देर तक ध्यान करती हुई आठ फूलों को अर्पित किया । किसी यत्न के बिना ही मिले हुए अमृत-रस से भी बढ़ कर मीठे फल-फूल से और शोण के ठण्डे जल से उसने शरीर की

एवमतिक्रामत्सु दिवसेषु गच्छति च काले याममात्रोद्गते च रवावुत्तरस्यां ककुभि प्रतिशब्दपूरितवनगह्वरं गम्भीरतारतरं तुरङ्गहेषितह्लादमश्रृणोत् । उपजातकुतूहला च निर्गत्य लतामण्डपाद्विलोकयन्ती विकचकेतकीगर्भपत्रपाण्डुरं रजःसङ्घातं नातिदवीयसि संमुखमपितन्तमपश्यत् । क्रमेण च सामीप्योपजायमानाभिव्यक्ति तस्मिन्महति शफरोदरधूसरे रजसि पयसीव मकरचक्रं प्लवमानं पुरः प्रधावमानेन, प्रलम्बकुटिलकचपल्लवघटितललाटजजूटकेन, धवलदन्तपत्रिकाद्युतिहसितकपोलभित्तिना, पिनद्धकृष्णागुरुपङ्ककल्कच्छुरणकृष्णशबलकषायकञ्चुकेन, उत्तरीयकृतशिरोवेष्टनेन, वामप्रकोष्ठनिविष्टस्पष्ट-

---

यामः प्रहरः । नक्तंदिवशब्देन तत्कालनिर्वर्तनीयं कर्मैव लक्ष्यते । गम्भीरश्चिरकालस्थितः । तारतरो दूरदेशश्रूयमाणः । हेषितमश्वशब्दः । तद्रूपो ह्लादो ध्वनिस्तम् । क्रमेणेत्यादावश्ववृन्दं संददर्शेति संबन्धः । शफरा मत्स्याः । तदुदरवत्तैश्च धूसरे । प्रलम्बेत्यादिना सज्जत्वमुक्तम् । कचाः । केशाः । सौकुमार्यात्पल्लवानीव । घटितललाटजूटता दक्षिणात्येषु वेषः । दन्तपत्रिका कर्णाभरणभेदः । पिनद्धो बद्धः । कृष्णागुरुणः पङ्को निघृष्टं कृष्णागुरुः, तस्य शुष्कस्य सतः कल्कश्चूर्णः, तच्छुरणात्कृष्णेन गुणेन शबलं कषायं साधिवासितं कञ्चुकं वारबाणं यस्य । उत्तरीयेत्यादिना सन्नद्धतां वर्मादिप्रसङ्गं चाह । वामेत्यनेनाश्रमिस्वभाववर्णना श्रृङ्गारिता चोक्ता ।

रक्षा मात्र के लिए अत्यल्प भोजन किया । इस प्रकार उसी लतामण्डप के शिलातल पर पत्ते की सेज बनाकर लेट गई । दूसरे दिन इसी क्रम से उसने रात-दिन गुजारे ।

इस तरह कई दिन बीत गए । समय बहुत चला गया । एक रोज एक पहर दिन चढ़ गया, तब सावित्री को उत्तर दिशा की ओर घोड़ों की हिनहिनाहट भरी आवाज सुन पड़ी वह अपने शब्दों से वन की घाटियों को भर रही थी और अत्यन्त गम्भीर एवं तीखी थी। सरस्वती के मन में कुतूहल हुआ तो लतामण्डप से निकल आई और उसने सामने थोड़ी ही दूर पर खिले हुए केवड़े के पत्तेदार गर्भ के समान सफेद उड़ती हुई धूलराशि को देखा । क्रम से जब वह और भी समीप आ गई तो मछली के पेट के समान धूसर वर्ण वाले उस धूलि-पटल में एक सहस्र प्रायः युवकों को पैदल सेना के साथ घोड़े इस तरह चलते हुए दिखाई पड़े मानों जल में झुण्ड के झुण्ड मगर तैर रहे हों । (पैदल सेना के वे हजार जवान) आगे की ओर दौड़ते आ रहे थे । उनके सिर पर लम्बे और घुँघराले बालों का बंधा हुआ जूड़ा था । उनके कपोलों पर हाथीदांत के बने पत्ते हँसी की चमक उत्पन्न कर रहे थे । वे काले अगुरु की बुँदकियों के छीटे वाले लाल रंग के कंचुक कसे हुए थे।

हाटककटकेन, द्विगुणपट्टपट्टिकागाढग्रन्थिग्रथितासिधेनुना, अनवरत-व्यायामकृतकर्कशशरीरे, वातहरिणयूथेनेव मुहुर्मुहुः खमुड्डीयमानेन, लङ्घितसमविषमावटविटपेन, कोणधारिणा, कृपाणपाणिना, सेवा-गृहीतविविधवनकुसुमफलमूलपर्णेन, 'चल चल, याहि याहि, अप-सर्पापसर्प, पुरः प्रयच्छ पन्थानम्' इत्यनवरतकृतकलकलेन युवप्रायेण, सहस्रमात्रेण पदातिजनेन सनाथमश्ववृन्दं सददर्श।

मध्ये च तस्य सार्धचन्द्रेण मुक्ताफलजालमालिना विविधरत्न-खण्डखचितेन शङ्खक्षीरफेनपाण्डुरेण क्षीरोदेनेव स्वयं लक्ष्मीं दातु-मागतेन गगनगतेनातपत्रेण कृतच्छायम्, अच्छाच्छेनाभरणद्युतीनां निवहेन दिशामिव दर्शनानुरागलग्नेन चक्रवालेनानुगम्यमानम्, आनि-

---

'प्रकोष्ठमन्तरं विद्यादरत्निमणिबन्धयोः'। हाटकं स्वर्णम्। यदेव द्विगुणाऽत एव गाढग्रन्थिसहत्वम्। ग्रथिताविस्रंसिनी। असिधेनुश्छुरिकः। वातहरिणो यो वाता-भिमुखं धावति। अवट उन्मार्गः। कोणो लगुडः।

मध्य इत्यादौ। तस्य च मध्येऽष्टादशवर्षदेशीयं युवानमद्राक्षीदिति सम्बन्धः। क्षीरोदस्याप्यर्धचन्द्रादि सर्वं योज्यम्। छाया कान्तिरपि। चक्रवालेन समूहेन।

उन्होंने अपने सिर पर चादर की पगड़ी बाँध ली थी। उनके बायें हाथ की कलाइयों में सोने के कड़े थे। उनकी कमर में कपड़े की दोहरी पेटी की मजबूत गाँठ थी और उसमें छुरी खोंसी हुई थी। निरन्तर व्यायाम करने से उनका बदन कड़ा था। हवा से बात करने वाले हिरनों की तरह वे मानों आकाश में उड़ते-चल रहे थे। वे ऊबड़-खाबड़ जमीन, खाइयों और झाड़ियों को डाँकते जाते थे। कुछ सैनिक मुँगरी या डंडे लिये थे और कुछ के हाथ में तलवारें थीं। सहायता के लिए उन्होंने बनैले फूल, फल, मूल और पत्ते ले लिये थे। 'चलो-चलो', 'जाओ जाओ', 'आगे रास्ता दो' इस तरह हमेशा शोर-गुल मचा रहे थे।

सरस्वती ने घोड़ों की उस टुकड़ी के बीच में अट्ठारह वर्ष के एक अश्वारोही युवक को देखा। अर्धचन्द्र से युक्त, मोतियों की मालाओं वाला, अनेक प्रकार के रत्नों से खचित, शंख और दूध के फेन की तरह उजला छत्र उस पर छाया कर रहा था, मानों लक्ष्मी को उसे स्वयं अर्पित करने के लिए क्षीरसमुद्र ही आकाश में लहरा रहा हो। आभूषणों की निर्मल किरणें इस तरह उसका पीछा कर रही थीं मानों उसके दर्शन के अनुराग से सारी

तम्बविलम्बिन्या मालतीशेखरस्रजा सकलभुवनविजयार्जितया रूपपताकयेव विराजमानम्, उत्सर्पिभिः शिखण्डखण्डिकापद्मरागमणेररुणैरंशुजालैरदृश्यमानवनदेवताविधृतैर्बालपल्लवैरिव प्रमृज्यमानमार्गरेणुपरुषवपुषम्, बकुलकुड्मलमण्डलीमुण्डमालामण्डनमनोहरेण कुटिलकुन्तलस्तबकमालिना मौलिना मीलितातपं पिबन्तमिव दिवसम्, पशुपतिजटामुकुटमृगाङ्कद्वितीयशकलघटितस्येव सहजलक्ष्मीसमालिङ्गितस्य ललाटपट्टस्य मनःशिलापङ्कपिङ्गलेन लावण्येन लिम्पन्तमिवान्तरिक्षम्, अभिनवयौवनारम्भावष्टम्भप्रगल्भदृष्टिपाततृणीकृतत्रिभुवनस्य चक्षुषः प्रथिम्ना विकचकुमुदकुवलयकमलसरःसहस्रसछादितदशदिशं शरदमिव प्रवर्तयन्तम्, आयतनयननदीसीमान्तसेतुबन्धेन ललाटतटशशिमणिशिलातलगलितेन कान्तिसलिलस्रोत-

---

नितम्बशब्दो मुख्यार्थः । 'पश्चान्नितम्बः स्त्रीकट्याः' इत्यमरः । शिखण्डखण्डिका चूडाभरणम् । प्रमृज्यमानेति । वर्तमानकालोऽत्र विवक्षितः । बकुलेत्यादिना निपीयमानातपतुल्यवस्तुनिदर्शः । कुन्तलः केशहस्तः, स एव स्तबकः । पुष्पस्तबकः पुष्पसंघात सहजाऽकृत्रिमा, सहोत्पन्ना च । लक्ष्मीः शोभना, श्रीश्च । लावन्यमत्र कान्तिः । अवष्टम्भो गर्वः । द्राघीयसा दीर्घतरेण । सहकारः सुगन्धद्रव्यभेदः सह

दिशाएं एकत्र होकर अनुसरण कर रही हों। मालती की शेखरस्रज उससे नितम्ब त[क] लटक रही थी, मानों वह समस्त भुवनों की विजय करने से प्राप्त रूप की पताका से विराजमान हों। शिखण्ड-खण्डिका नामक उसके शिरोभूषण में जड़ी हुई पद्मराग मणि के लाल किरणें फैल रही थीं, मानों दृष्टिपथ में न आने वाली वनदेवता बालपल्लवों द्वारा मार्ग की धूल से उसकी रूखर देह को झाड़ती हो। मौलसिरी के कुड्मलों से बनी हु[ई] मुण्डमाला से मनोहर एवं घुँघराले बालों के गुच्छों से भरे हुए अपने शिर से दिन के आतप को मन्द करता हुआ वह मानों दिन को पी रहा था। उसका ललाट शिव के ललाट के मुकुटचन्द्र के दूसरे खण्ड से मानों बना हुआ था और उसमें स्वाभाविक शोभा थी, मानों वह मनःशिला के पंकसदृश लाल-पीले अपने ललाट के लावण्य से सारे अन्तरिक्ष को लीप रहा था। वह नई जवानी के आरम्भ में गर्वीले और उद्धत दृष्टिपात करने वाले अपनी आँखों से सारे संसार को तृण के बराबर समझ रहा था, ऐसी आँखों की दीर्घता से मानों वह कुमुद, कुवलय और कमल से भरे हुए हजारों सरोवरों से समस्त दिशाओं को ढकने वाली शरद् को प्रवर्तित कर रहा था। उसका नासावंश मानों दीर्घ नयनों की नदी के सीमान्त में बनाया गया पुल का बाँध हो, या उसके ललाटरूपी चन्द्रकान्तमणि से

सेव द्राघीयसा नासावंशेन शोभमानम्, अतिसुरभिसहकारकर्पूर-कक्कोललवङ्गपारिजातकपरिमलपुचा मत्तमधुकरकुलकोलाहलमुखरेण मुखेन सनन्दनवनं वसन्तमिवावतारयन्तम्, आसन्नसुहृत्परिहास-भावनोत्तानितमुखमुग्धहसितैर्दशनज्योत्स्नास्नपितदिङ्मुखैः पुनः-पुनर्नभसि संचारिणं चन्द्रालोकमिव कल्पयन्तम्, कदम्वमुकुलस्थल-मुक्ताफलयुगलमध्याध्यासितमरकतस्य त्रिकण्टककर्णाभरणस्य प्रेङ्खतः प्रभया समुत्सर्पन्त्या कृतसकुसुमहरितकुन्दपल्लवकर्णावतंस-मिवोपलक्ष्यमाणम्, आमोदितमृगमदपङ्कलिखितपत्रभङ्गभास्वरम्, भुजयुगलमुद्दाममकराक्रान्तशिखरमिव मकरकेतुकेतोः दण्डद्वयं दधानम्, धवलब्रह्मसूत्रसीमन्तितं सागरमथनसामर्षगङ्गास्रोतःसंदा-नितमिव मन्दरं देहमुद्वहन्तम्, कर्पूरक्षोदमुष्टिच्छुरणपांशुलेनेव

कारफलेनैव क्रियते। पारिजातकोऽनेकद्रव्यसंस्कृतो मुखवासविशेषः, देववृक्षश्च। वसन्तश्चैवंविधेनैव मुखेन प्रारम्भेणोपलक्षितो भवति। रत्नत्रितयेन कृतं त्रिकोण-कण्टकाख्यं कर्णाभरणम्। मृगमदः कस्तूरिका। संदानितं बद्धम्। वेष्टितमित्यर्थः। कुचावत्र कान्तासंबन्धिनादेय चक्रवाकयुगलं तस्य कृते पुलिनसदृशम्। कोणः पल्लवः। पृष्ठतः पश्चाद्भागे कक्ष्यायाः परिवलनादधिकस्तुतिरित्युक्तः। क्षिप्तो लम्ब-

---

शिलातल से चू कर बहता हुआ कान्ति का प्रवाह हो, ऐसे वह अपने नासावंश से सुशो-भित था। सहकार, कर्पूर, काक्कोल, लवङ्ग और पारिजातक इन पाँच सुगन्धित पदार्थों की गन्ध उसके मुख से निकल रही थी, उस पर मतवाले भौंरे गुंजार रहे थे, मानों वह चन्दन वन के सहित वहाँ वसन्त को उतार रहा था। वह जब कभी अपने पास के मित्रों के साथ परिहास की भावना से मुँह ऊँचा करके हँसता था तो समस्त दिशाएँ उसके दांतों की चाँदनी में धुल जाती थी और मानों वह आकाश में बार-बार संचरण करने वाले चन्द्रा-लोक का निर्माण कर रहा था। उसके कान में त्रिकंटक नाम का गहना था, जो कदम्ब के कुड्मल के समान दो स्थूल मोतियों के बीच में पन्ने का जड़ाव करके बनाया गया था, ऐसे त्रिकंटक की प्रभा फैल रही थी, मानों उस युवक ने फूल के सहित कुन्द के हरे पल्लवों को कर्णावतंस बना लिया हो। सुगन्धित कस्तूरी के पंक की बनी हुई पत्ररेखाओं से उसके दोनों हाथ चमक रहे थे, मानों कामदेव की पताका के बड़े-बड़े मकरों से आक्रान्त शिखर वाले दो डंडे हों। मानों समुद्रमंथन से क्रुद्ध गंगा की धाराओं से जकड़े हुए मन्दराचल के समान श्वेत यज्ञोपवीत से वेष्टित शरीर को वह धारण कर रहा था।

कान्तोच्चकुचचक्रवाकयुगलविपुलपुलिनेनोरःस्थलेन स्थूलभुजायाम-पुञ्जितम्, पुरो विस्तारयन्तमिव दिक्चक्रम्, पुरस्तादीषदधोनाभि-निहितकक्कोणकमनीयेन पृष्ठतः कक्ष्याधिकक्षिप्तपल्लवेनोभयतःसंवलन-प्रकटितोरुत्रिभागेन हारीतहरिता निबिडनिपीडितेनाधरवाससा विभज्यमानतनुतरमध्यभागम्, अनवरतश्रमोपचितमांसकठिनविकट-मकरमुखसंलग्नजानुभ्यामतिविशालवक्षःस्थलोपलवेदिकोत्तम्भनशिलास्त-म्भाभ्यां चारुचन्दनस्थासकस्थूलतरकान्तिभ्यामुरुदण्डाभ्यामुप-हसन्तमिवैरावतकरायामम्, [1]अतिभरितोरुभारवहनखेदेनेव तनु-तरजङ्घाकाण्डम्, कल्पपादपपल्लवद्वयस्येव पाटलस्योभयपार्श्वाव-

---

मानः पल्लवो यस्य तत् । संवलनं संकोचनम् । हारीतः पक्षिभेदः । हरिता नीलेन । मकरमुखं जानुनोरुपरिभाग । उत्तम्भनं धारणम् । स्थासकश्चन्द्रकः । आयामो दैर्घ्यम् । न केवलमायामं शुक्लत्वमप्युपहसन्तम् । धर्मयोरेकनिर्देशोऽन्यसंवित्साह-चर्यात् । 'अतिभरितोरुभारवहनेन' इति पाठः । ऊरू एव भारः । प्रशस्ता जङ्घा

कर्पूर के चूर्ण की मूंठों से धूसरित उसकी छाती कान्ता के ऊँचे स्तन रूपी चक्रवाक युगल के लिए चौड़ी रेतीली जमीन थी, ऐसी छाती से वह मानों अपनी स्थूल भुजाओं के आयात में पुञ्जीभूत दिशाओं को फैला रहा था। हारीत पक्षी के समान नील वर्ण का कस कर बँधा हुआ अधोवस्त्र उसकी पतली कमर को विभाजित कर रहा था, सामने की ओर नाभि से कुछ नीचे उसका एक कोना बहुत अच्छा लग रहा था, उस अधोवस्त्र का कच्छ भाग पीछे की ओर पल्ला खोंसने के बाद भी कुछ ऊपर निकला रहता था। दोनों ओर शरीर के मोड़ने से दाहिनी जांघ का कुछ भाग दिखाई दे जाता था। वह अपने ऊरुदण्डों से ऐरावत की सूँड़ का मानों उपहास कर रहा था, दोनों जांघों का मांस हमेशा व्यायाम करते रहने से बढ़ गया था, वे ऐसी लगती थीं मानों कठिन और विकट मगर के मुख में फँस गई हों, वे चौड़ी छाती के चबूतरे को धारण करने के लिए शिलास्तम्भ थीं। चन्दन के सुंदर थप्पे से उसकी जाँघों में कान्ति और भी निखर उठी थी। हद से ज्यादा उभरी हुई जाँघों के भार-वहन करने से खिन्न होकर मानों उसकी टाँगें पतली हो रही थीं। कल्पवृक्ष के दो पल्लवों के समान ललछहूं रंग के दोनों ओर लटकते हुए पैरों के नखों की किरणें डोलती हुई मानों घोड़ों का चामरमाला नामक अलंकार बना रही थीं।

---

१. अतिभरितोरुभागभर।

लम्बिनः पादद्वयस्य दोलायमानैर्नखमयूखैरश्वमण्डनचामरमालामिव रचयन्तम्, अभिमुखमुच्चैरुदञ्चद्भिरतिचिरमुपरिविश्राम्यद्भिरिव वलितविकटं पतद्भिः खुरैः खण्डितभुवि प्रतिक्षणदशनविमुक्तखणखणायितखरखलीने दीर्घघ्राणलीनलालिके ललाटलुलितचारुचामीकरचक्रमे शिञ्जानशातकौम्भायानशोभिनि मनोरंहसि गोलांगूलकपोलकालकायलोम्नि नीलसिन्धुवारवर्णे वाजिनि महति समारूढम्, उभयतः पर्याणपट्टश्लिष्टहस्ताभ्यामासन्नपरिचारकाभ्यां दोधूयमानधवलचामरिकायुगलम्, अग्रतः पठतो वन्दिनः सुभाषितमुत्कण्टकितकपोलफलकेन लग्नकर्णोत्पलकेसरपक्ष्मशकलेनेव मुखशशिना भावयन्तम्। अनङ्गयुगावतारमिव दर्शयन्तम्, चन्द्रमयीमिव सृष्टिमुत्पादयन्तम्, विलास-

---

जङ्घाकाण्डम्। कल्पपादपसम्बन्धितया न केवलं लौहित्यं सौकुमार्याद्युच्यते। यावत्सकलसंपत्फलप्रदत्वादिप्रकर्षान्तिरम्। अतिचिरमित्यादिनानाकुलत्वमुच्यते। यदुक्तम्—'आवृताः कुञ्चिताः स्थूलदलपाल्यग्रसंस्थिताः। विवर्ज्याश्चाकुलपदन्यासेन गमनेन च ॥' इति विकटं चित्रम्। खुरैरिति। तद्व्यापारवैचित्र्याद्बहुत्वमग्रिमयोरेव। एवंविधसंनिवेशसंभवात्। खलीनं कविका। लालिका कविकाशेखरम्। आयानं हयमण्डनमाला। गोलांगूलः कृष्णमुखो वानरः। नीलेत्यादौ कुमुदकुन्दमृणालगौर इत्यादिवन्न पौनरुक्त्यम्। महतीति। उक्तं च—'सर्वलक्षणहीनोऽपि महाकायः प्रशस्यते' इति। आसन्नेत्यनेन विश्वसनीयत्वमुक्तम्। अनङ्गयुगेति। अनङ्गजन्मना यदुपलक्षितं युगं कालविशेषस्तस्य नूतनमदसादृश्यात्। यद्वा—अनङ्गयोर्युगं तद-

---

मन के समान वेग वाले, लंगूर के मुँह की तरह काले रोंगटे वाले सिन्धुवार जैसे नीले, तगड़े घोड़े पर वह सवार था। वह घोड़ा अपने खुरों से जो सामने देर तक उठे रह जाते और विकट रूप में टेढ़े होकर गिरते, जमीन को छोड़ रहा था। वह काँटेदार लगाम को प्रतिक्षण अपने दाँतों से छोड़ता तो खड़-खड़ आवाज होती। घोड़े की नाक पर सामने की ओर लगाम का कमानीदार हिस्सा और माथे पर सोने का पदक झूल रहा था। आवाज करती हुई सुवर्ण की आयान नामक माला से वह घोड़ा सुशोभित हो रहा था। अपने अश्व के पलान का एक हाथ से सहारा लेकर उसके दोनों ओर दो आसन्न परिचारक चँवर झल रहे थे। आगे आगे जो बन्दीजन सुभाषित पाठ कर रहा था उसे सुन कर उसके मुखचन्द्र के दोनों कपोलभाग रोमाञ्चित हो रहे थे मानों उसके कर्णोत्पल का पराग झर गया

प्रायमिव जीवलोकं जनयन्तम्, अनुरागमयमिव सर्गान्तमारच यन्तम्, शृङ्गारमयमिव दिवसमापादयन्तम्, रागराज्यमिव प्रवर्त यन्तम्, आकर्षणाञ्जनमिव चक्षुषोः, वशीकरणमन्त्रमिव मनसः स्वस्थावेशचूर्णमिवेन्द्रियाणाम्, असंतोषमिव कौतुकस्य, सिद्धयोग मिव सौभाग्यस्य, पुनर्जन्मदिवसमिव मन्मथस्य, रसायनमिव यौव नस्य, एकाराज्यमिव रामणीयकस्य, कीर्तिस्तम्भमिव रूपस्य, मूल कोशमिव लावण्यस्य, पुण्यकर्मपरिणाममिव संसारस्य, प्रथमांकुर मिव कान्तिलतायाः, सर्गाभ्यासफलमिव प्रजापतेः, प्रतापमिः विभ्रमस्य, यशःप्रवाहमिव वैदग्ध्यस्य, अष्टादशवर्षदेशीयं युवानम् द्राक्षीत् ।

वतारमिव । द्वित्वासंख्यापूर्वकत्वात् । चन्द्रमयीमिवेति कान्तिमयत्वेन । आक र्षणाञ्जनं वशीकरणार्थं कज्जलम् । असंतोषमिवेति । यस्यैनं प्राप्य कौतुकं निर्वतते, तस्य संतोष एव नास्ति । केषांचिदेव द्रव्याणां संवन्धो यो न कद चित्कार्ये व्यभिचरति स सिद्धयोगः । सौभाग्यं तावत्सर्वं किंचन वशीकुरुते, ए चास्य तदेव सिद्धयोग इव तदाश्रयणेन निःशेषलोकवशीकरणक्षमत्वम् जन्मदिवः मिति । तद्गोचरपतितानां कामोत्पत्तेः । रसायनमिवेति । यथा रसायनवशात्क त्परिपूर्णश्च स्थिरश्च भवति, तद्वदेतदाश्रयेण यौवनम् । ईषदसमाप्तोऽष्टादशवर्षोऽष्ट दशवर्षदेशीयस्तम् । न परेण संश्लिष्टस्तुरङ्गो यस्य तम् । तधीचस्य तु पर्या श्लिष्टाद्युक्तम् । परिणतवयस्त्वेन सत्यवादिना सावित्रीसरस्वत्यौ प्रति च विस्म कारित्वमुच्यते । अन्यथोपक्रम एव संभाषणमात्रं न प्रवर्तते ।

हो । मानों वह अनङ्ग युग का अवतार दिखला रहा था, सारी सृष्टि को चन्द्रमय बना र था, सारे प्राणिलोक को विलासमय कर रहा था, राग के राज्य का प्रवर्तन कर रहा थ मानों वह नेत्र रूप आकर्षणाञ्जन, मन का वशीकरणमंत्र, इन्द्रियों को विवश करने व चूर्ण, कुतूहल का असन्तोष, सौभाग्य का सिद्धियोग, कामदेव का पुनर्जन्मदिन, यौ का रसायन, सौन्दर्य का एकच्छत्र राज्य, रूप का कीर्तिस्तम्भ, लावण्य का मूल को संसार के सारे पुण्यकर्मों का परिणाम, कान्ति रूपी लता का पहला अंकुर, ब्रह्मा के सृष्टिनिर्माण के अभ्यास का फल-स्वरूप, विभ्रम का प्रताप और वैदग्ध्य का य प्रवाह था ।

पार्श्वे च तस्य द्वितीयमपरसंश्लिष्टतुरङ्गम्, प्रांशुमुत्तप्ततपनीयस्तम्भाकारम्, परिणतवयसमपि व्यायामकठिनकायम्, नीचनखश्मश्रुकेशम्, शुक्तिखलतिम्, ईषत्तुन्दिलम्, रोमशोरःस्थलम्, अनुल्वणोदारवेषतया जरामपि विनयमिव शिक्षयन्तम्, गुणानपि गरिमाणमिवानयन्तम्, महानुभावतामपि शिष्यतामिवानयन्तम्, आचारस्याप्याचार्यमिव कुर्वाणम्, वलक्षवारबाणधारिणम्, धौतदुकूलपट्टिकापरिवेष्टितमौलिं पुरुषम् ।

अथ स युवा पुरोयायिनां यथादर्शनं प्रतिनिवृत्यातिविस्मितमनसां कथयतां पदातीनां सकाशादुपलभ्य दिव्याकृति तत्कन्यायुगलमुपजातकुतूहलः प्रतूर्णंतुरगो दिदृक्षुस्तं लतामण्डपोद्देशमाजगाम । दूरादेव

शुक्तिखलतिं शुक्लाकारखल्वाटम् । तुन्दिलं लम्बोदरम् । अत एवास्य विकुक्षिरिति नाम । अनुल्वणोऽनुद्धतः । उदारः श्रेष्ठः । जरामिति । जरा किल सर्वं विनयं शिक्षयति । महानुभावता महाशयता । अनुभावयति कार्यमकार्यं वा बोधयतीत्यनुभावः । शिष्यतामिति । परशासनदक्षकर्म महानुभावतया तत एवावसोयत इत्युक्तं भवति । आचारः शास्त्रकारप्रदर्शिता विशिष्टा नीतिः । स च सर्वस्मिन्नाचार्यकमवलम्बते । संस्कारातिशयमापादयतीत्यर्थः । बलक्षः शुक्लः । वारबाणः कञ्चुकः । मौलयः केशाः ।

अथेति । ननु गतागतिकतया सर्वचेतनाभिप्रायेण सौन्दर्यमेतयोरभिव्यज्यते । प्रतिनिवृत्य न पुनः प्रसङ्गत उपेत्य । कन्यकात्वादेतन्नानुचितम् । प्रपूर्णो वेगगामी ।

उस नवयुवक के बगल में एक दूसरे पुरुष को देखा । वह भी दूसरे घोड़े पर सवार था। उसका कद लम्बा था । उसकी आकृति तपे हुए सोने के खम्भे के समान था। अवस्था अधेड़ होने पर भी उसका शरीर व्यायाम से गँठा हुआ था । उसके दाढ़ी, मूँछ और नाखून साफ-सुथरे कटे हुए थे। बाल झड़ जाने से बिलकुल सितुहे-जैसा लगता था । उसकी तोंद निकल आई थी । छाती में बाल जम गए थे, वेप सौम्य और श्रेष्ठ था, मानो वह अपनी वृद्धावस्था को भी विनय की सीख दे रहा था, गुणों में भी गौरव भर रहा था, महानुभावता को भी शिष्य बना रहा था, आचारों का भी आचार्य हो रहा था। वह उज्ज्वल कंचुक पहने हुए और सिर में धुली हुई दुकूलपट्टिका बाँधे हुए था ।

वह युवक देखकर लौटे हुए अग्रगामी पैदल सैनिकों से दिव्य आकृति वाली दो कन्याओं के विषय में सुनते ही कुतूहल से भर कर देखने के लिए उत्सुक हो घोड़े को तेज कर

च तुरगादवततार। निवारितपरिजनश्च तेन द्वितीयेन साधुना सह चरणाभ्यामेव सविनयमुपससर्प। कृतोपसंग्रहणौ तौ सावित्री समं सरस्वत्या किसलयासनदानादिना सकुसुमफलार्घ्यावसानेन वनवासोचितेनातिथ्येन यथाक्रममुपजग्राह। आसीनयाश्च तयोरासीना नातिचिरमिव स्थित्वा तं द्वितीयं प्रवयसमुद्दिश्यावादीत्—'आर्य, सहजलज्जाधनस्य प्रमदाजनस्य प्रथमाभिभाषणमशालीनता, विशेषतो वनमृगीमुग्धस्य कुलकुमारीजनस्य। केवलमियमालोकनकृतार्थाय चक्षुषे स्पृहयन्ती प्रेरयत्युदन्तश्रवणकुतूहलिनी श्रोत्रवृत्तिः। प्रथम-दर्शने चोपायनमिवोपनयति सज्जनः प्रणयम्। अप्रगल्भमपि जनं प्रभवता प्रश्रयेणार्पितं मनो मध्विव वाचालयति। अयत्नेनैवातिनम्रे साधौ धनुषीव गुणः परां कोटिमारोपयति विस्रम्भः। जनयन्ति च विस्मयमतिधीरधियामप्यदृष्टपूर्वा दृश्यमाना जगति स्रष्टुः सृष्टयति-

---

साधुना विनीतेन। 'उपसंग्रहणं धीराः कथयन्त्यभिवादनम्।' आतिथ्यमेवोप-जग्राहापूजयत्। 'प्रवयाः स्यात्परिणतः' अशालीनता धृष्टता। वनशब्देन मृगी-सामान्येऽपि जनसंपर्काद्यभावमाह। उपायनं ढौकनिका। उपनयति ढौकयति। प्रगल्भमित्यादि। मनःकर्तृ अप्रगल्भमपि जनं वाचालयति। कीदृशम्? प्रभवता स्वामिना प्रश्रयेण प्रत्यर्पितं दत्तमेवंविधमस्मदीयं युष्मासु मन इति बहिः प्रकाशितं यश्च परतश्च केनापि प्रभावशीलेन ढौकितं मध्वप्रगल्भमपि जनं कुलयोषित्प्रायं

उस लतामण्डप के समीप पहुँच गया। कुछ ही दूर पर घोड़े से उतर गया। अपने और साथियों को उसने रोक दिया और उस सज्जन पार्श्वचर को साथ लेकर पैदल ही विनीत भाव से आया। सरस्वती के साथ सावित्री ने उन दोनों का अभिवादन किया और वन-वास के योग्य फूल एवं अर्घ्य आदि से उनका क्रम से आतिथ्य-सत्कार किया। दोनों पूर्ण रूप से स्थिर हुए तो वह स्वयं बैठी और कुछ ही देर ठहर कर उस दूसरे वृद्ध सज्जन से बोली—'आर्य, सहजलज्जाशील नारियों का पहले पहल बोल बैठना बड़ी धृष्टता है, विशेष कर तो उनका जो वन्य मृगी की भाँति मुग्ध कुलकुमारियाँ हैं। आँखें तो देखकर कृतार्थ हो गईं, पर केवल कर्णेन्द्रिय की वृत्ति वृत्तान्त सुनने के लिए कुतूहल से प्रेरित कर रही है। प्रथम दर्शन में ही सज्जन व्यक्ति उपहार के रूप में प्रणय को समर्पित करता है। प्रभावशाली विनय से अर्पित किया हुआ मन मद्य के समान अधृष्ट जन को भी वाचाल बना देता है। अत्यन्त नम्र स्वभाव वाले सज्जन में बिना यत्न के ही विश्वास

शयाः । यतस्त्रिभुवनाभिभावि रूपमिदमस्य महानुभावस्य । सौजन्यपरतन्त्रा चेयं देवानांप्रियस्यातिभद्रता कारयति कथां न तु युवतिजनसहोत्था तरलता । वत्कथयागमनेनापुण्यभाक्कतमो विजृम्भितविरहव्यथः शून्यतां नीतो देशः ? क्व वा गन्तव्यम् ? को वायमपहृतहरहुंकाराहंकारोऽपर इवानन्यजो युवा ? किंनाम्नो वा समृद्धतपसः पितुरयममृतवर्षी कौस्तुभमणिरिव हृतेर्हृदयमाह्लादयति ? का चास्य त्रिभुवननमस्या विभातसंध्येव महतस्तेजसो जननी ? कानि वास्य पुण्यभाञ्जि भजन्त्यभिख्यामक्षराणि ? आर्यपरिज्ञानेऽप्ययमेव क्रमः कौतुकानुरोधिनो हृदयस्य' इत्युक्तवत्यां तस्यां प्रकटितश्रयोऽसौ

वाचालयति किंचन जल्पयति । अत्रापि प्रश्रयेणेति साभिप्रायम् । तथा च—'अन्यंयान्यवनितागतचित्तं चित्तनाथमभिशङ्कितवत्या । पीतभूरिसुरयापि न मोदे निर्वृतिर्हि मनसो मदहेतोः ॥' इत्युक्तम् । नम्रे प्रह्वे, कुब्जे च । गुणो विनयादिः, ज्या च । कोटिः प्रकर्षः, धनुःशिखा च । देवानांप्रियस्येति पूजावचनम् । षष्ठ्या अलुक् । अत्रागमनेत्यादिना ब्रह्मोक्तशापबुद्धया दधीचस्य तद्भर्तृयोग्यतया कतम इति देशोत्कर्षंकुलादिकं पृच्छति । कस्येति । देवस्य । सिद्धा देवाः । अनन्यजः कामः । महतस्तेजस इति । महच्च तेजः सूर्याख्यम् । अभिख्या नाम । अयमेव क्रम इति । यथास्योत्पात्त्यादिकं तद्वद्भवतोऽपीत्यर्थः । कला उपायः । भूरिति रेफान्तो भूवाची ।

अधिक हो जाता है, जैसे धनुष के अग्रभाग तक उसका गुण बढ़ जाता है । पहले कभी नहीं देखे गए फिर देखे जाने वाले विधाता के उत्कृष्ट निर्माण और लोगों में अत्यन्त आश्चर्य को उत्पन्न कर देते हैं । बात यह है कि इन महानुभावों का रूप त्रिभुवन को अभिभूत कर देने वाला है । देवानांप्रिय की सौजन्य से भरी यह अतिभद्रता ही मुझे बोलने के लिए तत्पर कर रही है, युवतियों में स्वभावतः होने वाली चंचलता नहीं । तो कहिए इन्होंने किस पुण्यहीन देश को अपनी विरह-व्यथा के द्वारा सूना कर दिया है । ये कहाँ जाँयगे ? ये मानों दूसरे कामदेव हैं जो शिव के हुँकारजनित अहंकार को न मानकर उत्पन्न हो गया है । कौन हैं ये ? बढ़ी हुई तपस्या वाले किस पिता के अमृतवर्षी-स्वभाव से ये हृदय को आह्लादित करते हैं जैसे कौस्तुभमणि विष्णु के हृदय को ? त्रिभुवन द्वारा नमन करके योग्य और महान् तेजस्वी को उत्पन्न करने वाली प्रभात की सन्ध्या कौन इनकी जननी है ? कौन से पुण्यवान् अक्षर इनके नाम में जुटते हैं ! आर्य के सम्बन्ध में जानने के लिए इस कुतूहल भरे हृदय के प्रश्न क्रमशः ये ही हैं ।' सावित्री के इतना पूछने पर विनय

प्रतिव्याजहार—'आयुष्मति, सतां हि प्रियंवदता कुलविद्या। न केवल माननं हृदयमपि च ते चन्द्रमयमिव सुधाशीकरशीतलैराह्लादयति वचोभिः। सौजन्यजन्मभूमयो भूयसा शुभन सज्जननिर्माणशिल्पकल इव भावदृश्यो दृश्यन्ते। दूरे तावदन्योन्यस्याभिलपनमभिजातैः सह दृशोऽपि मिश्रीभूता महतीं भूमिमारोपयन्ति। श्रूयताम्—अयं खलु भूषणं भार्गववंशस्य भगवतो भूर्भुवःस्वस्त्रितयतिलकस्य, अदभ्रप्रभाव स्तम्भितजम्भारिभुजस्तम्भस्य, सुरासुरमुकुटमणिशिलाशयनदुर्ललितपादपङ्केरुहस्य, निजतेजःप्रसरप्लुष्टपुलोम्नश्च्यवनस्य बहिर्वृत्ति जीवितं दधीचो नाम तनयः। जन्यन्यस्य जितजगतोऽनेकपार्थिव सहस्रानुयातस्य शर्यातस्य सुता राजपुत्री त्रिभुवनकन्यारत्नं सुकन्या नाम। तां खलु देवीमन्तर्वत्नीं विदित्वा वैजनने मासि प्रसवाय पित

भुव इति रेफान्तः पातालवाची। भूश्च भुवश्च स्वश्च भूर्भुवःस्वः, एषां त्रयमिति समासः। अदभ्रोऽनल्पः। जम्भारिरिन्द्रः। स ह्यश्विभ्यां यज्ञभागभुजौ कुर्वाणमिति चिरं प्रार्थितः। तथेति प्रतिपद्य ताभ्यां भागं ददन्निन्द्रेणोद्यतवज्रेण रोषितः। तत स्तेनास्य सवज्रः स्तम्भितो भुज इति। दुर्ललितोऽलभ्यविषयः। प्लुष्टपुलोम्न इति अनवरतं रुदत्या दुहितरि कोपान्मात्रा गृहाणेमामित पुलोम्नो राक्षसस्योक्तम् ततस्तां प्रतिगृह्य तत्रैव स्थापयित्वा क्वापि गते रक्षसि सा भृगुणा विवाहिता। तत

प्रकट करते हुए पार्श्वचर ने उत्तर दिया—'आयुष्मती, प्रिय बोलना तो सज्जनों की कुलविद्या है। केवल तुम्हारा मुख ही नहीं, प्रत्युत हृदय भी चन्द्रमय है, क्योंकि वह अमृत के शीतल फुहारों के सदृश वचनों से आह्लादित कर रहा है। आपके सदृश लोग जो सौजन्य के जन्मभूमि हैं बड़े ही शुभकर्मों से मिलते हैं, क्योंकि वे सज्जनों के निर्माण की शिल्पविधि के स्वरूप हैं। ऐसे कुलीन लोगों के साथ परस्पर बातचीत करना तो दूर है, इनके साथ आँखें ही मिलाकर गौरव की स्थिति में पहुँचा देती हैं। तो सुनिए—यह भार्गववंश के कुलभूषण, महर्षि च्यवन का बहिश्चर प्राण पुत्र दधीच है, इसके पिता भगवान च्यवन पृथिवी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग लोक में प्रसिद्ध हैं। उन्होंने अपनी तपस्या के प्रभाव से इन्द्र की भुजशक्ति को भी स्तम्भित कर दिया है। उनके चरण-कमल सुर-असुरों की मुकुटमणि पर शयन के शौकीन हैं। अपने तेज से उन्होंने पुलोमा नामक दैत्य को भस्म कर डाला है। ऐसे पिता के पुत्र इस दधीच की जननी का नाम सुकन्या है जो जगद्विजयी सहस्रों नृपतियों से अनुगत शर्यात की सुता, राजपुत्री एवं त्रिभुवन की कन्याओं में रत्न के समान है। देवी सुकन्या को गर्भिणी जान उसके पिता दसवें महीने में प्रसव के लिए

पत्युः पार्श्वात्स्वगृहमानाययत। असूत च सा तत्र देवी दीर्घायुषमेनम्। अवर्धतानेहसा च तत्रैवायमानन्दितज्ञातिवर्गो बालस्तारकराज इव राजीवलोचनो राजगृहे। भर्तृभवनमागच्छन्त्यामपि दुहितरि नासेचनकदर्शनमिमममुञ्चन्मातामहो मनोविनोदनं नप्तारम्। अशिक्षतायं तत्रैव, सर्वा विद्याः सकलाश्च कलाः। कालेन चोपारूढयौवनमिममालोक्याहमिवासावप्यनुभवतु मुखकमलावलोकनानन्दमस्येति मातामहः कथंकथमप्येनं पितुरन्तिकमधुना व्यसर्जयेत्। मामपि तस्यैव देवस्य सुगृहीतनाम्नः शर्यातस्याज्ञाकारिणं विकुक्षिनामानं भृत्यपरमाणुमवधारयतु भवती। पितुः पादमूलमायान्तं मया साभिसारमकरोत्स्वामी। तद्धि नः कुलक्रमागतं राजकुलम्। उत्तमानां च चिरंतनता जनयत्यनुजीविन्यपि जने कियन्मात्रमपि मन्दाक्षम्। अक्षीणः खलु दाक्षिण्यकोशो महताम्। एतश्च गव्यूतिमात्रमिव

सगर्भा सती पुलोम्नागत्यापह्रियमाणतया च्यवनं गर्भमत्याक्षीत्। तेन चान्वर्थनाम्ना तद्रक्षो दृष्ट्वैवादह्यत। अन्तर्वत्नी गर्भिणीम्। वैजनने मासि प्रसवमासे। दीर्घायुषमिति साभिप्रायम्। रूपकुलाद्युत्कर्षे वर्णिते सत्येतदेव वरगुणवर्णनमवशिष्यते। अनेहसा परिपूर्णेन कालेन। 'न जायते यत्र तृप्तिस्तदासेचनकं विदुः'। नप्तारं पौत्रम्। साभिसारं ससहायम्। मन्दाक्षमुपरोधम्। गव्यूतिः क्रोशद्वयम्।

पति के पास से अपने घर ले गए। वहाँ उसने चिरंजीवा इस दधीच को उत्पन्न किया। राजा के घर में राजीवलोचन यह चन्द्रमा के समान बांधवों को आनन्दित करता हुआ समय के साथ बढ़ा। पुत्री सुकन्या अपने पति के घर आने लगी, तब भी नाना ने नेत्र के सुखद और मन बहलाने वाले नाती को नहीं छोड़ा। इसने ननिहाल में ही समस्त विद्याओं ओर कलापों की शिक्षा प्राप्त की। समय से इसे जवान देख और 'मेरे समान इसके पिता भी उसके मुखकमल को देखकर आनन्द का अनुभव करें, वह सोच इसके नाना ने किसी-किसी प्रकार पिता के पास भेजा है। उन्हीं सुगृहीतनामा देव शर्यात का आज्ञाकारी विकुक्षि नामक एक तुच्छ भृत्य मुझे समझें। मेरे मालिक ने पिता के पास आते हुए इसके साथ मुझे लगा दिया। वह राजकुल मेरी वंशपरम्परा द्वारा सेवित है। सम्बन्ध के पुराने हो जाने पर उत्तम लोग अपने भृत्य के प्रति कुछ लज्जा का अनुभव करते हैं। महान् लोगों की उदारता का भण्डार कभी नहीं घटता। यहाँ से दो कोस आगे सोन पार भगवान् च्यवन का निवास च्यवनाश्रम है, जो चैत्ररथ नामक कुबेर के उद्यान के सदृश है। हम दोनों की यात्रा वहीं तक है। यदि आप दोनों का

पारेशोणं तस्य भगवतश्च्यवनस्य स्वनाम्ना निर्मितव्यपदेशं च्यावनं नाम चैत्ररथकल्पं काननं निवासः। तदवधिरेवेयं नौ यात्रा। यदि च वो गृहीतक्षणं दाक्षिण्यमनवहेलं वा हृदयमस्माकमुपरि भूमिर्वा प्रसादानामयं जनः श्रवणार्हो वा, ततो न विमाननीयोऽयं नः प्रथमः प्रणयः कुतूहलस्य। वयमपि शुश्रूषवो वृत्तान्तमायुष्मत्योः। नेयमाकृतिर्दिव्यतां व्यभिचरति। गोत्रनामनी तु श्रोतुमभिलषति नौ हृदयम्। तत्कथय कतमो वंशः स्पृहणीयतां जन्मना गीतः। का चेयमत्रभवती भवत्याः समीपे समवाय इव विरोधिनां पदार्थानाम्। तथा हि, सन्निहितबालान्धकारा भास्वन्मूर्तिश्च, पुण्डरीकमुखी हरिणलोचना च, बालातपप्रभाधारा कुमुदहासिनी च, कलहंसस्वना समुन्नतपयोधरा च, कमलकोमलकरा हिमगिरिशिलापृथुनितम्बा च,

---

यात्रा प्रस्थानम्। गोत्रं वंशः। समवाय एकत्रस्थितिः। वालेषु केशेष्वन्धकारं तम इति यस्या बालं प्रत्यग्रम्। भास्वती मूर्तिमती, भास्वत आदित्यस्य च मूर्तिः। न कदाचित्सन्निहितबालान्धकारा भवतीति विरोधः। पुण्डरीकं सद्मम्, सिंहश्च यस्या मुखं तत्र कथं हरिणस्य लोचने स्त इति विरोधः। पयोधरौ स्तनौ, मेघाश्च पयोधराः। कलहंसानां स्वनो यस्यां सा। सरित्कथं प्रावृड् भवतीति विरोधः। करो हस्तः, रश्मिश्च। शिला वातवच्चीभूतं हिमम्। यत्र च हिमगिरिशिलाभिः पृथुर्मध्यभागस्तत्र कथं पद्मकोमलकान्तिः। हिमस्पर्शे पद्मनाशात्। 'मणिबन्धादा-

---

हमारे ऊपर क्षणिक सौजन्य है या हृदय में किसी प्रकार की अवज्ञा नहीं, या यह जन प्रसाद को प्राप्त करने योग्य है तो हमारे कूतूहल का पहला प्रणय उपेक्षा के योग्य नहीं। आप दोनों का वृत्तान्त हम सुनना चाहते हैं। यह आकृति दिव्य जन की ही हो सकती है। हम दोनों का हृदय आपके गोत्र, नाम सुनना चाहता है। तो कहिए—किस वंश को आपने जन्म लेकर स्पृहणीय बनाया? आपके समीप यह कौन है जो बहुत से विरोधी पदार्थों के समवाय की भाँति लग रही है। जैसा कि इनके बाल अन्धकार के समान सन्निहित है, फिर भी सूर्य के समान इनकी मूर्ति देदीप्यमान है। पुण्डरीक (व्याघ्र या श्वेत कमल) के समान इनका मुख है (फिर भी) आखें हरिण के समान हैं। उगते हुए सूर्य की प्रभा के समान इनका अधर है (फिर भी) कुमुद के सदृश इनकी मुसकान है। मतवाले हंस के समान इनकी आवाज है (फिर भी) इनके पयोधर (स्तन या मेघ) उठे हुए हैं। कमल के समान कोमल इनके हाथ हैं (फिर भी) हिमालय की चट्टान के समान मोटे इनके नितम्ब हैं। ऊँट के समान इनकी दोनों जाघें हैं (फिर भी)

करभोरुर्विलम्बितगमना च, अमुक्तकुमारभावा स्निग्धतारका च' इति।

सा त्वभ्यवादीत्—'आर्य, श्रोष्यसि कालेन। भूयसो दिवसानत्र स्थातुमभिलषति नौ हृदयम्। अल्पीयांश्चायमध्वा। परिचय एव प्रकटीकरिष्यति। आर्येण न विस्मरणीयोऽयमनुषङ्गदृष्टो जनः' इत्यभिधाय तूष्णीमभूत्। दधीचस्तु नवाम्भोभरगभीराम्भोधरध्वाननिभया भारत्या नर्तयन्वनलताभवनभाजो भुजंगभुजः सुधीरमुवाच—'आर्य,

---

कनिष्ठं करस्य करभो बहिः' करभश्चोष्ट्रः। विलम्बितं सविलासम्, लम्बितश्च करभो यस्याः। करभोरुः कथं विगतकरभगमनेति विरोधः। कुमारभावो बाल्यम्, कुमारे च भावो भक्तिः। स्निग्धो रम्यः, प्रतीतश्च। तारकाक्ष्णोः कनीनिका, दैत्यभेदश्च तारकः स्कन्देन यो हतः।

परिचयः संस्तवः। अनुषङ्गः प्रसङ्गः। विकुक्षिप्रार्थितयापि सावित्र्या कौतुकनिवृत्तिर्मा भूदित्यात्मस्वरूपं नोक्तम्। अत एवोत्तरत्र तदनुबन्ध एवोक्तः—भूयसी दिवसानित्यादिना। स्वरूपोक्तौ च ज्ञातसरस्वतीकत्वेनापत्यजननकार्यभङ्गो भवेत्। भारती वाक्। भुजङ्गभुजो मयूरान्, भुजग इव भुजावस्येति च। उच्च-

---

चाल धीमी चलती है। कुमारभाव (बाल्यकाल या कार्तिकेय का भाव) इन्होंने नहीं छोड़ा है (फिर भी) इनकी आँखों के तारक (पुतले या तारकासुर) स्नेह को व्यंजित कर रहे हैं।'†

सावित्री ने कहा—'आर्य! समय से सब मालूम हो जायगा। हम दोनों का विचार यहाँ बहुत दिनों तक अभी रहने का है। यह रास्ता बहुत थोड़ा है। परिचय बढ़ने से सब बात खुल जायगी। इस बहाने मिले हुए इस जन को आर्य न भूलेंगे।' इतना कह वह चुप हो गयी। जल भर जाने से गम्भीर आवाज वाले नये मेघ की भाँति लता-भवन के मयूरों को नचाते हुए धीर स्वर में दधीच बोल उठे—'आर्य, अवश्य ही आराधना करने

---

† इस प्रसङ्ग के व्यङ्ग्य विरोधाभासों का स्पष्टीकरण क्रमशः इस प्रकार है–विरोध यह कि जब बाल अन्धकार सन्निहित है तो भगवान् या सूर्य की मूर्ति कैसे हो सकती है। जब कि मुख में पुण्डरीक (व्याघ्र) है तो हरिण का वहां रह सकना कैसे सम्भव है। जहां सूर्य का आतप है वहां कुमुद का हास कहां से, पयोधर या मेघ के उमड़ने की स्थिति में कलहंस मानसरोवर चले जाते हैं, फिर उनकी आवाज का सुन पड़ना सम्भव नहीं। हिमशिखा के समीप कमल टिक नहीं सकते। करभ ऊंट की चाल धीमी नहीं होती। जब कुमार या कार्तिकेय का भाव ग्रहण किया तब तारक (एक असुर, जिसका वध कार्तिकेय ने किया था) स्निग्ध कैसे रह सकता है।

करिष्यति प्रसादमार्याराध्यमाना । पश्यामस्तावत्तातम् । उत्तिष्ठ व्रजामः' इति । तथेति च तेनाभ्यनुज्ञातः शनकैरुत्थाय कृतनमस्कृति रुच्चचाल । तुरगारूढं च तं प्रयान्तं सरस्वती सुचिरमुत्तम्भितपक्ष्मण निश्चलतारकेण लिखितेनेव चक्षुषा व्यलोकयत् । उत्तीर्य च शोण चिरेणैव कालेन दधीचः पितुराश्रमपदं जगाम । गते च तस्मिन्स तामेव दिशमालोकयन्ती सुचिरमतिष्ठत् । कृच्छ्रादिव च संजहा दृशम् ।

अथ मुहूर्तमात्रमिव स्थित्वा स्मृत्वा च तां तस्य रूपसंपदं पुनःपु व्यंस्मयतास्या हृदयम् । भूयोऽपि चक्षुराकाङ्क्ष तद्दर्शनम् । अवशे केनाप्यनीयत तामेव दिशं दृष्टिः । अप्रहितमपि मनस्तेनैव सार्धमगात् अजायत च नवपल्लव इव बालवनलतायाः कुतोऽप्यस्या अनुरा श्चेतसि । ततः प्रभृति च सालस्येव शून्येव सनिद्रेव दिवसमन यत् । अरतमुपयाति च प्रत्यक्पर्यस्तमण्डले लाङ्गलिकास्तबकताम्र

चाल गन्तुं प्रवृत्तः । उत्तम्भितान्युत्क्षिप्तानि ।

कुतोऽपि कस्मादपि न ज्ञायत इत्यर्थः । मनुष्यतस्तथाविधस्तादृश्या कथ नुराग इति । कथमेतदस्या उपपद्यत इति न वाच्यम् । यदाह मुनिः—'शा भ्रंशात्तु दिव्यानां तथा चापत्यलिप्सया । कार्यो मानुषसंयोगः शृङ्गाररससंश्रयः ॥ इति । अन्यत्र—कुतः क्षितेर्नवपल्लवोऽनुरागहतो लतार्थो जायत इत्येवमभिलाष प्रथमं दशान्तरमालम्ब्येत्यादिना द्वितीयचिन्तनरूपमाह । अनयत् कष्टेनास्यवा

पर आर्या प्रसन्न होंगी । तब तक हम पिता जी के दर्शन करें । उठिए, चलें ।' पार्श्वचर स्वीकार करने पर दधीच धीरे से उठे और नमस्कार करके चल दिए । घोड़े पर सव होकर जाते हुए उन्हें सरस्वती निश्चल आँखें फाड़ कर देर तक देखती रही । सोन प करके कुछ ही देर में दधीच च्यवनाश्रम पहुँचे । उनके चले जाने पर सरस्वती उसी दि को देर तक निहारती हुई बैठी रही । बड़ी कठिनाई से वह अपनी आँखें मोड़ सकी ।

अब सरस्वती का हृदय कुछ देर तक ठहर उस दधीच के रूप-सम्पत्ति का स्म करके बार-बार आश्चर्य से भरने लगा । बार-बार उसकी आँखें दधीच के दर्शनों के लि उत्सुक होने लगीं । मानों उसकी बेसुध नजर को कोई उसी दिशा की ओर फेर लेता था बिना भेजे ही मन दधीच के साथ ही चला गया । सुकुमार वनलता में नये पल्लव के सम उसके चित्त में अनुराग अंकुरित होने लगा । उसी समय से अलसाई-सी, शून्य-सी

त्विषि कमलिनीकामुके कठोरसारसशिरःशोणशोचिषि सावित्रे त्रयीमये तेजसि, तरुणतरतमालश्यामले च मलिनयति व्योम व्योमव्यापिनि तिमिरसंचये, संचरत्सिद्धसुन्दरीनूपुररवानुसारिणि च मन्दं मन्दं मन्दाकिनीहंस इव समुत्सर्पति शशिनि गगनतलम् कृतसंध्याप्रणामा निशामुख एव निपत्य विमुक्ताङ्गी पल्लवशयने तस्थौ। सावित्र्यपि कृत्वा यथाक्रियमाणं सायंतनं क्रियाकलापमुचिते शयनकाले किसलयशयनमभजत जातनिद्रा च सुष्वाप।

इतरा तु मुहुर्मुहुरङ्गवलनैर्विलुलितकिसलयशयनतला निमीलितनयनापि नालभत निद्राम्। अचिन्तयच्च—'मर्त्यलोकः खलु सर्व-

---

यत्। अस्तमित्यादौ पल्लवशयने तस्थाविति संबन्धः। प्रतीच्यां पश्चिमायाम्। लाङ्गलिका फलिनी। मयूरशिखौषधिरित्युपरे, रक्तिकेत्यन्ये। कमलिनीकामुक इति सरस्वतीदयिताभिप्रायेणोक्तम्। कठोरो जरठः। सारसो लक्ष्मणः। शोणो लोहितः। शोचिर्दीप्तिः। 'ऋग्यजुःसामनामानि त्रयो वेदास्त्रयी स्मृता। वेदे च पठ्यते सैषा'। त्रय्येव विद्या तपतीति। 'कृत—' इत्यादिना 'तस्थौ' इत्यन्तेन क्रियान्तरत्यागेन वैमनस्यमावेद्यते। 'वेपते श्वसते चैव मनोरथविचिन्तनैः। प्रद्वेषेणान्यकार्याणामनुस्मृतिरपीष्यते॥' निशामुख एवेति। न पुनरुचिते शयनकाले विमुक्ताङ्गीत्यनेन निःसहाङ्गत्वमस्या दर्श्यते। तस्थाविति। न पुनर्निद्रामलभत। यथाक्रियमाणमित्यनेन च सरस्वतीतोऽस्या व्यतिरेकं दर्शयन्सरस्वत्या एवानङ्गावस्थामाह।

विलुलितं विपर्यासितम्। मर्त्यलोक इत्यादिना गुणकीर्तनम्। चतुर्थमवस्था-

---

निंदियाई-सी उसने दिन को व्यतीत किया। जब पश्चिम में ढलते हुए मण्डल वाले, लाङ्गलिका नामक फूलों के गुच्छों के समान कान्ति वाले, कमलिनियों को चाहने वाले तथा वृद्ध सारस के सिर के समान ललाई वाले सूर्य का वेदमय तेज अस्त हो रहा था, विशाल तमाल वृक्ष के समान काला, आकाशव्यापी प्रगाढ़ अंधकार आकाश को मलिन कर रहा था तथा चलती-फिरती सिद्धाङ्गनाओं के नूपुरों की ध्वनि का अनुसरण करने वाले आकाशगंगा के हंस के समान चन्द्रमा आकाश में धीरे-धीरे उदित हो रहा था उस समय सायं-सन्ध्या-वन्दन करके सरस्वती रात के आरम्भ होते ही अपने अङ्गों की सुध-बुध भूल पल्लव के शयन पर पड़ रही। सावित्री भी सायंकालीन क्रियाओं से निवृत्त होकर सोने के समय पल्लवशयन पर पहुँची और नींद आते ही सो गई।

लेकिन दूसरी (सरस्वती) बार-बार करवट बदलने लगी, अपने पल्लवशयन को मसल डाला, आंखें मूंद ली, फिर भी नींद नहीं आई। सोचने लगी—'निश्चय ही मर्त्यलोक समस्त

लोकानामुपरि, यस्मिन्नेवंविधानि भवति त्रिभुवनभूषणानि सकलगु ग्रामगुरूणि रत्नानि। तथा हि—तस्य मुखलावण्यप्रवाहस्य निष्यन्द बिन्दुरिन्दुः। तस्य च चक्षुषो विक्षेपाः कुमुदकुवलयकमलाकाराः तस्य चाधरमणेर्दीधितयो विकसितबन्धकवनराजयः। तस्य चाङ्ग परभागोपकरणमनङ्गः। पुण्यभाञ्जि तानि चक्षूंषि चेतांसि यौवनानि वा स्त्रैणानि, येषामसावविषयो दर्शनस्य। क्षणं नु दर्शयता तमन्यजन्मनितेनेव मे फलितमधर्मेण। का प्रतिपत्तिरिदानीम् इति चिन्तयन्त्येव कथंकथमप्युपजातनिद्रा चिरात्क्षणमशेत। सुप्ता च तमेव दीर्घलोचनं ददर्श। स्वप्नासादितद्वितीयदर्शना चाकर्ण कृष्टकार्मुकेण मनसि निर्दयमताड्यत मकरकेतुना। प्रतिबुद्धा

विशेषमाह। तदुक्तम्—'अङ्गप्रत्यङ्गलीलाभिर्वाक्चेष्टासहितेक्षणैः। नास्त्यन्यः स घस्तेन तदेतद्गुणकीर्तनम्॥' इति। गुणा वैदग्ध्यादयः, सूत्राणि च। तद्व गुरूणि बहुमानभाञ्जि इतरत्र तु तिष्ठतु तावदेकः। गुणग्रामस्यापि गुणिरूपि नापि दुर्वहानीति यावत्। तस्येति। पूर्वानुभूतस्य बिन्दुरिति न केवलं लाव प्रवाहाभिप्रायेण यावत्संनिवेशसादृश्यात्। विक्षेपाः परतः प्रेरणानि। कुमुदेत्या क्तम् शुक्लकृष्णरक्तरुचित्वाच्चक्षुषो दीधितय इति मणिशब्दाभिप्रायेण। विकसि शब्देन लौहित्यातिशयमाह। अङ्गानि विद्यन्ते यस्य तदङ्गं शरीरम्। परभागो वर्ण स्य वर्णान्तरेण शोभातिशयः। स्त्रैणानि स्त्रीसंबन्धीनि। का प्रतिपत्तिः किमनुष्ठेयम मदन—इत्यादिनोद्वेगरूपं पञ्चममवस्थाभेदमाह। यदुक्तम्—'आसने शयने वापि हृष्यति न तुष्यति। नित्यमेवोत्सुका च स्यादुद्वेगस्थानमाश्रिता॥ चिन्तानिःश्वा

लोकों में बढ़ा-चढ़ा-सा, जहां त्रिभुवन के भूषण, समस्त गुणों के गौरव से भरे, ऐसे रत्न पड़े हैं, जैसा कि—चन्द्रमा उसके लावण्य-प्रवाह का चूआ हुआ एक बिन्दु ही है। उसके नेत्रों के विक्षेप ही तो सफेद, काले और लाल कमलों के आकार हैं। उ अधरमणि की कान्ति ही तो बन्धूक की खिली हुई वनराजि है। कामदेव इ अंग के शोभातिशय का साधन है। उन युवतियों की आँखें, चित्त एवं यौवन पु वान् हैं जिन्होंने इसके दर्शन नहीं किए। मानों दूसरे जन्म का उत्पन्न अधर्म फलित गया, जो मैंने क्षण भर इसके दर्शन किए। इस समय क्या करूँ?' यह सोच ही रही कि किसी-किसी तरह बहुत देर बाद नींद आ गई और क्षण भर सोई रही। सोने पर उसी दीर्घलोचन दधीच को देखा। स्वप्न में उसने दूसरी बार दधीच को देखा तो मा

मदनशराहतायाश्च तस्या वार्तामिवोपलब्धुमरतिराजगाम । तथा हि—ततः प्रभृति कुसुमधूलिधवलाभिर्वनलताभिस्ताडितापि वेदनामधत्त । मन्दमन्दमारुतविधुतैः कुसुमरजोभिरदूषितलोचनाप्यश्रुजलं मुमोच । हंसपक्षतालवृन्तवातव्रातविततैः शोणशीकरैरसिक्ताप्यार्द्रंतामगात् । प्रेङ्खत्कादम्बमिथुनाभिरनूढाप्यघूर्णत वनकमलिनीकल्लोलदोलाभिः । विघटमानचक्रवाकयुगलविसृष्टैरस्पृष्टापि श्यामतामाससाद विरहनिःश्वासधूमैः । पुष्पधूलिधूसरैरदष्टापि व्यचेष्टत मधुकरकुलैः ।

अथ गणरात्रापगमे निवर्तमानस्तेनैव वर्त्मना तं देशं समागत्य

खेदेन हृद्धाहाभिनयेन च । कुर्यात्तदेवमत्यन्तमुद्योगामिनयेन च ॥' इति । दश किल कामावस्थाः । तदुक्तम्—'प्रथमे त्वभिलाषः स्याद् द्वितीये चिन्तनं भवेत् । अनुस्मृतिस्तृतीये तु चतुर्थ गुणकीर्तनम् ॥ उद्वेगः पञ्चमे प्रोक्तः प्रलापः षष्ठ उच्यते । उन्मादः सप्तमे चैव भवेद्व्याधिस्तथाष्टमे ॥ नवमे जडता प्रोक्ता दशमे मरणं भवेत् ॥ इति । अरतिर्दुःखासिका हि कामवधूप्रतिपक्षभूतेति तदागमनाभिधानम् । हंसपक्षा इव तालवृन्तं व्यजनम् । आर्द्रतां सस्नेहताम्, क्लिन्नतां च । प्रेङ्खद्दोलायमानम् । कादम्बाः कृष्णहंसाः । श्यामता शृङ्गाररसाविष्कारिवैवर्ण्यम् । यदुक्तम्—शृङ्गारदेवो भगवान्मुरारिः संगीयते श्यामवपुर्मुरारिः । श्यामो मनाक्स्निग्धतरश्च तेन शृङ्गारशंसी मुखराग उक्तः ॥' अथ श्यामता सधूमता । श्यामत्वेऽपि सधूमता इति विरोधाभासः ।

गणरात्रं निशाबह्वयः । तेनैव वर्त्मनेति । अनेन तस्य यदृच्छया तदाश्रयमा-

---

कामदेव ने उसे बड़ी निर्दयता से कान तक खींच कर बाण मारा । जब काम के बाण से घायल सरस्वती की नींद खुली तब उसकी खबर लेने के लिए मानों अरति (वैराग्य) आई । तब वह पुष्पराग से उज्ज्वल वनलताओं द्वारा ताड़ित न होकर भी वेदना अनुभव करने लगी । मंद मंद हवा से काँपते हुए फूलों की रज उसकी आँखों में न भी पड़ती तो भी वह आँसू बहाती । हंस पक्षिया के पंखों की हवा से फैलते हुए सोन (नदी) के फुहारों द्वारा सिक्त न होने पर भी (पसीने से) तर होने लगी । काले हंसों की जोड़ियों से युक्त वन की कमलिनी भी दोलाओं पर न बैठी हुई भी चकराने लगी । विघटित होते हुए जोड़े चक्रवाकों के विरहजन्य निःश्वास-धूम से स्पष्ट न होने पर भी श्यामता को प्राप्त करने लगी । फूल की धूल में लोट-पोट करने से धूसर भौरों से न काटे जाने पर भी वह उद्विग्न होने लगी ।

इस तरह कई रातें गुजर गईं । एक दिन उसी मार्ग से लौटता हुआ विकुक्षि परिजनों

तथैव निवारितपरिजनश्छत्रधारद्वितीयो विकुक्षिर्डुढौके। सरस्वती तु तं दूरादेव संमुखमागच्छन्तं प्रीत्या ससंभ्रममुत्थाय वनमृगीवोद्ग्रीवा विलोकयन्ती मार्गपरिश्रान्तमस्नपयदिव धवलितदशदिशा दृशा। कृतासनपरिग्रहं तु तं प्रीत्या सावित्री पप्रच्छ—'आर्य, कच्चित् कुशली कुमारः ?' इति। सोऽब्रवीत्—'आयुष्मति, कुशली। स्मरति च भवत्योः। केवलममीषु दिवसेषु तनीयसीमिव तनु बिभर्ति। अविज्ञायमाननिमित्तां च शून्यतामिवाधत्ते। अपि च। अन्वक्षमागमिष्यत्येव मालतीति नाम्ना बाणिनी वार्तां वो विज्ञातुम्। उच्छ्वसित हि सा कुमारस्य' इति। तच्छ्रुत्वा पुनरपि। सावित्री समभाषत—'अतिमहानुभावः खलु कुमारो येनैवनमविज्ञायमाने क्षणदृष्टेऽपि जने परिचितिमनुबध्नाति। तस्य हि गच्छतो यदृच्छया कथमप्यंशुकमिव मार्ग-

---

गमनमिति दर्शयति। प्रधानप्रकृतेः स्थवीयसस्तथाविधव्यापारविनियोगाद्यनौचित्यात्। अत एव वक्ष्यति—'यथाभिलषितं देशमयासीत्'। डुढौके इत्यनेन निमित्तपरतन्त्रतया संनिकृष्टमेवैनमालुलोकेति प्रदर्शितम्। यदुक्तम्—'पटुता धाष्ट्र्यंता इङ्गिताकारज्ञानं प्रतारणे देशकालज्ञता कार्येषु विषह्यत्रुद्धित्वं लघ्वी प्रतिपत्तिः सापाया च इति दूतीगुणाः'। भरतमुनिरपि—'विज्ञानगुणसंपन्ना कथिनी लिङ्गिनी तथा। रङ्गोपजीविनी चापि प्रतिपत्तिविचक्षणा॥ प्रोत्साहनैककुशलेत्यादिदूतीगुणैर्युता॥' इति। अत एवागृह्याच्चाकारतः प्रभृतीत्यादि वक्ष्यते' अन्वक्षं प्रत्यक्षम्। वाणिनी दूती। उच्छ्वासितमित्यनेनातिविस्रम्भवत्ता ख्याता। उच्छ्वसितं प्राण इति वा।

को बाहर रोक छत्रवाहक को साथ ले पहुँचा। सरस्वती ने दूर ही से सामने आते हुए उसे देखा और प्रेम से फड़क उठी, वह हिरनी की तरह गर्दन ऊँची उठाकर देखने लगी मानों मार्ग में थके हुए विकुक्षि को दिशाओं को धवलित करने वाली दृष्टि से स्नान कराने लगी। जब वह आकर आसन पर बैठ गया तब सावित्री ने प्रीतिपूर्वक पूछा—'आर्य, क्या कुमार दधीच कुशल से हैं?' उसने कहा—'आयुष्मती, कुमार सकुशल हैं। आप दोनों का स्मरण करते हैं। इन दिनों उनका शरीर क्षीण होता जा रहा है। पता नहीं क्यों, शून्य-शून्य से लगते हैं। और भी, मालती नाम की दूती समाचार लेकर सामने आने वाली है। कुमार का उसे प्राण ही समझना। यह सुनकर फिर सावित्री बोली—'कुमार सचमुच बड़े ही महानुभाव हैं, जो अज्ञातजन में भी क्षण भर की देखा-देखी में ही अपना परिचय-सम्बन्ध जोड़ रहे है। वे जाने लगे तो उनका मन हम लोगों में क्षण भर इस तरह लग गया जैसे मार्ग की लताओं में अंशुक फँस जाता है। आपने

लतासु मानसमस्मासु मुहूर्तमासक्तमासीत् । अशून्यं हि सौजन्यमाभिजात्येन वः स्वामिसूनोः । अलसः खलु लोको यदेवं सुलभसौहार्दानि येन केनचिन्न क्रीणाति महतां मनांसि । सोऽयमौदार्यातिशयः कोऽपि महात्मनामितरजनदुर्लभो येनोपकरणीकुर्वन्ति त्रिभुवनम्' इति । विकुक्षिस्तूच्चावचैरालापैः सुचिरमिव स्थित्वा यथाभिलषितं देशमयासीत् ।

अपरेद्युरुद्यति भगवति द्युमणावुद्दामद्युतावभिद्रुततारके तिरस्कृततमसि तामरसव्यासव्यसनिनि सहस्ररश्मौ शोणमुत्तीर्यायान्ती, तरलदेहप्रभावितानच्छलेनात्यच्छं सकलं शोणसलिलमिवानयन्तीं, स्फुटितातिमुक्तककुसुमस्तवकसमत्विषि सटाले महति मृगपताविव गौरी तुरंगमे स्थित, सलीलमुरोबन्धारोपितस्य तिर्यगुत्कर्णतुरगाकर्ण्य,

---

यदृच्छया यथाकथञ्चित् । यत्र तत्र गच्छति यस्य निरवधानतया क्वचिदंशुकामि गलति । अभिजात्येन महाकुलीनत्वेनोपकरणीकुर्वन्त्या रततां नयन्ति । उच्चावचैः प्रकृतवस्त्वसंस्पर्शिभिः, विचित्रैरिति वा ।

अपरेद्युरित्यादावीदृशी मालती समदृश्यतेति संबन्धः । दिवि मणिरिव द्युमणिः ? वियद्भूषणं सूर्यः । अभिद्रुता न्यक्कृता । तामरसं पद्मम् । व्यासो विकासः । अतिःमुक्तकं पुष्पभेदः । केचिन्मालतीलताकुसुममाहुः । सटास्ति यस्येति । 'प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम्' । गौरी गौराङ्गी, पार्वती च । सजलतुरङ्गाङ्गस्पर्शपरिजिही-

---

स्वामिपुत्र दधीच में कुलीनता के साथ सौजन्य भी है । दुनिया वाले बड़े आलसी होते हैं जो सुलभ सौहार्द वाले महापुरुषों के मन को जिस किसी वस्तु से खरीदते नहीं । महापुरुषों में ही इस तरह बढ़कर उदारता होती है जो इतर लोगों में नहीं होती और जिससे वे लोग त्रिभुवन को अपने वश में कर लेते हैं । विकुक्षि भी लम्बी बातचीत करके अपने अभिलषित देश की ओर चला गया ।

अगले दिन आकाश के रत्न, प्रखर किरणों वाले, तारों को भगा देने और अंधकार को हटा देने वाले, कमलों को विकसित करने के शौकीन भगवान् सूर्य के उदित होते ही सोन पार करके आती हुई मालती दूर ही से दिखाई पड़ी । अपने शरीर की तरल प्रभा से सोन के जल को वह और भी निर्मल कर रही थी । माधवी के फूल के गुच्छे के सदृश कान्ति वाले, अयाल-युक्त बड़े घोड़े पर वह सिंह पर गौरी की भाँति सवार थी । लीला से उसने अपने चरण रकाब पर रखे थे; जब पैर के नूपुर बजते तो उसका घोड़ा कान खड़े

माननूपुरपटुरणितस्यातिबहलेन पिण्डालक्तकेन पल्लवितस्य कुङ्कुमपि
ञ्जरितपृष्ठस्य चरणयुगलस्य प्रसरद्भिरतिलोहितैः प्रभाप्रवाहैरुभयतस्ता
डनदोहदलोभागतानि किसलयितानि रक्ताशोकवनानीवाकर्षयन्ती
सकलजीवनलोकहृदयहठहरणाघोषणयेव रशनया शिञ्जानजघनस्थला
धौतधवलनेत्रनिर्मितेन निर्मोकलघुतरेणाप्रपदीनेन कञ्चुकेन तिरोहित
तनुलता, छातकञ्चुकान्तरदृश्यमानैराश्यानचन्दनधवलैरवयवैः स्वच्छ
सलिलाभ्यन्तरविभाव्यमानमृणालकाण्डेव सरसी, कुसुम्भरागपाट
पुलकबन्धचित्रं चण्डातकमन्तःस्फुटं स्फटिकभूमिरिव रत्ननिधानमाद
धाना, हारेणामलकीफलनिस्तुलमुक्ताफलेन स्फुरितस्थूलग्रहगणशार
शारदीव श्वेतविरलजलधरपटलावृता द्यौः, कुचपूर्णकलशयोरुप

र्षयोरावन्धेत्याद्युक्तम् । प्रियमधुरशब्दत्वादश्वानामाकर्ण्यमानेत्युक्तम् । पिण्डालक्तक
क्वथितोऽलक्तकरसः । दोहदोऽभिलाषः । वाद्यविशेषानुगताङ्घ्रघोषणा । रशन
मेखला । शिञ्जानं शब्दायमानम् । निर्मोकः सर्पत्वक् । आप्रपदं प्राप्नोत्याप्रपदीनः
पादं यावत् । छातस्तनुः । कुसुम्भं पद्मकम् । नानावर्णबिन्दुन्यासः पुलकबन्धः
मणिविशेषाश्च पुलकाः । चण्डातकमर्घोरुकम् । कुचावेव कस्यापि पुण्यवत इवे
वक्ष्यमाणाभिप्रायेण पूर्णकलशौ कस्यापीत्यलौकिकस्य । वनमाला पत्त्रपुष्पयो

करके गर्दन टेढ़ी किए सुनता । आलते से उसके पैर रञ्जित थे । तलवे में कुंकुम क
हुआ था । उसके पैरों की टहाका लाल कान्ति दोनों ओर फैल रही थी, मानों वह ताड़
प्राप्त करने की अभिलाषा के लोभ से आये हुए से रक्ताशोक के हरे-भरे वनों की खींच
आ रही थी । उसके कटि प्रदेश में करधनी बज रही थी, मानों वह जीवलोक के स
लोगों के मन को हठपूर्वक हरने के लिए घोषणा कर रही हो । उसका सारा शरीर धु
सफेद रेशम के पैरों तक लटकते हुए झीने, साँप की केंचुली की तरह हल्के और बारी
कंचुक से ढँका हुआ था । सूखे चन्दन के समान उज्ज्वल अंगों से, जो झीने कंचुक
भीतर से दिखाई दे रहे थे, वह उस सरसी के सदृश थी जिसके निर्मल जल के भी
मृणाल-काण्ड दिखाई दे रहे हों । कुसुंभी रंग का लाक लहँगा झलक रहा था जिस प
रंग-बिरंगी बुंदकियाँ पड़ी हुई थीं, मानों स्फटिक की जड़ाव में मोतियाँ जड़ी हों । आँवले
जैसे बड़े बड़े मोतियों का हार गले में लटक रहा था, वह तारों भरे शरत्काल के आका
जैसी लग रही थी जिसमें कहीं-कहीं सफेद मेघ के टुकड़े घिरे रहते हैं । उसके स्तनरू
कलश पर रत्नों की प्रालम्ब माला लटक रही थी, मानों किसी पुण्यवान् के हृदय में प्रवे

रत्नप्रालम्बमालिकामरुणहरितकिरणकिसलयिनीं कस्यापि पुण्यवतो हृदयप्रवेशवनमालिकामिव बद्धां धारयन्ती, प्रकोष्ठनिविष्टस्यैकस्य हाटककटकस्य मरकतमकरवेदिकासनाथस्य हरितीकृतदिगन्ताभिमंयूखसंततिभिः स्थलकमलिनीभिरिव लक्ष्मीशङ्कयानुगम्यमाना, अतिबहलताम्बूलकृष्णिकान्धकारितेनाधरसंपुटेन मुखशशिपीतं ससंध्यारागं तिमिरमिव वमन्ती, विकचनयनकुवलयकुतूहलालीनयालिकुलसंहत्या नीलांशुकजालिकयेव निरुद्धाधवदना, नीलीरागनिहितनीलिम्ना शिखिद्योतमाना, बकुलफलानुकारिणोभिस्तिसृभिर्मुक्ताभिः कलिपतेन बालिकायुगलेनाधोमुखेनालोकजलवर्षिणा सिञ्चन्तीवातिकोमले भुजलते, दक्षिणकर्णावतंसितया केतकीगर्भपलाशलेखया रजनिकरजिह्वालतयेव लावण्यलोभेन लिह्यमानकपोलतला, तमालश्यामलेन मृगमदामोद-

---

जिता स्रक् । सापि पूर्णकलशयोरुपरि बध्यते । प्रकोष्ठः प्रकुञ्चनकः । वेदिका रत्नप्रतिष्ठापीठिका । बहलं पौनःपुन्येन कृतम् । कृष्णिका कृष्णलेखा । मुखमेव तमःपारप्रतिपिपादयिषया शशी । ताम्बूलकारणत्वेन लौहित्यमेव. सम्भवतीति ससन्ध्यारागमित्युक्तम् । नील्योषधिभेदः । शितिर्नीलः । पल्लवः पिण्डः । बालिका कर्णोपवेधेऽलंकारः । अधोमुखेन घटादिना जलवर्षिणा लता सिच्यते । मृगमदः

करने के स्वागत में मङ्गलार्थ घट में वनमाला बँधी हो। उसके एक हाथ की कलाई में सोने का कड़ा था जिसके ग्राहमुखी सिरों पर पन्ने जड़े हुए थे, उनकी हरित किरणें दिशाओं में फैल रही थीं, मानों स्थल-कमलिनियाँ उसे लक्ष्मी समझ कर पीछे लग गई थीं। उसके अधर पर पान चबाने से काली रेखा पड़ गई थी, मानों उसका मुखचन्द्र पिये हुए संध्याराग के सहित अन्धकार को उगल रहा हो। भौंरे उसके नेत्रों को खिले हुए कुवलय समझ कर छा रहे थे मानों उसका मुख नीले अंशुक की नकाब से आधा ढँका हुआ था। उसके बायें कान का दन्तपत्र नीली राग द्वारा रंग कर नीला कर दिया गया था, उसका वर्ण मयूर की गर्दन की तरह था, मानों विस्तृत नीले मेघ में बिजली के समान वह शोभ रही थी। मौलसिरी के फल जैसे लम्बोतरे तीन मोती वाली, उसके कानों में एक एक बाली थी, जो नीचे लटक कर अपने आलोक के जल से भुज-रूपी लता को सींच रही थीं। उसके दाहिने कान पर केतकी का नुकीला टौंसा लगा हुआ था, मानों उसके लावण्य का लोभी चन्द्र अपनी जीभ से उसके कपोल को चाट रहा था। तमाल की भाँति श्यामल,

निष्यदिना तिलकबिन्दुना मुद्रितमिव मनोभवसर्वस्वं वदनमुद्वहन्ती, ललाटलासकस्य सीमन्तचुम्बिनश्चटुलातिलकमणेरुदञ्चता चटुलेनांशुजालेनेव रक्तांशुकेनेव कृतशिरावगुण्ठना, पृष्ठप्रेङ्खदनादरसंयमनशिथिलजूटिकाबन्धा नीलचामरावकूलिनीव, चूडामणिमकरिकासनाथा मकरकेतुपताकेव कुलदेवतेव चन्द्रमसः, पुनःसञ्जीवनौषधिरिव पुष्पधनुषः, वेलेव रागसागरस्य, ज्योत्स्नेव यौवनचन्द्रोदयस्य, महानदीव रतिरसामृतस्य, कुसुमोद्गतिरिव सुरततरोः, बालविद्येव वैदग्ध्यस्य, कौमुदीव कान्तेः, धृतिरिव धैर्यस्य, गुरुशालेव गौरवस्य बीजभूमिरिव विनयस्य, गोष्ठीव गुणानाम्, मनस्वितेव महानुभाव-

कस्तूरिका। तिलकबिन्दुः परिवर्तुलस्तिलकः। लासको नर्तकः। 'सुवर्णशृङ्खलाबद्धो नानारत्नौघमण्डितः। ललाटलम्ब्यलङ्कारश्चटुलातिलको मतः॥' अवचूलं चिह्नम्। मकारिका मकाराकारं रूपम्। वेला यथा सागरं क्षोभयति तद्वदेवेयं रागम्। क्षोभेन यथा सागरो दुरुत्तर एवमेतयापि रागः। यथा ज्योत्स्नया विना चन्द्रोदयो भवन्नपि क्वापि विलसन्विभाव्यते तथैतया विना यौवनं सविलासमन्यत्र न दृश्यते। रतिप्रधानो रसः शृङ्गार एव। माधुर्यातिशययोगित्वात्प्रकृष्टत्वाच्च। ह्लादनममृतम्। यदुक्तम्—'शृङ्गार एव परमः परः प्रह्लादनो रसः' इति। संप्रयोगो रतं रहःशयनं मोहनमिति पर्यायाः। बालविद्या न कञ्चन मुञ्चति, तद्वदेव वैदग्ध्यम्। कौमुदीति। तथाविधकान्त्यतिशयसम्भवात्। ध्रियते तेन धृतिः। अस्यां सत्यां धैर्यमपि यद्वा—धृतिः प्रवेशरक्षणम्। यथा प्रविशन्कश्चिद्राजनिकटं ध्रियते केनचित्तथा धैर्यं तावत्प्रसरति। यावदेषा न दृष्टा एतस्यां दृष्टायां सर्वे धैर्यशून्या

कस्तूरी की गन्ध फैलाने वाला तिलक बिन्दु कामदेव के सर्वस्व उसके मुख पर मुँहर की भांति लगा था। चटुला-तिलक नाम की मणि सीमन्त से ललाट पर झूल रही थी, उससे निकलते हुए चंचल किरण-जाल से ऐसा लगता था मानों उसे लाल वस्त्र का सिर का अवगुण्ठन बना लिया हो। उसके बालों का जूड़ा पीठ पर ठीक से न बाँधने के कारण ढीला होकर लटक रहा था मानों नील चामर लटक रहा हो। चूडामणि मकरिका पहने मानों मकरकेतु (कामदेव) की पताका हो। चन्द्रमा की कुलदेवता हो, काम को फिर से जीवित कर देने वाली संजीवन बूटी हो, प्रेम की समुद्र की तटी हो, यौवनरूपी चन्द्रोदय की चाँदनी हो, रति रस के अमृत की महानदी हो, सुरत वृक्ष की पुष्पोद्गति हो, वैदग्ध्य की बाल विद्या हो, कान्ति की कौमुदी हो, धैर्य की धृति हो, गौरव की गुरुशाला हो, विनय की बीजभूमि हो, गुणों की गोष्ठी हो, महानुभावता की मनस्विता हो, और जवानी की

तायाः, तृप्तिरिव तारुण्यस्य, कुवलयदलदामदीर्घलोचनया पाटलाधरया कुन्दकुड्मलस्फुटदशनया शिरीषमालासुकुमारभुजयुगलया कमलकोमलकरया बकुलसुरभिनिःश्वसितया चम्पकावदातदेहया कुसुममय्येव ताम्बूलकरण्डवाहिन्या महाप्रमाणाश्वतरारूढयानुगम्यमाना, कतिपयपरिचारकपरिकरा मालती समदृश्यत। दूरादेव च दधीचप्रेम्णा सरस्वत्या लुण्ठितेव मनोरथैः, आकृष्टेव कुतूहलेन, प्रत्युद्गतेवोत्कलिकाभिः, आलिङ्गितेवोत्कण्ठया, अन्तःप्रवेशितेव हृदयेन, स्नपितेवानन्दाश्रुभिः, विलिप्तेव स्मितेन, वीजितेवोच्छ्वसितैः, आच्छादितेव चक्षुषा, अभ्यर्चितेव वदनपुण्डरीकेण, सखीकृतेवाशया

इति। 'समानविद्यावित्तशीलवृद्धिवयसामनुरूपैरालापैरेकत्रासनबन्धो गोष्ठीमनस्विता' इत्यनेनैतस्या महानुभावताया व्यभिचारित्वमुच्यते। यस्माद्यत्र मनस्विता तत्र महाशयत्वमेवावश्यं सम्भावयतीति स्थितमेव। तृप्तिरिवेति। यथा कश्चित्संजाततृप्तिर्नान्यत्किंचित्पुनरपेक्षते तद्वदासादितमालतीकं तारुण्यम्। एतदाश्रयणेन परिपूर्णवैषयिकोपभोगप्राप्तिस्तारुण्यस्येत्यर्थः। कुसुममय्येवेति। कुवलयादिभिर्नयनादीनां विधानम्। तरुणोऽश्वोऽश्वतराः। 'वत्सोक्षाश्वर्षभेभ्यश्च तनुत्वम्' इति तनुत्वे तरप्। तत्र च व्याख्यातम्—'तनुत्वं द्वितीयवयःप्राप्तिः' इति। अश्वतरो वा गर्दभेनाश्वायां जातः। मालतीति। एवं दधीचपरिवारभूतया मालत्या गुणवर्णनद्वारेण सरस्वत्या एव निःसामान्यगुणातिशयो ध्वन्यते। लुण्ठितेवेति। वक्ष्यमाणं प्रार्थनादि। तया मनोरथैरुत्प्रेक्ष्य स्वीकृतमित्यतस्तैर्लुण्ठितेवेत्युक्तम्। लुण्ठनं च पाथेयाभिवितरणमेवमन्यत्। उत्कलिका रुहरुहिका। सविधं समीपम्। अपि च

तृप्ति हो। उसके पीछे एक बड़े अश्व पर बैठी हुई ताम्बूलकरंकवाहिनी आ रही थी जिसके अंग-अंग मानों फूल से बने थे, क्योंकि कुवलय की माला-सी बड़ी-बड़ी आँखें, पाटल पुष्प-सा अधर, कुन्द की कलियों जैसे दाँत, शिरीषमाला जैसी सुकुमार दोनों भुजाएँ, कमल जैसे हाथ, मौलसिरी की गन्ध जैसी सरस और चम्पा के समान दमकती देह थी। उसके साथ कुछ परिचारक थे। सरस्वती ने दधीच के प्रेम से मालती को दूर से ही मानों मनोरथ द्वारा लूट लिया, कुतूहल से खींच लिया, मन की तरङ्गों से अगवानी की, उत्कण्ठा से आलिङ्गन किया, हृदय के भीतर रख लिया, आनन्द के आंसू से नहला दिया, स्मित के चन्दन से चर्चित किया, उच्छ्वासितों द्वारा पंखे झलने लगी, आंखों से ढँक दिया, मुख के कमल से पूजा की और आशा से उसे अपनी सखी बना लिया। तब मालती आई

सविधमुपययौ। अवतीर्य [1]च दूरादेवानतेन मूर्ध्ना प्रणाममकरोत्। आलिङ्गिता च ताभ्यां सविनयमुपाविशत्। सप्रश्रयं ताभ्यां संभाषिता च पुण्यभाजनमात्मानममन्यत। अकथयच्च दधीचसंदिष्टं शिरसि निहितेनाञ्जलिना नमस्कारम्। अगृह्णाच्चाकरतः प्रभृत्यग्राम्यतया तैस्तैरतिपेशलैरालापैः सावित्रीसरस्वत्योर्मनसी।

क्रमेण चातीते मध्यंदिनसमये शोणमवतीर्णायां सावित्र्यां स्नातुमुत्सारितपरिजना साकूतेव मालती कुसुमस्रस्तशायिनीं समुपसृत्य सरस्वतीमाबभाषे—'देवि, विज्ञाप्यं नः किञ्चिदस्ति रहसि। यतो मुहूर्तमवधानदानेन प्रसादं क्रियमाणमिच्छामि' इति। सरस्वती तु दधीचसंदेशाशङ्किनी किं वक्ष्यतीति स्तननिहितवामकरनखरकिरणदन्तुरितमुद्भिद्यमानकुतूहलाङ्कुरनिकरमिव हृदयमुत्तरीयकूलवल्कलैकदेशेन संछादयन्ती, गलतावतंसपल्लवेन श्रोतुं श्रवणेनेव कुतूहलाद्धाव-

---

यः स्निग्धो दूरात्सविधमायाति, तस्य लुण्ठनादिसर्वमर्चनावसानं क्रियत इति ध्वनिः। पेशलैर्हृद्यैः।

आकूतमभिप्रायः। रहस्येकान्ते सरस्वतीत्यादौ। सरस्वती कुसुमशयनीयादु

और उतर कर दूर ही से झुके सिर प्रणाम किया और दोनों से आलिङ्गित हो विनयपूर्वक बैठी। दोनों ने उससे विनयपूर्वक सम्भाषण किया तो उसने अपने आप को धन्यभाग समझा। मालती ने दधीच के द्वारा सन्दिष्ट सिर पर अंजलि टेक कर नमस्कार निवेदन किया। सावित्री और सरस्वती के मन को उसने अपने अग्राम्य आकार और अतिमधुर बात-चीत से हर लिया।

धीरे धीरे दोपहर बीत गई। तब सावित्री उधर शोण में स्नान करने उतरी, इधर अभिप्राय-युक्त-सी मालती परिजनों को वहां से अलग करके फूल के विस्तर पर लेटी हुई है, सरस्वती के पास आकर बोली—'देवि, एकान्त में कुछ मुझे आपको सूचित करना है, इसलिए चाहती हूँ कि क्षणभर आप ध्यान देने का प्रसाद करें। दधीच के सन्देश की आशंका से 'न मालूम क्या कहेगी' सरस्वती यह सोचने लगी। छाती पर रखे हुए उसके बायें हाथ के नख की किरणें ऐसी लग रही थीं मानों कुतूहल का अंकुर हृदय से निकल रहा हो। वह ऐसे हृदय को दुकूल वल्कल के अँचरे के खूंट से ढँक रही थी। कान

---

१. तुरगाद् दूरादेवावनतेन।

मानेनाविरतश्वाससंदोहदोलायितां जीविताशामिव समासन्नतरुणतरुलतामवलम्ब्रमाना, समुत्फुल्लस्य मुखशशिनो लावण्यप्रवाहेण शृङ्गाररसेनेवाप्लावयन्ती सकलं जीवलोकम्, शयनकुसुमपरिमलग्नैर्मधुकरकदम्बकैर्मदनानलदाहश्यामलैर्मनोरथैरिव निर्गत्य मूर्तैरुत्क्षिप्यमाणा, कुसुमशयनीयात्स्मरशरसंज्वरिणो, मन्दं मन्दमुदगात्। 'उपांशु कथय' इति कपोलतलप्रतिबिम्बितां लज्जया कर्णमूलमिव मालतीं प्रवेशयन्ती मधुरया गिरा सुधीरमुवाच—'सखि मालति, किमर्थमेवमभिदधासि? काहमवधानदानस्य शरीरस्य प्राणानां वा? सर्वस्याप्रार्थितोऽपि प्रभवत्येवातिवेलं चक्षुष्यो जनः। सा न काचिद्या न भवसि मे स्वसा सखी प्रणयिनी प्राणसमा च। नियुज्यतां यावतः कार्यस्य क्षमं क्षोदीयसी गरीयसी वा शरीरकमिदम्। अनवस्करमाश्रवं त्वयि हृदयम्। प्रीत्या प्रतिसरा विधेयास्मि ते। व्यावृणु वरवर्णिनि, विवक्षितम्'

दगादुदतिष्ठदिति सम्बन्धः। अवतंसपल्लवेन गलतेतीत्थंभूतलक्षणे तृतीया। संदोहः समूहः। संज्वरः संतापः। उपांश्वनुक्तम्। अतिवेलमतिमात्रम्। 'अतिपेशलः' इति पाठे पेशलः। सुन्दरः। चक्षुष्योऽनुकूलः। त्वमिव व्यक्तम्। चक्षुष्य इति भङ्ग्या दधीच इति ध्वनति। स्वसा भगिनी। प्रणयिनी विश्वस्ता। अतिशयेन क्षुद्रमल्पं क्षोदीयः। 'ज्ञेयं गुह्यमवस्करम्'। आश्रवं वचसि स्थितम्। प्रतिसरानुकूला। विधेया-

---

लगा हुआ पल्लव गिरने लगा, मानों उसका कान ही सुनने के कुतूहल से दौड़ पड़ा हो। निरन्तर साँस के झूले पर बैठी हुई जीविताशा को समीप के तरुण वृक्ष पर मानों अवलम्बित करने के लिए सहारा ले रही थी। खिलखिलाये हुए मुखचन्द्र के लावण्य की धारा से शृङ्गार रस के रूप में प्रवाहित करके मानों समस्त जीवलोक को भरने लगी। शय्या के फूल के रस पीने में लगे हुए, मदनाग्नि से जले उसके मूर्त मनोरथ के रूप में श्यामवर्ण वाले भौरों ने उसे झटका दिया और कामज्वर से पीड़ित वह अपने पुष्पशयन से धीरे-धीरे उठी। 'धीरे बोल' यह कहती हुई सरस्वती अपने कपोल पर प्रतिबिम्बित मालती को लज्जा ने मानों अपने कानों में पहुँचाती हुई मधुर आवाज से धीरतापूर्वक बोली—'सखी मालती कैसी बात कर रही है? मैं क्या अवधान देकर सुनूं? शरीर और प्राण पर मेरा वश नहीं। प्रार्थना के बिना ही प्रियजन का प्रभुत्व सब पर व्याप्त हो रहा है। तू तो मेरी सब कुछ है, बहन तू, सखी तू, प्रणयिनी तू, और प्राणसमा भी तू। छोटे-बड़े किसी योग्य काम के लिए इस शरीर को नियुक्त कर। मेरा हृदय तेरे प्रति प्रकट और बात मानने वाला है। तू प्रेम से मुझे अनुकूल और अपने

इति । सा त्ववादीत्—'देवि, जानास्येव माधुर्यं विषयाणाम्, लोलुपतां चेन्द्रियग्रामस्य, उन्मादितां च नवयौवनस्य, पारिप्लवतां च मनसः। प्रख्यातैव मन्मथस्य दुर्निवारता । अतो न मामुपालम्भेनोपस्थातुमर्हसि । न च बालिशता चपलता चारणता वा वाचालतायाः कारणम् । न किंचिन्न कारयत्यसाधारणा स्वामिभक्तिः । सा त्वं देवि, यदैव दृष्टासि देवेन तत एवारभ्यास्य कामो गुरुः, चन्द्रमा जीवितेशः, मलयमरुदुच्छ्वासहेतुः, आधयोऽन्तरङ्गस्थानेषु, संतापः, परमसुहृत्, प्रजागर आप्तः, मनोरथाः सर्वंगताः, निःश्वासा विग्रहाग्रेसराः, मृत्युः पार्श्ववर्ती, रणरणकः संचारकः संकल्पा बुद्ध्युपदेशवृद्धाः । किंच

वश्या । व्यावृणु प्रकटय । वरवर्णिनि वरारोहे । लोलुपतां साभिलाषत्वम् । 'चलार्थकौ निगद्येते पारिप्लवपरिप्लवौ' । बालिशोऽज्ञः । चारणता धूर्तता । असाधारणानन्यसदृशी । देवी देवेनेति च परस्परसमगुणयोगित्वमभिव्यनक्ति । गुरुर्गरीयान्, उपदेष्टा वा । तद्वशवर्तित्वात् । यश्च देवस्तस्य गुरुराचार्यः कश्चिदवश्यं सम्भवति । जीवितस्येश्वरः स्वामी जीवितेशः । शिशिरतया मदनदाहप्रशमनहेतुत्वात् । अमृतमयत्वेन च जीवितसन्धारणशक्तत्वात् । अथ च जीवितेशो मृत्युः । चन्द्रादयो ह्यापातत एव तापं शमयन्ति, अनवरतं सेव्यमानाः पुनः कामोद्दीपकत्वेन मृत्युं दिशन्ति । राजपक्षे जीवितेशः कश्चित्पुरोहितप्रायः । उच्छ्वसनमुच्छ्वासस्तत्र हेतुः । अथ च श्वासोत्क्रान्तौ कारणम्, इतरत्र सचिवप्राया विश्वसनीयाः । आधयश्चित्तपीडाः । अत एवान्तरङ्गमन्तःशरीरं यानि स्थानानि तेषु, इतरत्रान्तरङ्गान्तर्वंशिकस्तत्स्थानेषु विश्वसनीयजनाधिकारेषु । परं प्रकृष्टम् । असुहृरोऽमित्रो वा । अन्यत्र—परमसुहृन्मित्रं च । आप्तं प्राप्तो बान्धवप्रायः कश्चित् । सर्वंगताश्चारा अपि संस्थाख्याः । विग्रहो विरोधः, देहश्च । मृत्युरिति । त्वदनङ्गीकारेण निश्चितं

वश में कर ले । अरी वरारोहे मालती, कह, क्या कहना चाहती है ?' वह बोली—'देवी तू जानती ही है कि विषय मधुर लगते हैं, इन्द्रियाँ लोलुप होती हैं, नई जवानी मतवाली होती है और मन चञ्चल रहता है । काम को रोकना कठिन है यह बात प्रसिद्ध ही है । तो मुझे तू उपालम्भन न देना । मेरे इस वाचालता का कारण मूर्खता, चपलता या धूर्तता नहीं है । स्वामी की असाधारण भक्ति क्या नहीं कराती ? जब से तुम्हें उन्होंने देखा है तभी से कामदेव उनका आचार्य बन बैठा है, चन्द्रमा उनके प्राणों का अधिपति हो गया, मलयानिल उनके उच्छ्वास का कारण बन गया, मन की व्यथाएँ अन्तरंग बन गई, सन्ताप परममित्र बन गया, जागरण आत्मीय हो गया, मनोरथ अव्यवस्थित हो गए, निःश्वास विरह के आगे

विज्ञापयामि । अनुरूपो देव इत्यात्मसंभावना, शीलवानिति प्रक्रम-विरुद्धम्, धीर इत्यवस्थाविपरीतम्, सुभग इति त्वदायत्तम्, स्थिर-प्रीतिरिति निपुणोपक्षेपः, जानाति सेवितुमित्यस्वामिभावोचितम्, इच्छति दासभावमामरणात्कर्तुमिति धूर्तालापः, भवनस्वामिनी भवेत्युप-प्रलोभनम्, पुण्यभागिनी भजति भर्तारं तादृशमिति स्वामिपक्षपातः, त्वं तस्य मृत्युरित्यप्रियम्, अगुणज्ञासीत्यधिक्षेपः, स्वप्नेऽप्यस्य बहुशः कृतप्रसादासीत्यसाक्षिकम्, प्राणरक्षार्थमर्थयत इति कातरता, तत्र गम्यतामित्याज्ञा, वारितोऽपि बलादागच्छतीति परिभवः । तदेवमगोचरे गिरामसीति श्रुत्वा देवी प्रमाणम्' इत्यभिधाय तूष्णीमभूत ।

अथ सरस्वती प्रीतिविस्फारितेन चक्षुषा प्रत्यवादीत्—'अयि,

म्रियते । राज्ञोऽपि पार्श्वे मृत्युस्तिष्ठत्येव । रणरणको दुःखमरतिकृतम् । अत एव संचारक एकत्र नरे सम्भवदितरत्र संचारयति, चरितं वस्तु यः प्रापयते सः । द्विविधा हि चाराः—संस्थाः, संचारकाश्च । वृद्धा महान्तः स्थविराश्च । अनुरूप इत्यादिनेदमिदं तत्रास्तीति वक्रोक्त्या सातिशयं मालती वैदग्ध्येनाह । प्रक्रम आरम्भः । निपुणोपक्षेपो बुद्धिमत्प्रक्रमः । धूर्तालापः प्रतारणावचनम् । वारित इति । भवत्येवेत्यर्थात् ।

चलने लगे, मृत्यु पार्श्वचर हो गई, मानसिक दुःख ही संचारक बने, संकल्प ही बुद्धि के उपदेशक-वृन्द बने । और क्या कहूँ ? अगर कहती हूँ 'देव दधीच सुयोग्य हैं', अपने सम्मान की बात होती है; 'वे सुशील है' तो बात प्रसंग के विरुद्ध होती है; 'धीर हैं' यह बात मदनावस्था से विपरीत है, 'सुभग हैं' यह तो तुम कह सकती हो; 'उनकी प्रीति स्थिर है' यह चतुरता की बात होती है; 'सेवा करना वे जानते हैं' यह कहना स्वामी के लिए उचित नहीं; 'मरने तक तुम्हारी दासता चाहते हैं' प्रलोभन हुआ; 'धन्यभाग नारी हो ऐसे पति को प्राप्त करती है' यह स्वामी के स्तुति में पक्षपात करना है; 'तू उसकी मृत्यु है' यह बात अप्रिय होती है; 'तू गुणों को नहीं समझती' यह निन्दा की बात होती है; 'स्वप्न में भी तुमने इस पर बहुत बार प्रसन्नता की' इस बात में कोई साक्षी नहीं; 'अपने प्राणों की भीख माँगता है' यह कातरता है; 'वहां जाओ' यह आज्ञा होती है; 'रोकने पर भी हठपूर्वक आता है' यह अनादर की बात है । इस प्रकार तुमसे मैं कुछ नहीं कह पाती । यह सुन कर आप ही प्रमाण हैं । यह कहकर चुप हो गई ।

तब सरस्वती प्रीति से विस्फारित आंखों से (उसे देखती हुई) बोली—'सखी मालती,

न शक्नोमि बहु भाषितुम्। एषास्मि ते स्मितवादिनि वचसि स्थिता। गृह्यन्ताममी प्राणाः' इति। मालती तु देवि, यदाज्ञापयसि, अतिप्रसादाय' इति व्याहृत्य प्रहर्षपरवशा प्रणम्य प्रजविना तुरगेण ततार शोणम्। अगाच्च दधीचमानेतु च्यवनाश्रमपदम्। इतरा तु सखीस्नेहेन सावित्रीमपि विदितवृत्तान्तामकरोत्। उत्कण्ठाभारभृता च ताम्यता चेतसा कल्पायितं कथंकथमपि दिवसशेषमनैषीत्। अस्तमुपगते च भगवति गभस्तिमति, स्तिमिततरमवतरति तमसि, प्रहसितामिव सितां दिशं पौरंदरीं दरीमिव केसरिणि मुञ्चति चन्द्रमसि सरस्वती शुचिनि चीनांशुकसुकुमारतरे तरङ्गिणि दुकूलकोमलशयन इव शोणसैकते समुपविष्टा स्वप्नकृतप्रार्थना पादपतनलग्नां दधीचचरणनखचन्द्रिकामिव ललाटिकां दधाना, गण्डस्थलादर्शप्रतिबिम्बतेन 'चारुहासिनि, अयमसावाहृतो हृदयदयितो जनः'

प्रजविनेति साभिप्रायम्। अस्तमित्यादौ सरस्वती प्रतिपालयामासेति संबन्धः। गभस्तिमान्रविः। पौरंदर्यैन्द्री। दरी गुहा चीनेत्यादि सैकतविशेषम्। उपमानस्य तु दुकुलकोमल इत्युक्तम्। तरङ्गिणी प्रतिदिनं क्षीयमाणेन वारिणा कृतलेखे भङ्गियुक्ते च। चन्द्रिका कान्तिरत्र। ललाटालंकारो ललाटिका। चक्रवालं समूहः।

मैं बहुत बात नहीं कर सकती। हे स्मितवादिनि! मैं तेरी बात मान जाती हूँ। मेरे प्राणों की तू रक्षा कर।' 'देवि, अत्यन्त प्रसाद के लिए, जो आज्ञा।' मालती यह कह और अत्यन्त प्रसन्न हो प्रणाम करके अपने तेज घोड़े पर चढ़ सोन के उस पार चली गई और दधीच को लाने के लिए च्यवनाश्रम पहुँची। सरस्वती ने इस वृत्तान्त को सखी के स्नेह से सावित्री को भी सुना दिया। उत्सुकता से बोझिल एवं दुःखी चित्त के कारण कल्प के समान शेष दिन को किसी प्रकार विताया। जब भगवान् सूर्य अस्त हो गए, धीरे-धीरे अन्धकार भी उतरने लगा और चन्द्रमा, जैसे सिंह गुफा से निकलता है वैसे ही हँसती हुई उज्ज्वल पूर्व दिशा को छोड़ने लगा, तब सरस्वती पवित्र चीनांशुक के समान कोमल, और तरंगों के चिह्न वाली मानों चादर से युक्त कोमल शय्या के सदृश सोन की रेत पर आकर बैठी और प्रतीक्षा करने लगी। वह ललाट का आभूषण धारण कर रही थी, मानों वह स्वप्न में प्रार्थना करने के लिए पैरों पर गिरने से नखों की ज्योत्स्ना हो उसके गालों के आइने में चन्द्रमा प्रतिबिम्बित हो रहा था, मानों वह उसके कान के पास आकर काम का यह संदेश उसे सुना रहा था कि 'हे चारुहासिनी, देख, मैंने तेरे हृदय-दयित

इति श्रवणसमीपवर्तिना निवेद्यमानमदनसंदेशेवेन्दुना, विकीर्यमाण-नखकिरणचक्रवालेन बालव्यजनीकृतचन्द्रकलाकलापेनेव करेण वीजयन्ती स्वेदिनं कपोलपट्टम्, 'अत्र दधीचादृते न केनचित्प्रवेष्टव्यम्' इति तिरश्चीनं चित्तभुवा पातितां विलासवेत्रलतामिव बालमृणालिकामधिस्तनं स्तनयन्ती कथमपि हृदयेन वहन्ती प्रतिपालयामास। आसीच्चास्या मनसि—'अहमपि नाम सरस्वती यत्रामुना मनोजन्मना जानत्येव परवशीकृता। तत्र का गणनेतरासु तपस्विनीष्वतितरलासु तरुणीषु' इति।

आजगाम च मधुमास इव सुरभिगन्धवाहः, हंस इव कृतमृणालधृतिः, शिखण्डीव घनप्रीत्युन्मुखः, मलयानिल इवाहितसरसचन्दनधवलतनुलतोत्कम्पः, कृष्यमाण इव कृतकरकचग्रहेण ग्रहपतिना,

---

बालव्यजनं चामरम्। स्तनमध्ये प्रवेशाभावात्तिरश्चीनमित्युक्तम्। यश्च देत्री प्रवेशनिषेधननिमित्तं वेत्रलतां पातयति स तिरश्चीनः। स्तनयोरधिस्तनम्। विभक्त्यर्थेऽव्ययीभावः। कुचपृष्ठ इत्यर्थः। स्तनयन्ती कलयन्ती। स्तनिः शब्दार्थश्चौरादिकः। 'स्तनन्ती' इति वा पाठः। तपस्विनीषु वराकीषु।

आजगामेत्यादौ आजगामेति सम्बधः। सुरभिगन्धवाहो वातः सुरभिगन्धं च यो वहति। धृतिर्धारणम्, प्राणयात्रा च। घनः। सारसं सान्द्रं यच्चन्दनं तेन धवलया तनुलतयाहितत्रप उत्कम्पः कामधर्मो यस्य। अन्यत्र—चन्दनांश्च धवांश्च लान्ति श्रयन्ति यास्तन्व्यो लतास्तासामाहित उत्कम्पः कम्पनं येनेति। कृष्यमाण इत्युद्दीपनकारणत्वात्। करा रश्मयः, हस्तश्च करः। हस्तस्य कर्षणं समुचितम्।

दधीच को तेरे पास पहुँचा दिया।' हाथ के नखों की किरणें चारों ओर फैल रही थीं, मानों उसने चन्द्र की कलाओं को ही चँवर बना दिया हो, ऐसे हाथ को वह पसीने से तर अपने गालों पर झल रही थी, वह अपने स्तनों पर किसी प्रकार बाल मृणालिकाओं को धारण किये थी। 'यहाँ दधीच के अतिरिक्त कोई दूसरा प्रवेश न करे' इसलिए काम ने मानों अपनी वेत्र-लता वहाँ छोड़ दी थी। उसने मन में सोचा—'सरस्वती होकर भी मैं जब इस काम द्वारा सब कुछ समझते हुए भी परवश कर दी गई, तो उन बेचारी अति चपल स्वभाव वाली तरुण नारियों की क्या गणना ?'

तब (सुगन्धि पवन से युक्त) वसन्त के समान सुगन्धि से भरे हुए, (मृणाल से जीवन धारण करने वाले) हंस के समान मृणाल धारण किये हुए, (घन या मेघ में प्रीति से उत्सुक) मयूर के समान घन (दृढ़) प्रीति के कारण उत्सुक, (चन्दन और धव वृक्षों के आश्रय पाई

प्रेर्यमाण इव कन्दर्पोद्दीपनदक्षेण दक्षिणानिलेन, उह्यमान इवोत्कलिका-बहुलेन रतिसरसेन, परिमलसंपातिना मधुपपटलेन पटेनेव नीलेना-च्छादिताङ्गयष्टिः, अन्तःस्फुरता मत्तमदनकरिकर्णशङ्खायमानेन प्रति-सेन्दुना प्रथमसमागमविलासविलक्षस्मितेनेव धवलीक्रियमाणैककपो-लोदरो मालतीद्वितीयो दधीचः। आगत्य च हृदयगतदयितानूपुर-रवविमिश्रयेव हंसगद्गदया गिरा कृतसंभाषणो यथा मन्मथः समाज्ञा-पयति, यथा यौवनमुपदिशति, यथा विदग्धताध्यापयति, यथानु-रागः शिक्षयति, तथा तामभिरामां रामामरमयत्। उपजातविस्रम्भा चात्मानमकथयदस्य सरस्वती। तेन तु सार्धमेकदिवसमिव संवत्सर-मधिकमनयत्।

ग्रहपतिश्चन्द्रः। प्रेर्यमाण इति। अनिलस्योचितमेतत्कर्म। उह्यमान इति। जलस्यो-चितमेतत्। उत्कलिका, रुहरुहिका, ऊर्मयश्च। रसोऽभिलाषः, जलं च। परिमल आमोदः। पटलं समूहः। प्रतिमा प्रातिच्छन्दकम्। यथा मन्मथ इति। मन्मथस्य प्रभवनशीलत्वेनाज्ञादानमुचितम्। एवं सर्वत्रोपदिशतीति। इत्थमित्थं वर्तस्वेत्यु-पदेशः। देवताविषयं सम्भोगशृङ्गारवर्णनमनुचितमिति न तत्र विस्तरः प्रवर्तते। कुमारीत्वे च गान्धर्वविवाहो विस्तरेण न तथा वर्णितः शापनिर्वाहणमात्रपरत्वा-

---

हुई तन्वी लताओं में कम्पन पैदा करने वाले) मलयानिल के समान सान्द्र चन्दन के लेप से उज्ज्वल शरीर में कम्प से युक्त ग्रहपति दधीच मालती के साथ आये। मानों चन्द्र उन्हें किरण-रूपी हाथों से बाल पकड़ कर खींच लाया हो। काम को उद्दीप्त करने में दक्षिणानिल ने मानों उन्हें प्रेरित किया हो। अभिलाषाओं की तरंगों से भरा रतिरस मानों उन्हें ढो लाया हो। सुगन्ध पर झूलते हुए भौंरे उन पर छा रहे थे, मानों उनके अङ्ग नीले वस्त्र से ढँक रहे हों। उनके एक कपोल के भीतर चन्द्र प्रतिफलित होकर चमक रहा था, मानों मतवाले मदन-रूपी हाथी के कान का वह शङ्ख हो। या प्रथम मिलन के विलास स्वरूप स्मित से उनके कपोल के मध्यभाग की कान्ति और भी निखर गई हो। आकर उन्होंने हृदय में पहुँची हुई प्रिया के नुपूर की आवाज से मिली हुई हंस के समान गद्गद वाणी से बातचीत की। काम जो आज्ञा देता, यौवन जो उपदेश देता, अनुराग जो शिक्षा देता, विदग्धता जो समझाती, उसी प्रकार अपनी सुन्दरी प्रियतमा के साथ वे विहार करने लगे। जब पूरा विश्वास हो गया तब सरस्वती ने अपने आपको उनसे स्पष्ट कह दिया (कि मैं दुर्वासा के शाप से ग्रस्त होकर मर्त्य लोक में आई हुई सरस्वती हूँ)। दधीच ने सरस्वती के साथ-साथ रह कर एक वर्ष से अधिक समय को एक दिन के समान व्यतीत किया।

अथ दैवयोगात्सरस्वती बभार गर्भम्। असूत चानेहसा सर्वलक्षणाभिरामं तनयम्। तस्मै च जातमात्रायैव 'सम्यक्सरहस्याः सर्वे वेदाः सर्वाणि च शास्त्राणि सकलाश्च कला मत्प्रभावात् स्वयमाविर्भविष्यन्ति' इति वरमदात्। सद्भर्तृश्लाघया दर्शयितुमिव हृदयेनादाय दधीचं पितामहादेशात्समं सावित्र्या पुनरपि ब्रह्मलोकमारुरोह। गतायां च तस्यां दधीचोऽपि हृदये ह्लादिन्येवाभिहतो भार्गववंशसंभूतस्य भ्रातुर्ब्राह्मणस्य जायामक्षमालाभिधानां मुनिकन्यकामात्मसूनोः संवर्धनाय नियुज्य विरहातुरस्तपसे वनमगात्। यस्मिन्नेवावसरे सरस्वत्यसूत तनयं तस्मिन्नेवाक्षमालापि सुतं प्रसूतवती। तौ तु सा निर्विशेषं सामान्यस्तन्यादिना शनैः शनैः शिशू समवर्धयत्। एकस्तयोः सारस्वताख्य एवाभवत्, अपरोऽपि वत्सनामासीत्। आसीच्च तयोः सोदर्ययोरिव स्पृहणीया प्रीतिः।

अथ सारस्वतो मातुर्महिम्ना यौवनारम्भ एवाविर्भूताशेषविद्या-

दिति। वृत्तस्यान्यथा निजभर्तृत्यागो दोषावहः किमर्थं कृत इत्यादिकाः कुविकल्पा उत्पद्येरन्निति।

अनेहसा कालेन। रहस्यं ज्ञानमार्गः। ह्लादिनी वज्रम्।

तत्पश्चात् दैवयोग से सरस्वती ने गर्भ धारण किया और समय से सब लक्षणों वाले सुन्दर पुत्र को उत्पन्न किया और जन्म लेते ही उसे वर दिया—'मेरे प्रभाव से सम्यक् प्रकार से रहस्यों के साथ वेद, समस्त शास्त्र, समस्त कलाएँ स्वयं आविर्भूत हों। उत्तम पति के गौरव से मानो दिखाने के लिए हृदय में दधीच को रखकर ब्रह्मा जी के आदेश के अनुसार फिर सरस्वती सावित्री के साथ ब्रह्मलोक को चली गई। उसके चले जाने से दधीच के हृदय पर गहरा वज्रपात-सा हुआ। तब उन्होंने अपने पुत्र को पालने-पोसने के लिए भार्गववंश में उत्पन्न किसी ब्राह्मण भाई की पत्नी अक्षमाला नामक मुनिकन्या के पास रख दिया और स्वयं सरस्वती के विरह में आतुर होकर तपस्या करने के लिए वन में चले गये। जब सरस्वती ने पुत्र पैदा किया था तभी अक्षमाला को भी एक पुत्र हुआ था। उन दोनों को एक भाव से दूध पिलाकर उसने पाला-पोसा और बढ़ाया। उनमें से एक का नाम सारस्वत हुआ और दूसरे का नाम वत्स। दोनों में भाई के समान स्पृहणीय प्रेमभाव था।

माता के प्रभाव से सारस्वत में यौवन का आरम्भ होते ही सारी विद्याएँ प्रगट हो गईं

संभारस्तस्मिन्सवयसि भ्रातरि प्रेयसि प्राणसमे सुहृदि वत्से वाङ्मयं समस्तमेव संचारयामास। चकार च कृतदारपरिग्रहस्यास्य तस्मिन्नेव प्रदेशे प्रीत्या प्रीतिकूटनामानं निवासम्। आत्मनाप्याषाढी, कृष्णाजिनी, अक्षवलयी, वल्कली, मेखली, जटी च भूत्वा तपस्यतो जनयितुरेव जगामान्तिकम्।

अथ वत्सात्प्रवर्धमानादिपुरुषजनितात्मचरणोन्नतिः, निर्गतप्रघोषः, परमेश्वरशिरोधृतः, सकलकलागमगम्भीरः, महामुनिमान्यः, विपक्षक्षोभक्षमः, क्षितितललब्धायतिः, अस्खलितप्रवृत्तो भागीरथीप्रवाह इव

वाक्प्रस्तुता यत्र तद्वाङ्मयम्। 'आषाढसंज्ञो दण्डः स्यात्पालाशो व्रतचारिणाम्। वृक्षत्वङ्निर्मितं वस्त्रं वल्कलं समुदाहृतम्॥' मेखला मुञ्जतृणादिरचितं कटिसूत्रम्। जटा रूक्षसंहतकेशाः।

अथेत्यादौ। वत्सात्प्रावर्तत विमलो वंश इति संबन्धः। प्रवर्धमानाः संतानादिना वृद्धिं गच्छन्तो य आदिपुरुषाः पूर्वबान्धवाः शुक्राद्यास्तैः कृताः स्वेषां चरणानां कठादिशाखाध्यायिनामुन्नतिरुत्कर्षो यस्य सः। अन्यत्र—प्रवर्धमानस्तु वामनरूपो य आदिपुरुषो हरिस्तेन जनिता स्वपदोन्नतिर्माहात्म्यं यस्य स इति। किल त्रैलोक्या-

---

तो उसने प्राण के समान प्रिय अपने समवयस्क भाई तथा मित्र वत्स ने भी समस्त वाङ्मय को उड़ेल दिया और वत्स का विवाह करा उसी प्रदेश में प्रीति के कारण प्रीतिकूट नाम का निवास बनवाया। और खुद वह पलाश का डंडा, कृष्ण मृगचर्म, अक्षवलय, वल्कल, मेखला और जटा धारण करके तपस्या में लगे हुए पिता दधीच के ही पास चला गया।

वत्स से विमल-वंश पावन गङ्गा-प्रवाह की भांति चला, जिसके बढ़ते जाते हुए आदि-पुरुषों ने अपने चरणों—कठादि वैदिक शाखाओं के अध्ययन करने वालों—की उन्नति की (गङ्गाप्रवाह के पक्ष में—बढ़ते जाते हुए वामनरूप आदिपुरुष ने जिसकी पदोन्नति या माहात्म्य उत्पन्न किया), जिसका निर्घोष (यश) निकल फैला (पक्ष में—शब्द या ध्वनि होती रहती है), जिसे (या जिसकी आज्ञा को) परमेश्वर अर्थात् राजाओं ने शिर से धारण किया (पक्ष में–परमेश्वर अर्थात् शिव जी ने शिर से धारण किया), जो समस्त कलाओं के आगम (अध्ययन या अज्ञान) से गम्भीर था (पक्ष में—जिसका आगमन कलकल शब्द के साथ होता है), जो महामुनियों का मान्य था। (पक्ष में—महामुनि अर्थात् जह्नु ने जिसका मान किया), जो विपक्षों-शत्रुओं के क्षोभ उत्पन्न करने में समर्थ था (पक्ष में—जो अपने

पावनः प्रावर्तत विमलो वंशः । यस्मादजायन्त वात्स्यायनो नाम गृहमुनयः, आश्रितश्रौता अप्यनालम्बितालीकबककाकवः, कृतकुक्कुटव्रता अप्यबैडालवृत्तयः, विवर्जितजनपङ्क्तयः, परिहृतकपटकौरुकुचीकूर्चाकूताः, अगृहीतगह्वराः, न्यक्कृतनिकृतयः, प्रसन्नप्रकृतयः, विहतविकृतयः, परपरीवादपराचीनचेतोवृत्तयः, वर्णत्रयव्यावृत्ति-

---

क्रान्तिकाले ब्रह्मलोकप्राप्ताद्विष्णुपदाद् ब्राह्मणा कमण्डलुजलक्षालिता गङ्गा समभवदिति वार्ता। प्रदोषो यशः, शब्दश्च। परमेश्वरो राजा, हरश्च। सकलानां कलानां वृत्ताद्यानामागमस्तेन सहकलकलेन च सकलकलं यदागमनं तेन च। महामुनिर्जह्नुरपि। विपक्षाः शत्रवः, शैलाश्च। वीनां पक्षिणां वा पक्षच्छेदेषु सहिष्णुः। आयतिः प्रतापः, विस्तारश्च। स्खलितं स्वाचारच्युतिः। प्रवृत्तः प्रकृष्टवृत्तः। अस्खलितं असंरुद्धं कृत्वा गतश्च। श्रौतं वेदभवम्, चिरवृत्तं च। 'भिन्नो भयाद्वा शोकाद्वा ध्वनिः काकुरुदाहृता'। अत्र च छद्म लक्ष्यते। बकस्य काकुः। बकच्छद्म यैश्च चिरवृत्तमाश्रितं ते छद्मचारित्वादाश्रितबककाकवो भवन्त्येव। अमी तु न तथेति विरोधः। कुक्कुटव्रतं नियमविशेषः। यत्र कुक्कुटाण्डप्रमाणग्रासभोजनम्। न बैडाली हिंसावृत्तिर्येषां तैः विरोधे तु कुक्कुटानां व्रतं भक्षणं येन कृतं स कथं बिडालवृत्तिर्न स्यात्? पङ्क्तिर्लोकप्रसिद्धो व्यवहारः, पाको वा। कपटो व्याजवृत्तिः। कूर्चाः स्फुटाः।

वेग से विपक्षों–पर्वतों को क्षुभित कर देता) पृथ्वीतल में जिसका आयति–प्रताप–व्याप्त हो गया था (पक्ष में—पृथ्वीतल में आयति–विस्तार–को प्राप्त हुआ है), जो कभी स्खलित अर्थात् अपने आचार से च्युत नहीं हुआ एवं प्रवृत्त अर्थात् प्रकृष्ट वृत्त या व्यवहार वाला था (पक्ष में—जो अस्खलित या बेरोक बहता रहता है। जिस वंश से वात्स्यायन नाम के असाधारण ब्राह्मण उत्पन्न हुए। वे गृहमुनि (गृहस्थ होते हुए भी मुनि-वृत्ति रखने वाले) थे। श्रौत या चिरवृत्त का आश्रयण करके भी वे मिथ्या बगुलों जैसे छल–छद्म से, बगला-भगती से अलग रहते थे), कुक्कुट का भक्षण (व्रत) करते थे तथापि बिडालों जैसा व्यवहार (हिंसावृत्ति) नहीं रखते थे (परिहार यह कि वे कुक्कुटव्रत करके अर्थात् उस नियम का पालन करते जिसमें कुक्कुट के अण्डे भर का ग्रासमात्र भोजन करना चाहिए)। उन्होंने समाज के व्यवहार (अथवा किसी का बनाया भोजन) वर्जित रखा था। कपट, कुटिलता और शेखी बघारने की आदत उनमें न थी। पापों से बचते थे। शठता को दूर रखते थे। प्रसन्न स्वभाव वाले थे। उनमें किसी तरह का विकार न था। दूसरे की निन्दा से उनकी चित्तवृत्ति पराङ्मुखी थी। तीनों वर्णों (अपने गोत्र के अतिरिक्त ब्राह्मण, क्षत्रिय,

विशुद्धान्धसः, धीरधिषणाः, विधूताध्येषणाः, असङ्कसुकस्वभावाः, प्रणतप्रणयिनः, शमितसमस्तशाखान्तरसंशीतयः उद्घाटितसमग्रग्रन्थार्थग्रन्थयः, कवयः, वाग्मिनः, विमत्सराः, परसुभाषितव्यसनिनः, विदग्धपरिहासवेदिनः, परिचयपेशलाः, नृत्यगीतवादित्रेष्वबाह्याः, ऐतिह्यस्यावितृष्णाः, सानुक्रोशाः, सर्वातिथयः, सर्वसाधुसंमताः, सर्वसत्त्वसाधारणसौहार्दद्रवार्द्रीकृतहृदयाः, तथा सर्वगुणोपेता राजसेनानभिभूताः, क्षमाभाज आश्रितनन्दनाः, अनिर्स्त्रिशा विद्याधराः,

---

आत्ममहिम्ना व्यवहारः, समूह इत्यन्ये। एतेष्वाकूतं परिहृतं यैः। गह्वरं पापम्। निकृतिः शाठ्यम्। प्रकृतिः स्वभावः। पराचीनं पराङ्मुखम्। अन्धोऽन्नम्। धीरा स्थिरा। धिषणा बुद्धिः। अध्येषणा याच्ञा। असङ्कसुकः स्थिरः, मृदुर्वा। शाखाः कठाद्याः। संशीति संशयः। ग्रन्थिर्दुर्बोधः प्रदेशः। परिहासं विदन्ति, न तु स्वयं कुर्वन्ति। परिचयः संस्तवः। सुकुमाराः, अद्वन्द्वकूटा इत्यर्थः। अबाह्याः, न तु तदेकनिष्ठाः। ऐतिह्यमागमः। अनुक्रोशो दया। संमता इष्टाः। सौहार्दं प्रीतिः। सर्वे गुणा धैर्याद्याः। राज्ञां सेनया चानभिभूता ये च सर्वैर्गुणैः सत्त्वरजस्तमोभिर्युक्तास्ते कथं राजसेन गुणेनानभिभूता भवन्तीति विरोधः। एवमुत्तरत्र विरोध उद्भावनीयः। क्षमा क्षान्तिः, भूश्च। आश्रितानां नन्दना नन्दयितारः, देवोद्यानं नन्दनं च। न निर्स्त्रिशा अक्रूराः। विद्यां धारयन्तीति विद्याधराः पण्डिताः, निर्स्त्रिशाश्च

वैश्य) को पृथक् करके पवित्र अन्न ग्रहण करते थे। उनकी बुद्धि स्थिर थी। उन्होंने याचना की वृत्ति को तिरस्कृत कर दिया था। उनका स्वभाव स्थिर या मृदु था। उनके मित्रजन अनुकूल थे। उन्होंने समस्त अन्य (वैदिक) शाखाओं के सन्देहों को भी दूर किया था। सारे ग्रन्थों की ग्रन्थियां भी उन्होंने उद्घाटित की थीं। वे कवि, वक्ता और मत्सरहित थे। दूसरों के सुभाषित को सुनने के शौकीन थे। विदग्ध जनों के परिहासों के जानकार थे। मिलने-जुलने में कुशल थे। नृत्य, गीत और वाद्य से बाहर नहीं थे। आगम या ऐतिह्य में तृष्णारहित न थे। दयावान्, सबके पूज्य, सभी सज्जनों के इष्ट थे। सभी प्राणियों के प्रति एक समान सौहार्द के कारण उनका हृदय आर्द्र था (सभी प्रकार के गुणों से युक्त था)। (फिर भी) राजस (गुण) से अभिभूत न थे। (परिहार में राजसेना से अभिभूत न थे)। पृथ्वी पर रहते थे (फिर भी) नन्दन (देवोद्यान) के आश्रित थे (परिहार यह कि क्षमा रखते थे एवं अपने आश्रितों को प्रसन्न रखते थे) निर्स्त्रिश या खड्ग धारण नहीं करते थे (फिर भी) विद्याधर (एक प्रकार के देवभूत प्राणी जो नियमितरूप से खड्ग धारण करते हैं) थे (परिहार यह कि क्रूर नहीं थे तथा विद्या के धारण करने वाले (पण्डित)

अजडाः कलावन्तः, अदोषास्तारकाः, अपरोपतापिनो भास्वन्तः, अनुष्माणो हुतभुजः, अकुसृतयो भोगिनः, अस्तम्भाः पुण्यालयाः, अलुप्तक्रतुक्रिया दक्षाः, अव्यालाः कामजितः, असाधारणा द्विजातयः।

तेषु चैवमुत्पद्यमानेषु, संसरति च संसारे, यात्सु युगेषु, अवतीर्णे

खड्गा एव। ये च विद्याधरा देवभूतास्ते सखड्गा एव। न त्वनिर्स्त्रिंशा इति माला-खड्गगुलिकाञ्जनादिना भेदेन भिन्नानामपि विद्याधराणां खड्गहस्तत्वं न व्यभिचरति। अजडा अमन्दधियः, अशीताश्च। कलावन्तो गीताभिज्ञाः, कलावांश्चन्द्रः स चाजडोऽशीत इति विरोधः। दोषा द्वेषाद्याः, रात्रिश्च। तारयन्तीति तारका आचार्याः, नक्षत्राणि च। उपतापः पीडा, उष्णत्वं च। भास्वन्तस्तेजस्विनः, आदित्याश्च। ते परांस्तापयन्ति। उष्मा स्मयः, दाहिकाशक्तिश्च। हुताशशब्देन हुतमिष्टमुच्यते। हुतं भुञ्जते हुतभुजः, आहिताग्न्यो वह्नयश्च। कुसृतिः शाठ्यम्, कौ भूमौ सृतिः सरणम्। भोगिनः सुखिनः, सर्पाश्च। स्तम्भः स्तब्धता, सात्त्विको भावभेदश्च, अप्रणतिर्वा, गृहधारणकाष्ठं च। पुण्यालयाः सुकृतिनः, मठादिस्थानानि च। दक्षाश्चतुराः, प्रजापतिभेदश्च दक्षः। स च लुप्तक्रतुक्रियो हररोषजेन वीरभद्रेण। व्यालाः शठाः, सर्पाश्च। कामजितः संतुष्टाः, हरश्च कामजित्। असाधारणाः सर्वोत्कृष्टाः। द्विजातयो विप्राः। येषां च द्वे जाती तेषां कथं नासादृश्यम्।

काल इति पूर्वोक्ते। अन्यथैतत्पुनरुक्तं स्यात्। पक्षपातो भक्तिर्यस्यास्ति सः,

---

थे)। कलावान् (चन्द्र) थे (फिर भी) अजड (अशीत) थे (परिहार यह कि गीत आदि कला उन्हें अभ्यस्त थीं एवं जड बुद्धि वाले न थे)। दोषा (रात्रि) नहीं थे (फिर भी) तारक (नक्षत्र) नहीं थे (परिहार यह कि द्वेष आदि दोषों से रहित थे और उद्धार करने वाले (तारक) आचार्य थे। दूसरों को उपताप देने वाले न थे (फिर भी) सूर्य थे (परिहार में, तेजस्वी थे)। उनमें उष्मा (जलाने की शक्ति) न थी (फिर भी) हुतभुज् (अग्नि) थे (परिहार में उष्मा अर्थात् अहङ्कार से रहित एवं आहिताग्नि थे)। भूमि में नहीं सरकते थे (फिर भी) भोगी अर्थात् सर्प थे (परिहार में कुसृति या शाठ्य नहीं करते एवं भोगी अर्थात् सुखी थे)। (स्तम्भ-रहित थे)। उनके यज्ञकार्य लुप्त नहीं थे (फिर भी) दक्ष (एक प्रजापति, जिसके यज्ञकार्य को वीरभद्र ने विध्वंस कर डाला था) थे (परिहार में दक्ष अर्थात् चतुर थे)। व्याल अर्थात् सर्प से रहित थे (फिर भी) कामजित् अर्थात् शिव थे (परिहार में व्याल अर्थात् शठ न थे एवं काम को जीत लेने वाले थे)।

इस प्रकार उस वंश में ब्राह्मण उत्पन्न होते गए, संसार-चक्र सरकता गया, युग बीते,

कलौ, वहत्सु वत्सरेषु, व्रजत्सु वासरेषु, अतिक्रामति च काले प्रसव-परम्पराभिरनवरतमापतति विकाशिनि वात्स्यायनकुले, क्रमेण कुबेर-नामा वैनतेय इव गुरुपक्षपाती द्विजो जन्म लेभे। तस्याभवन्नच्युत ईशानो हरः पाशुपतश्चेति चत्वारो युगारम्भा इव ब्राह्मतेजोजन्यमान-प्रजाविस्तारा नारायणबाहुदण्डा इव सच्चक्रनन्दकास्तनयाः। तत्र पाशुपतस्यैक एवाभवद् भूभार इवाचलकुलस्थितिः स्थिरश्चतुरुदधि-गम्भीरोऽर्थपतिरिति नाम्ना समग्राग्रजन्मचक्रचूडामणिर्महात्मा सूनुः। सोऽजनयद् भृगुं हंसं शुचिं कविं महीदत्तं धर्मं जातवेदसं चित्रभानुं त्र्यक्षं महिदत्तं विश्वरूपं चेत्येकादश रुद्रानिव सोमामृतरसशीकरच्छु-रितमुखान्पवित्रान्पुत्रान्। अलभत च चित्रभानुस्तेषां मध्ये राजदेव्य-भिधानायां ब्राह्मण्यां बाणमात्मजम्। स बाल एव बलवतो विधेर्व-

---

पक्षैश्च यो याति सः। द्विजो विप्रः, विधुः, पक्षी च। युगारम्भा अपि चत्वारः। ब्रह्म वेदादि, स्रष्टा च ब्रह्मा। सच्चक्रस्य साधुवृन्दस्य नन्दकास्तोषतियारः। चक्रं सुदर्शनं च। नन्दकः खड्गश्च। बाहवोऽपि चत्वारः। अचलकुलस्थितिरभिन्नवर्ष-

---

कलिकाल आया, साल के साल गुजरे, दिन बीते, समय बहुत चला गया। वात्स्यायन-कुल जन्म-परम्परा से निरन्तर विकसित होता गया। इसी क्रम में गुरु में पक्षपात (भक्ति) करने वाले कुबेर नामक द्विज विनता के पुत्र गरुड़ के समान हुए (गरुड़ भी अपने गम्भीर पक्षों से पतन या गमन करते हैं तथा द्विज अर्थात् पक्षी हैं)। उनके चार पुत्र हुए—अच्युत, ईशान, हर और पाशुपत, जो चार युगारम्भ के समान थे, जिनके ब्राह्म तेज से सन्तति चारों ओर फैल रही थी, नारायण के बाहुदण्ड की भाँति जो साधुवृन्द को सन्तुष्ट करते थे (नारायण का बाहु-दण्ड सुदर्शन नामक चक्र और नन्दकनामक खड्ग से युक्त है)। उसमें पाशुपत के एक ही अर्थपति नामक पुत्र भू-भार की भाँति कुल-मर्यादा का पालन करने वाले (पक्ष में अचल अर्थात् पर्वतों के कुल (समूह) के कारण स्थित रहने वाला), स्थिर, समुद्र की भाँति गम्भीर, समस्त ब्राह्मणों के चूडामणि एवं महात्मा पुत्र हुए। अर्थपति ने रुद्रों के समान ग्यारह पुत्र उत्पन्न किये—भृगु, हंस, शुचि, कवि, महीदत्त, धर्म, जातवेदस्, चित्रभानु, त्र्यक्ष, अहिदत्त और विश्वरूप। जो सोम (तृण-विशेष अथवा चन्द्रमा) के अमृतमय शीकर से सिक्त मुख वाले और पवित्र थे। उनमें से चित्रभानु ने राजदेवी नामक ब्राह्मणी में बाण नामक पुत्र को पाया। बल-वान् दैवयोग से बाण बाल्यकाल में ही माता के मर जाने से मातृहीन हो गया। स्नेह उत्पन्न

शादुपसंपन्नया व्ययुज्यत जनन्या। जातस्नेहस्तु नितरां पितैवास्य मातृतामकरोत्। अवर्धत च तेनाधिकतरमाधीयमानधृतिर्धाम्नि निजे।

कृतोपनयनादिक्रियाकलापस्य समावृत्तस्य चास्य चतुर्दशवर्षदेशीयस्य पितापि श्रुतिस्मृतिविहितं कृत्वा द्विजजनोचितं निखिलं पुण्यजातं कालेनादशमीस्थ एवास्तमगमत्। संस्थिते च पितरि महता शोकेनाभीलमनुप्राप्तो दिवानिशं दह्यमानहृदयः कथंकथमपि कतिपयान्दिवसानात्मगृह एवानैषीत्। गते च विरलतां शोके शनैः शनैरविनयनिदानतया स्वातन्त्र्यस्य, कुतूहलबहुलतया च बालभावस्य, धैर्यप्रतिपक्षतया च यौवनारम्भस्य, शैशवोचितान्यनेकानि चापलान्याचरन्नित्वरो बभूव। अभवंश्चास्य सवयसः समानाः सुहृदः सहा-

---

मर्यादः। अचलानां गिरीणां कुलैर्वृन्दैः स्थितिर्यस्य। चतुरुदधिवत्तैश्च गम्भीरः। अग्रजन्मानो द्विजाः। सोमस्तृणभेदः, इन्दुश्च। उपसंपन्ना मृता। निजे धाम्नि स्वे गृहे।

उपनयनं मेखलादानम्। समावृत्तो निष्पादितवृत्तः। स्नातक इत्यर्थः। वेदवेदाङ्गपाठक इत्यन्ये। ईषदसमाप्तश्चतुर्दशवर्षश्चतुर्दशवर्षदेशीयः। 'श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः'। दशामुपेतो दशमीस्थ उदाहृतः, न दशमीस्थः। अपूर्णायुरित्यर्थः। संस्थितो मृतः। आभीलं कष्टम्। इत्वरो गमनशीलः। 'अभवंश्च'

हो जाने से पिता ने ही पूर्णरूप से उसकी माता के स्थान की पूर्ति की और उनके द्वारा अधिकतर धैर्य धारण कराया जाता हुआ वह अपने घर पर बढ़ा।

बाण के उपनयन आदि कार्य-कलाप हुए और उसका समावर्तन-संस्कार भी हो चुका। बाण की आयु चौदह वर्ष की भी पूरी नहीं होने पाई थी कि उसके पिता भी वेद (श्रुति) और धर्मशास्त्र (स्मृति) द्वारा विहित एवं ब्राह्मणजन के उचित समस्त पुण्य-कर्मों को सम्पन्न करके बिना वृद्धावस्था† को प्राप्त हुए चल बसे। पिता के मरने पर उसे महान् शोक के कारण कष्ट हुआ और दिन-रात हृदय में खौलते हुए उसने अपने घर पर ही कुछ दिन बिताये। धीरे-धीरे जब उसका शोक कम हुआ तब उसे वह स्वतंत्रता मिल गई जिससे अविनय या अनुशासनहीनता बढ़ती गई। लड़कपन में बहुत से कुतूहल हो जाते हैं। यौवन का आरम्भ धैर्य को नहीं रहने देता। इसलिए बाण शैशवकाल के उचित अनेक चपलताओं में पड़ कर आवारा (इत्वर) हो गया। अब तो उसके बहुत से सुहृद्

---

† शङ्कर के अनुसार दशा को प्राप्त, (शत-वर्ष की) पूर्ण आयु को पहुँचा व्यक्ति दशमीस्थ होता है। हिन्दू-संस्कृति में मनुष्य की आयु सौ वर्ष की मानी गई है, किन्तु चतुर्दशवर्षीय बाण के पिता अभी पूर्णायु नहीं थे, चल बसे।

याश्च । तथा च । भ्रातरौ पारशवौ चन्द्रसेनमातृषेणौ, भाषाकविरीशानः परं मित्त्रम्, प्रणयिनौ रुद्रनारायणौ, विद्वांसो वारबाणवासबाणौ, वर्णकविर्वेणीभारतः प्राकृतकृत्कुलपुत्रो वायुविकारः, बन्दिनावनङ्गबाणसूचीबाणौ, कत्यायनिका चक्रवाकिका, जाङ्गुलिको मयूरकः, ताम्बूलदायकश्चण्डकः, भिषक्पुत्रो मन्दारकः, पुस्तकवाचकः सुदृष्टिः, कलादश्चामीकरः हैरिकः सिन्धुषेणः, लेखको गोविन्दकः, चित्रकृद्वीरवर्मा, पुस्तकृत्कुमारदत्तः, मार्दङ्गिको जीमूतः, गायनौ सोमिलग्रहादित्यौ, सैरन्ध्री कुरङ्गिका, वांशिकौ मधुकरपारावतौ, गान्धर्वो-

---

इत्यादिनात्मनस्तथाभूतकलावित्संपर्कमैश्वर्यातिशयं दर्शयति । पारशवो द्विजः शूद्रायां जातः । 'परस्त्री परश्वम्' इति बिदाद्यञ् परश्वादेशश्च । भाषागेयवस्तुवाचस्तेषु वर्णकविः । गाथादिषु गीतिद इत्यर्थः । अपभ्रष्टगीतविद्यः । 'पञ्चाशद्वर्षदेशीयां वीरां संस्थितभर्तृकाम् । वदन्ति कात्यायनिकां धृतकाषायवाससम्' ॥ जाङ्गुलिको गारुडिकः । भिषग्वैद्यः । 'स्वर्णकारः कलादः स्यात्तदध्यक्षस्तु हैरिकः' । पुस्तकृल्लेप्यकारः । 'प्रसाधनोपचारज्ञा सैरन्ध्री स्ववशा स्मृता' । संवाहिका या पादादिमर्दनं विधत्ते । लासको नर्तयति यः । युवेत्यादिना वयसः समानत्वमुच्यते ।

और सहायक मिल गए जो उसकी अवस्था के थे और उसी के समान (आवारा) थे। चन्द्रसेन और मातृषेण, जो शूद्रा माता से उत्पन्न द्विजपुत्र (पारशव) भाई थे, भाषाकवि† ईशान, जो बाण का परम मित्र था; रुद्र और नारायण, जो बाण के स्नेही थे; वारबाण और वासबाण, जो विद्वान् थे; वर्णकवि वेणी भारत; प्राकृत भाषा में रचना करने वाला कुलपुत्र वायुविकार; अनङ्गबाण और सूचीबाण, जो बन्दीजन थे; कात्यायनिकाएँ‡ चक्रवाकिका ; जाङ्गुलिक (विषवैद्य या गारूडी) मयूरक पान की खिल्ली लगा कर देने वाला चंडक, भिषक्पुत्र मन्दारक, पुस्तकवाचक सुदृष्टि, स्वर्णकार चामीकर, सुनारों का अध्यक्ष या हीरा काटने वाला सिन्धुषेण, लेखक गोविन्दक, चित्रकार वीरवर्मा, मिट्टी के खिलौने बनाने वाला (पुस्तकृत=लेप्यकार) कुमारदत्त, मृदङ्ग बजाने वाला जीमूत, गायक सोमिल और ग्रहादित्य सैरन्ध्री (प्रसाधिका=बनाव सिंगार करने वाली) कुरंगिका, वांशिक (वंशी बजाने वाले) मधुकर और पारावत, गान्धर्वोपाध्याय (संगीतगुरु) दर्दुरक, संवाहिका

---

† यह अपभ्रंश भाषा में गीत रचना करने वाला था ।

‡ कात्यायनिका—शङ्कर द्वारा उद्धृत वचन के अनुसार पचास वर्ष की अवस्था वाली, वीरा, मृतपतिका तथा काषाय वस्त्र धारण करने वाली स्त्री । 'अमरकोश' में भी—'कात्यायन्यर्धवृद्धा या काषायवसनाऽथवा ।' (मनुष्यवर्ग, १७)

पाध्यायो दर्दुरकः, संवाहिका, केरलिका लासकयुवा ताण्डविकः, आक्षिक आखण्डलः, कितवो भीमकः, शैलालियुवा शिखण्डकः, नर्तकी हरिणिका, पाराशरी सुमतिः, क्षपणको वीरदेवः, कथको जयसेनः, शैवो वक्रघोणः, मन्त्रसाधकः करालः, असुरविवरव्यसनी लोहिताक्षः, धातुवादविद्विहंगमः, दार्दुरिको दामोदरः, ऐन्द्रजालिकश्चकोराक्षः, मस्करी ताम्रचूडकः । स एभिरन्यैश्चानुगम्यमानो बालतया निघ्नतामुपगतो देशान्तरावलोकनकौतुकाक्षिप्तहृदयः सत्स्वपि पितृपितामहोपात्तेषु ब्राह्मणजनोचितेषु विभवेषु सति चाविच्छिन्ने विद्याप्रसङ्गे गृहान्निरगात् । अगाच्च निरवग्रहो ग्रहवानिव नवयौवनेन स्वैरिणा मनसा महतामुपहास्यताम् ।

अथ शनैः शनैरत्युदारव्यवहृतिमनोहृन्ति वृहन्ति राजकुलानि

अक्षैर्दीव्यतीत्याक्षिको द्यूतकारः । कितवो धूर्तः । शैलाली स्वयं यो नृत्यति नटः । पाराशरी भिक्षुः । असुरविवरव्यसनी पातालाभिलाषी । धातुवादविद्रसवादज्ञः । मस्करी परिव्राट् । निघ्नतामस्वातन्त्र्यम् । कौतुकेति । न पुनरर्थाभिलिप्सया । एतदेव सत्स्वपीत्यादिना प्रकाशयति । निरवग्रहः स्वतन्त्रः । ग्रहवान्भूतगृहीतः । स्वैरिणा स्वतन्त्रेण ।

अत्युदारेत्यादिः प्रकृतोपयोगी, यस्मात्कविना तथाविधवस्तुवेदिनावश्यमेव

(पैर दबाने वाली) केरलिका, नृत्य करने वाला ताण्डविक, आक्षिक (पासा खेलने वाला) शिखंडक, धूर्त भीमक, स्वयं नृत्य करने वाला युवक नट शिखण्डक, नर्तकी हरिणिका, पाराशरी (संन्यासी) सुमति, क्षपणक (जैन साधु) वीरदेव, कथक (कथावाचक) जयसेन, शैव-वक्रघोण, मन्त्रसाधक कराल, पाताल में घुम कर यक्ष या राक्षस को सिद्ध करने वाला लोहिताक्ष, रसायन बनाने को विद्या जानने वाला विहंगम, दर्दुर नामक घटवाद्य बजाने वाला दामोदर, ऐन्द्रजालिक चकोराक्ष, मस्करी (परिव्राजक) ताम्रचूड। ये मित्र तथा कुछ और भी लोग बाण के साथ चलते थे। लड़कपन के कारण वह विवश हो गया। उसके मन में देशान्तरों को देखने की बड़ी उत्कण्ठा थो। यद्यपि पिता-पितामह द्वारा उपार्जित ब्राह्मजन के उचित धन सम्पत्ति उसके घर थी और विद्या का अविच्छन्न प्रसंग भी प्राप्त था तथापि वह घर से निकल पड़ा। जैसे किसी पर ग्रहों की बाधा सवार हो वैसे ही स्वच्छन्द होकर और नवयौवन एवं स्वतंत्र मन के कारण बड़े लोगों की खिल्ली का पात्र बना।

तब उसने धीरे-धीरे बड़े-बड़े राजकुलों को देखा जिनमें होने वाले उदार व्यवहारों ने उसके मन को हर लिया। अनिन्द्य विद्याओं के (अध्ययन-अध्यापन) से उद्भासित गुरुकुलों में रहा। बड़ी-बड़ी गोष्ठियों में बैठने लगा जो गुणी जनों के बहुमूल्य आलाप के कारण

वीक्षमाणः, निरवद्यविद्याविद्योतितानि गुरुकुलानि च सेवमानः, महार्हालापगम्भीरगुणवद्गोष्ठीश्चोपतिष्ठमानः, स्वभावगम्भीरधीर्धनानि विदग्धमण्डलानि च गाहमानः, पुनरपि तामेव वैपश्चितीमात्मवंशोचितां प्रकृतिमभजत्। महतश्च कालात्तमेव भूयो वात्स्यायनवंशाश्रममात्मनो जन्मभुवं ब्राह्मणाधिवासमगमत्। तत्र च चिरदर्शनादभिनवीभूतस्नेहसद्भावैः ससंस्तवप्रकटितज्ञातेयैराप्तैरुत्सवदिवस इवानन्दितागमनो बालमित्रमण्डलमध्यगतो मोक्षसुखमिवान्वभवत्।

इति श्रीमहाकविबाणभट्टकृतौ हर्षचरिते वात्स्यायनवंशवर्णनं नाम प्रथम उच्छ्वासः।

—:०:—

भवितव्यम्। वीक्षमाण इत्यनेनात्मनः किमपि प्रकृष्टमुत्कर्षातिशययोगित्वमाह। अथ च वीक्षमाणो न तु गुरुकुलवत्सेवमानः। गाहमान इत्यनेन तेजस्वित्वमाहात्मनः। वैपश्चितीं विद्वज्जनोचिताम्। संस्तव आदरः। ज्ञातीनां कर्म ज्ञातेयं बन्धुत्वम्। 'कपिज्ञात्योर्ढक्'। आप्तैरिति। बन्धुभिर्योगिभिश्च। योगिपक्षे बाल इव बालो मित्रो रविर्निस्तेजस्त्वात्। उक्तं च—'तपस्यन्तं रविं दृष्ट्वा निस्तेजा जायते रविः। मोक्षमार्गप्रयत्ने तु तेजो नैवास्य विद्यते॥' इति। मित्रं सखा, सूर्यश्च मित्रः। मण्डलं समूहः। बिम्बम्। मोक्षसुखमपि सूर्यबिम्बगतैरनुभूयत इति। आख्यायिकासु कविभिर्निजवंशवर्णनं कानने तथा वंशः ख्यापितः स्यादिति। आत्मनश्च विटवर्णनम्। सकलकलाकौशलं ममास्तीति हर्षस्य चरिते च वर्णयितव्ये नाप्रस्तुतं चैतदिति शिवम्॥

इति श्रीशंकरकविरचिते हर्षचरितसंकेते प्रथम उच्छ्वासः।

गम्भीर थी। बाण स्वयं स्वभाव से गम्भीर था। उसे धन-सम्पत्ति प्राप्त हुई और विदग्धजनों के मण्डल में रहा। अन्त में फिर वह अपने कुल के योग्य विद्वान् बन गया। बहुत समय के बाद फिर वह अपनी जन्मभूमि और वात्स्यायनवंशी ब्राह्मणों के गांव प्रीतिकूट में पहुँचा। वहाँ बन्धुओं ने, जिनका स्नेह-सद्भाव बहुत दिनों के बाद देखने से नवीन हो गया और जिन्होंने आदरपूर्वक अपना बन्धुत्व प्रकट किया, उत्सव के दिन की भांति उसके आगमन का अभिनन्दन किया तथा उसने बाल्यकाल के मित्रों के बीच मोक्षसुख-जैसा अनुभव किया।†

श्रीमहाकविबाणभट्टविरचित हर्षचरित में 'वात्स्यायनवंशवर्णन' नामक प्रथम उच्छ्वास समाप्त।

---

†यहां 'बालमित्रमण्डलमध्यगतः' के प्रयोग से यह अर्थ भी व्यञ्जित होता है कि योगी लोग निस्तेज सूर्यमण्डल के मध्य में पहुँच कर मोक्ष-सुख का अनुभव करते हैं।

द्वितीय उच्छ्वासः

अतिगम्भीरे भूपे कूप इव जनस्य निरवतारस्य ।
दधति समीहितसिद्धि गुणवन्तः पार्थिवा घटकाः ॥ १ ॥
रागिणि नलिने लक्ष्मीं दिवसो निदधाति दिनकरप्रभवाम् ।
अनपेक्षितगुणदोषः परोपकारः सतां व्यसनम् ॥ २ ॥

अथ तत्रानवरताध्ययनध्वनिमुखराणि, भस्मपुण्ड्रकपाण्डुरललाटैः कपिलशिखाजालजटिलैः कृशानुभिरिव क्रतुलोभागतैर्बटुभिरध्यास्यमा-

---

अतीत्यादि । यस्य क्रोधादिभावगण इङ्गितादिना परेण न चेत्यते स गम्भीरः । उक्तं च–'यस्य प्रसादादाकारात्क्रोधहर्षभयादयः । भावस्या नोपलभ्यन्ते तद्गाम्भीर्यमुदाहृतम् ॥' इति । अगाधश्च । अवतरणमवतारः, प्रवेशनम् । अवतरन्ति येनेत्यवतारः, सोपानादिश्च । समीहितसिद्धि राजगृह आत्मनः प्रवेशलक्षणम् जलग्रहणलक्षणं च । गुणा औदार्यादयः, आकर्षणरज्जवश्च । पार्थिवा राजानः, पृथ्वीविकाराश्च । घटयन्ति वाञ्छितेन प्रयोजयन्तीति घटकाः, कुम्भाश्च । अनेन तादृशे राज्ञि बाणस्य कृष्ण एव समीहितसिद्धिरध्यास्यत इति सूचितम् ॥ १ ॥

रागिणि रक्ते, विषयाभिषङ्गिणि च । लक्ष्मीं शोभाम्, समृद्धि च । अत्र नलिनादिकमप्रस्तुतम् बाणाद्यास्तु प्रस्तुताः । अनेन कृष्ण ईदृशे बाणे राजप्रभवां श्रियं निधास्यतीत्युक्तम् ॥ १ ॥

अथेत्यादिना । बाणो बान्धवानां भवनानि भ्रमन्सुखमतिष्ठदिति संबन्धः । शिखा चूडा, ज्वाला च । सोमो यज्ञियं द्रव्यम् । केदारिका स्वल्पं क्षेत्रम् । प्रघटनेषु तथोचितत्वात् । अहरिता हरिताः संपद्यमाना हरितायमानाः लोहितादित्वात्क्यप् ।

जैसे किसी गहरे कुएँ से जल लेने के लिए सोपान आदि के अभाव से उतरना कठिन है ऐसी स्थिति में डोर के साथ घड़े की सहायता से जल निकालते हैं, उसी प्रकार अत्यन्त गम्भीर वाले राजा के पास न पहुँच पाया हुआ व्यक्ति गुणवान् संयोजक लोगों की सहायता से ही अपनी इष्ट-सिद्धि कर पाता है† ॥ १ ॥

राग से भरे हुए कमल में दिन सूर्य से उत्पन्न शोभा-सम्पत्ति को आहित कर देता है। दूसरे का उपकार करना सज्जनों का एक स्वाभाविक व्यसन होता है, जिसमें वे किसी के गुण-दोष की ओर ध्यान नहीं देते‡ ॥ १ ॥

वहाँ तब बाण स्नेहपूर्वक अपने चिरदृष्ट बन्धु-बान्धवों के घर जा-जाकर मिलता हुआ सुख से रहने लगा। ब्राह्मणों के वे घर निरन्तर अध्ययन की ध्वनि से मुखरहित हो रहे

---

† यहाँ गुणवान् पार्थिव घटक से कृष्णवर्धन का संकेत है जिन्होंने बाण की इष्टसिद्धि, उसे हर्षवर्धन से मिला कर, की थी। द्वितीय उच्छ्वास में यही प्रसंग वर्णित है।

‡ दिवस अर्थात् कृष्ण, सूर्य अर्थात् सम्राट् हर्ष से शोभा-सम्पत्ति लेकर मलिन अर्थात् बाण को अर्पित करते हैं, वह प्रस्तुत में तात्पर्य है।

नानि, सेकसुकुमारसोमकेदारिकाहरितायमानप्रघनानि, कृष्णाजिनविकीर्णशुष्यत्पुरोडाशीयश्यामाकतण्डुलानि, बालिकाविकीर्यमाणनीवारबलीनि, शुचिशिष्यशतानीयमानहरितकुशपूलीपलाशसमिन्धि, इन्धनगोमयपिण्डकूटसंकटानि, आमिक्षीयक्षीरक्षारिणीनामग्निहोत्रधेनूनां खुरवलयैर्विलिखिताजिरवितर्दिकानि, कमण्डलव्यमृत्पिण्डमर्दनव्यग्रयतिजनानि, वैतानवेदीशङ्कव्यानामौदुम्बरीणां शाखानां राशिभिः पवित्रितपर्यन्तानि वैश्वदेवपिण्डपाण्डुरितप्रदेशानि, हविर्धूमधूसरिताङ्गणविटपिकिसलयानि, वत्सीयबालकलालितललत्तरलतर्णकानि, क्रीडत्कृष्णसारच्छागशावक-

प्रघनान्यङ्गनानि । 'उशन्ति प्रघनामिख्यामेकदेशे तु वेश्मनः' । पुरोडाशीयेत्यादि सहितेत्यर्थं ईयः । बालिका कुमार्यः । नीवारा अकृष्टपच्या व्रीहयः । कूटो राशिः । आमिक्षीयमिति । तप्ते पयसि दध्यानयति सा वैश्वदेवामिक्षा । 'आमिक्षा सा शृतोष्णे या क्षीरे स्याद्दधियोगतः' इति । तस्यै हितमामिक्षीयम् । आमिक्षाप्रकृतित्वमस्य च योग्यत्वात् । अग्निहोत्रेषु तस्या अनाम्नातत्वात्, यद्वा,—यदन्नस्य जुहुयादिति । यस्या अपि हवनं भवत्येव । वलयैः समूहैः । वितर्दिका वेदिका । कमण्डलुर्मुनिकरकस्तस्मै हिताः कमण्डलव्याः । 'उगवादिभ्यो यत्' । यतीनां निष्किंचनत्वादादरत्वाच्च स्वयंकरणम् । वितानो यज्ञः, तत्र भवा वैतानो यज्ञाग्निकार्यभूः । शंकुः कीलकः, तस्मै हितः शङ्कव्य । औदुम्बरीणामिति । तासां याज्ञियत्वात । वत्सेभ्यो हिता वत्सीयाः वत्सपरिचर्यातुराः तर्णकाः सद्योजाता वत्साः । कृष्णसारेति छागविशेषणम् ।

थे । त्रिपुण्ड भस्म से मस्तक को उज्ज्वल किए हुए सोमयज्ञों के लोभी वटु वहां इकट्ठे थे जो कपिल वर्ण वाली ज्वाला की जटाओं से शोभित अग्नि के समान प्रतीत होते थे । आंगनों में सोम की क्यारियाँ सींचने से हरी हो रही थीं । बिछे हुए कृष्णाजिन पर पुरोडाश बनाने के लिए सांवा पसार कर सुखाया जा रहा था । कुमारी कन्याएँ बिना जोत के पके हुए नीवारों की बलि बिखेर रही थीं । सैंकड़ों शिष्य पवित्र होकर कुशा की हरी आंटियाँ और पलाश की समिधाएँ इकट्ठी कर रहे थे । जलावन के लिए लिए गोबर के कण्डों का ढेर लगा था । आमिक्षा† बनाने के योग्य दूध देने वाली गौएँ अपने खुरों से आँगन की वेदियाँ कोड़ रही थीं । यती योग कमण्डलुओं को मिट्टी से मलने में व्यग्र थे । वैतान अग्नियों की वेदी में लगाए जाने वाले शंकुओं के लिए गूलर की शाखाएँ किनारे रखी थीं । स्थान स्थान पर वैश्वदेवों के उजले पिण्डे रख दिए गए थे । आँगन के पेड़ के पत्ते यज्ञधूम से बिलकुल धूमिल हो रहे थे । देख-रेख करने वाले लड़के उचकते हुए सद्योजात

† एक प्रकार का दूध से बना यज्ञीय पदार्थ । यह तप्त दूध में दही डाल कर बनाया जाता है और वैश्वदेव के लिए अर्पित किया जाता है ।

प्रकटितपशुबन्धप्रबन्धानि, शुकसारिकारब्धाध्ययनदीयमानोपाध्यायविश्रान्तिसुखानि, साक्षात्त्रयीतपोवनानीव चिरदृष्टानां बान्धवानां प्रीयमाणो भ्रमन्भवनानि, बाणः सुखमतिष्ठत् ।

तत्रस्थस्य चास्य कदाचित्कुसुमसमययुगमुपसंहरन्नजृम्भत ग्रीष्माभिधानः समुत्फुल्लमल्लिकाधवलाट्टहासो महाकालः । प्रत्यग्रनिर्जितस्यास्तमुपगतवतो वसन्तसामन्तस्य बालापत्येष्विव पयःपायिषु नवोद्यानेषु दर्शितस्नेहो मृदुरभूत् । अभिनवोदितश्च सर्वस्यां पृथिव्यां सकलकुसुमबन्धन-

---

तदुक्तम्—'लोहितसारङ्गः कृष्णसारङ्गो वा' इति; सारङ्गशब्दः शबले वर्तते । कृष्णसारा मृगा इति केचित् । तत्तु न । तेषां तदानुपयुक्तत्वात् । पशुबन्धा यज्ञाः ।

कुसुमसमयो वसन्तः, स एव युगं कल्पस्तल्लक्षणं वा युगं मासद्वयम् । समुत्फुल्लमल्लिकाभिर्धवला अट्टा विक्रयस्थानानि तेषां विकासो यत्र, अन्यत्र—तद्वदट्टहास उद्धतं हसितं यस्य । शब्दशक्तिमूलानुरणनव्यङ्ग्यरूपो ध्वनिश्च । प्रकृतवर्णने ह्यन्यदप्यत्र प्रतीयते । न वाच्यतया । तथा च—महाकालः, साट्टहासः कल्पमुपसंहरञ्जृम्भते मुखं च विदारयति । महान्कालो ग्रीष्माख्यः भैरवश्च । पयो जलम्, क्षीरं च । बालापत्यपक्षे—नवमुद्यानमुद्गमनं येषां तेषु । इदम्प्रथमतयागमनप्रवृत्तेष्वित्यर्थः । दर्शितस्नेह इत्यनेनास्य विजिगीषुव्यवहार आरोपितः । निर्जितस्य च पुनः प्रतिष्ठापनमेव युक्तम् । स्नेहः आर्द्रता, प्रीतिश्च । मृदुरकठोरः सदयश्च । अभिनवोदित इति साधारणं विशेषणम् । वासन्तिकपुष्पाभिप्रायेण सकलपदबन्धनं वृन्तकारी च । प्रतपन्प्रकर्षेण तपन्; अन्यत्र,—शत्रुहृदयेषु प्रतापं जनयन् । अभिनवोदितश्च राजा बन्धनमोक्षं करोति । उक्तं हि—'युवराजाभिषेके वा परचक्रावरोपणे । पुत्रजन्मनि वा मोक्षो बन्धनस्य विधीयते ॥' इति । आदरप्रतिपादनाय

बछड़ों को प्यार कर रहे थे । किलोल करते हुए काले छाग शावक को देखकर वहाँ पशुबंध की तैयारी मालूम हो रही थी । शुक-सारिकाएँ स्वयं अध्ययन कराकर गुरुओं को विश्राम का सुख दे रही थी मानों ब्राह्मणाधिवास के वे भवन त्रयीविद्या के साक्षात् तपोवन थे ।

यहाँ बाण के रहते हुए वसन्त के दो महीनों का उपसंहार करता हुआ महाकाल ग्रीष्म में फूली हुई चमेली के अट्टहास के साथ जंभाई लेने लगा।† अभी-अभी पराजित होकर अस्तंगत होते हुए वसन्तरूपी सामन्त के दुधमुँहे नवजात बाल-बच्चों के समान जल से सींचे जाने वाले नये-नये उद्यानों पर (ग्रीष्म) स्नेह दिखलाता हुआ मृदु व्यवहार करने लगा । प्रताप फैलाते

---

†यह वाक्य साहित्यशास्त्र में शब्दशक्तिमूलानुरणनव्यङ्ग्यरूप ध्वनि का प्रसिद्ध उदाहरण है । यहाँ अप्रकृत अर्थ शब्द की शक्ति से इस प्रकार व्यञ्जित होता है—कल्प का अन्त (उपसंहार) करते हुए महाकाल या भैरव (शिव) ने विकसित मल्लिका के समान उज्ज्वल अट्टहास करते हुए जम्हाई ली ।

मोक्षमकरोत्प्रतप्रत्युषणसमयः । स्वयमृतुराजस्याभिषेकार्द्राश्चामरकलापा इवागृह्यन्त कामिनीचिकुरचयाः कुसुमायुधेन, हिमदग्धसकलकमलिनी-कोपेनेव हिमालयाभिमुखीं यात्रामदादंशुमाली ।

अथ ललाटंतपे तपति तपने चन्दनलिखितललाटिकापुण्ड्रकैरलक-चीरचीवरसंवीतैः स्वेदोदबिन्दुमुक्ताक्षवलयवाहिभिर्दिनकराराधननियमा इवागृह्यन्त ललनाललाटेन्दुद्युतिभिः । चन्दनधूसराभिरसूर्यम्पश्याभिः कुमुदिनीभिरिव दिवसमसुप्यत सुन्दरीभिः । निद्रालसा रत्नालोकमपि नासहन्त दृशः, किमुत जरठमातपम् । अशिशिरसमयेन चक्रवाकमिथुना-

---

स्वयं शब्दः । अभिषेकः स्नानम् । अन्यत्र–मङ्गलजलपातनं तत्संपर्कवशाच्चार्द्रत्वम् । चिकुराः केशाः । ते हि तदा स्नानार्द्रतया संयमनात्सुन्दरतया विशेषतः शृङ्गार-मुद्दीपयन्ति । तथा च महाकवेः कालिदासस्य—'स्नानार्द्रमुक्तेष्वनुधूपवासं विन्य-स्तसायंतनमल्लिकेषु । कामो वसन्तात्ययमन्दवीर्यः केशेषु लेभे रतिमङ्गनानाम्' ॥ यथा वा राजशेखरस्य—'तदा ते स्नातानां दरदलितमल्लीमुकुरिणाम्' इत्यादि । हिमाभिप्राये च हिमालयग्रहणम् । अंशून्मलति धारयतीत्यनेन हिमं प्रतिभवन-शीतलत्वमस्योच्यते ।

ललाटं तपतीति ललाटंतपः इति खश् । खरतर इत्यर्थः । ललाटेऽलंकारो ललाटिका । 'कर्णललाटात्कनलंकारे' । ललाटिकेव पुण्ड्रकं तिलकमिति सर्वत्र रूप-कम् । संवीतैः प्रावृतैः । चन्दनेन च तद्वद्धूसराः । असूर्यम्पश्याभिरिति । आतपासहिष्णुतया । अन्यत्र,–स्वभावात् । दिवसं सुप्यत इति द्रव्यकर्मणि लादि-विधानात्कर्मणि द्वितीयैव । भावे लः । यदा तु कर्माप्याख्याततया विवक्ष्यते तदा दिवसः सुप्यत इति भाव्यमिति निर्णीतम् । स्वापो निद्रा, मुकुलता च । जरठं कठोरम् । यतो ग्रीष्मेण तनूकृता अत आह—चक्रवाकेत्यादि । रात्रौ किल

हुए उषाकाल ने समस्त पृथिवी पर नवोदित होकर उसने फूलों के बन्धन खोले (जैसे राजा बन्दीगृह से बन्दियों को छोड़ता है ।) ऋतुराज वसन्त के अभिषेक द्वारा आर्द्र हुए सुन्दरियों के चामरकलाप के समान केशपाश में कुसुमायुध कामदेव ने साक्षात् निवास किया । सूर्य ने मानों हिम के कारण जली-कटी समस्त कमलिनियों के कोप से हिमालय की ओर यात्रा की ।

अब ललाट को तप्त करने वाले सूर्य तपने लगे । कमलिनियों के ललाटरूपी चन्द्रमा चन्दन के तिलक लगा, बालों के वस्त्रखण्ड पहन और पसीना के कणों को मुक्ता से बनी जपमालिका धारण कर सूर्य की नियमित रूप से उपासना करने लगे । चन्दन के लेप से धूसर वर्ण वाली सुन्दरियाँ कुमुदिनियों के समान सूर्यातप के न सहन करने से दिन में

भिनन्दिताः सरित इव तनिमानमानीयन्त सोडुपाः शर्वर्यः। अभिनवपटुपाटलामोदसुरभिपरिमलं न केवलं जलम्, जनस्य पवनमपि पातुमभूदभिलाषो दिवसकरसन्तापात्।

क्रमेण च खरखगमयूखे खण्डितशैशवे, शुष्यत्सरसि, सीदत्स्रोतसि, मन्दनिर्झरे झिल्लिकाझांकारिणि, कातरकपोतकूजितानुबन्धबधिरितविश्वे, श्वसत्पतत्त्रिणि, करीषंकषमरुति, विरलवीरुधि, रुधिरकुतूहलिकेसरिकिशोरकलिह्यमानकठोरधातकीस्तबके, ताम्यत्स्तम्बेरमयूथवमथुतिम्यन्महामहीधरनितम्बे, दिनकरदूयमानद्विरददीनदानाश्यानदानश्यामिकालीनमूकमधुलिहि, लोहितायमानमन्दारसिन्दूरितसीम्नि, सलिलस्यन्दसंदोह-

---

चक्रवाकानां वियोगो भवतीत्यल्पतया तैस्ता अभिनन्द्यन्ते। सरितश्च वृत्तिकारिकास्तेषामिति तदभिनन्दनम्। उडुपः शशी, प्लवश्च।

क्रमेण चेत्यादौ। एवंविधे निदाघकाले कठोरीभवति सत्युन्मत्ता मातरिश्वानः प्रावर्तन्तेति संबन्धः। खगो रविः। शुष्यदिति साभिप्रायम्। स्रोतसश्च प्रसरणधर्मत्वादाह—सीददिति। समन्तादावेगगामिनः। झिल्लिका चीरीनामकः प्राणी यो वर्षासु तरुषु सीत्कारमुच्चैः करोति। कातरेति। कपोता हि मेदोमयत्वान्नितान्तं घर्मासहाः। अत एव पतत्रित्वेऽपि पृथगुपादानम्। पतत्रित्वाभिप्रायेण श्वासमित्येतावदेव समुचितम्। एषां तथाभूतरुजाभावात्। करीषो गोमयम्। वीरुत्सपर्णशाखाजटिलं कुप्यकादि। किशोरकेति। बालत्वेन तृष्णाद्यसहिष्णुता, मुग्धतातिशयश्च द्योत्यते। धातकी लताभेदः। स्तबकः पुष्पगुच्छः। स्तम्बेरमो हस्ती। वमथुः करिकरशीकरः। तिम्यन्त आर्द्रीभवन्तः। नितम्बाः सानवः। द्विरदाः करिणः। दीनं क्षीणम्। आश्याना अप्रसरणधर्मकत्वादीषच्छुष्कश्यामिका मदलेखासंबन्धिनी। लीना अतितर्षाच्छ्लिष्टाः। मूका गुञ्जितहीनाः। अलोहिता लोहिता भवन्तो लोहितायमानाः। मन्दाराः पारिभद्रद्रुमाः। सिन्दूरिता आहित-

---

ही शयन करने लगी। निद्रा से अलसाई हुई आँखें रत्नों के तेज को भी नहीं सहन कर सकती थीं, कठोर आतप की तो बात ही क्या! ग्रीष्मकाल के कारण चक्रवाक पक्षियों के जोड़ों में अभिनन्दित चन्द्र के साथ रातें नदियों की भाँति क्षीण होने लगीं। सूर्य का सन्ताप इतना बढ़ गया कि लोग न केवल नये खिले हुए पाटल के पुष्पों से सुगन्धित जल को पीना चाहते थे, बल्कि इस तरह की सुगन्ध से भरी हवा को भी पीने की उन्हें इच्छा होती थी।

क्रमशः निदाघकाल कठोर होता गया। सूर्य का बालपन घटने लगा। तालाब सूखने लगे। प्रवाह शान्त होने लगे। झरने मन्द पड़ गए। झिल्लियाँ झंकारने लगीं। कपोतों के निरन्तर आर्त स्वर से सारा विश्व भर गया। पक्षी हाँफने लगे। गोबर बटोरने वाली हवाएँ चलने लगीं। लताएँ कहीं-कहीं बच रही थीं। धातकी के लाल-लाल गुच्छों को रुधिर के

संदेहमुह्यन्महामहिषविषाणकोटिविलिख्यमानस्फुटत्स्फाटिकदृषदि, घर्ममर्मरितगर्मुति, तप्तपांशुकुकूलकातरविकिरे, विवरशरणश्वाविधे, तटार्जुनकुररकूजाज्वरविवर्तमानोत्तानशफरशारपङ्कशेषपल्वलाम्भसि, दावजनितजगन्नीराजने, रजनीराजयक्ष्मणि, कठोरीभवति निदाघकाले प्रतिदिशमाटोकमाना इवोषरेषु प्रपावाटकुटीपटलप्रकटलुण्ठकाः, प्रपक्वकपिकच्छूगुच्छच्छटाच्छोटनचापलैरकाण्डकण्डूला इव कर्षन्तः शर्करिलाः कर्करस्थलीः,

---

सिन्दूरा इव। लोहितत्वात्। ग्रामस्य ग्रामान्तरेण मर्यादा सीमा। स्यन्दः स्रुतिः। विलिख्यमाना विपाट्यमानाः। मर्मरिताः शुष्कत्वेन शब्दायमानाः। गर्मुतो लताः। कुकूलं तुषाग्निः। विकिराः कुक्कुटाद्याः। श्वाविधः शललाः सेहिकाख्या हिंस्राः प्राणिनः। तटशब्देन नैकट्यमाह। अर्जुनाः ककुभवृक्षाः। कुरराः क्रौञ्चपक्षिणः। कूजा शब्द एव संतापकारित्वाज्ज्वरस्तेन स्फुरन्तः शफरा मत्स्यास्तैः। शारं सितादरत्वात्। पल्वले नड्वले। कुररास्तटस्था यदा कूजन्ति तदा मत्स्याः पीडताः सन्त उत्प्लवन्तीति वस्तुधर्मोऽयम्। नीराजनमिति। नीराजनं शान्तिकर्म। राजयक्ष्मा क्षयव्याधिः। शनैः शनैरपचयकारित्वात्। मातरिश्वानः कीदृशाः प्रावर्तन्तेत्याह—प्रतिदिशमित्यादि। आटोकमाना उच्चैर्भ्रमन्तः। साभिप्रायमेतत्। रजोवशादेतेषां तथाविधसंनिवेशात्। ग्रीष्मे ह्येवंविधा मारुताः प्रावर्तन्तेति कालधर्मः। उन्मत्तपक्षे—आटोकमाना इत्यादि सर्वं वक्ष्यमाणयोग्यतया योजनीयम्। उद्धतभ्रमणाद्या ह्युन्मादस्यानुभावाः। तदुक्तम्—'अनिमित्तहसितरुदितोत्क्रुष्टाबद्धप्रलापशयनोत्थितप्रधावितवृत्तगीतपठितस्मितपांस्ववधूननिर्माल्यचीरघटवक्त्रशरावाभरणस्पर्शनोपभोगैरन्यैश्चाव्यवस्थितचेष्टानुकरणादिभिरनुभावैरभिनयेत्' इति। ऊषरं सिकताबहुलो रूक्षो देशः। प्रपा सत्रम्। वाटः कुनालम्। पटलं छदिः। कपिकच्छूः

भ्रम से शेर के बच्चे चाटने लगे। घाम की गर्मी से उफनते हुए हाथी अपनी सूँड से गाज उछाल कर पर्वत के मध्यभाग को सींचने लगे। सूर्य के कारण कष्ट में पड़े हुए हाथियों के क्षीण मद की श्यामलेखाओं पर भौंरे मूक होकर बैठ गए। मन्दार के सिन्दूरिया फूलों से सीमाएँ लाल हो गईं। जल के भ्रम से मोह में पड़े भैंसे सींगों के अग्र भाग से स्फटिक के पत्थरों को उपाटने लगे। लताएँ घाम से सूख कर खरखराने लगीं। भूसे की आग के समान तपती धूल से मुर्गे आदि व्याकुल हो उठे। सेही बिल में घुसने लगे। किनारे के अर्जुन वृक्षों पर बैठे हुए क्रौञ्च पक्षी कड़ी आवाज में बोलने लगे, जिससे डरकर सूखते हुए तालाबों की मछलियाँ तड़फड़ा उठती थीं। वनाग्नियाँ इस तरह लगने लगीं जैसे सारे जगत् की आरती उतार रही हो। वह निदाघकाल रात्रि का क्षय रोग बन गया और वह घटने लगीं। चारों ओर अंधड़ के रूप में उन्मत हवा चल पड़ी। बलुहट सीवानों में ऊँची उड़ान भरने लगीं। पनसाले और राह की कुटियों की खपड़पोश छाहों की सामने लूट होने लगी। पके किंवाच के गुच्छों के साथ छेड़छाड़ करने की गुस्ताखी के कारण उठी हुई खाज की

स्थूलदृषच्चूर्णमुचः, मुचुकुन्दकन्दलदलनदन्तुराः, संतततपनतापमुखरचीरीगणमुखशीकरशीक्यमानतनवः, तरुणतरतरणितापतरले तरन्त इव तरङ्गिणि मृगतृष्णिकातरङ्गिणीनामलीकवारिणि, शुष्यच्छमीमर्मरमारवमार्गलङ्घनलाघवजवजङ्घालाः, रैणवावर्तमण्डलीरेचकरासरसरभसारब्धनर्तनारम्भारभटीनटाः, दावदग्धस्थलीमषीमलिनमलिनाः शिक्षितक्षपणक-

कण्डूदायका द्रव्यभेदः । अत एवाह—कर्षन्त इति । शर्कराः पाषाणकणिका विद्यन्ते यासु ताः शर्करिलाः । पिच्छादित्वादिलच् । कर्करस्थली ऊषरभूः पाषाणभूः । अत एवाह—स्थूलेत्यादिना । मुचुकुन्दं पुष्पभेदः । कन्दलं नवनालम् । दन्तुरा इति । कपिकच्छूस्पर्शचालनेन च ये कण्डूलास्तादृशाश्चूर्णमुचः प्रकटदन्ताः परुषं कषन्ति । शीक्यमानाः सिच्यमानाः । तरुणतरः प्रौढः । तरणिरादित्यः । तरन्त इवेति । बालुकावशात्तथा लक्ष्यमाणत्वात् । मृगतृष्णिका मरीचिका । तृषितमृगाणां रविरश्मिखचितासु सिकतासु नीलत्वदर्शनाज्जलबुद्धिः । वारिणीति । सतरङ्गे वारिणि ये समीकास्ते सतापं देशं तरन्ति । उन्मत्तपक्षेऽपि विचित्तत्वेनैवंकारित्वम् । शम्योऽग्निगर्भा वल्लीभेदाः । लाघवं नैपुणम् । सव्यायामाश्च विषमं मार्गं लाघवेन तरन्ति । जङ्घाला वेगवन्तः । रैणवावर्ताः पांसुसंबन्धिन आवर्तनरूपाः संनिवेशास्तेषां मण्डली समूहः । रेचयति पृथक्करोतीति रेचकम् । रैणवावर्तमण्डल्या रेचकं तथा रासे रसिते यो रसस्तेन यो रभसस्तद्वशेनारब्धं यन्नर्तनमिव नर्तनं तदारम्भे विषय आरभटीनटा इव आरभटीनटाः । ईरयन्तीति अराः । अराश्च ते भटा अरभटाः । तेषामियमारभटी नटजातिविशेषो वीररसप्रधानः । उक्तं च—'प्लुष्टावपातप्लुतगर्जितानि च्छेद्यानि मायाकृतमिन्द्रजालम् । चित्राणि यूथानि च यत्र नित्यं तां तादृशीमारभटीं वदन्ति ॥' इति; नृत्तपक्षे—आवर्ता

छटपटाहट से मुरझाँलोट हवा कंकरीली धरती में मानों अपनी देह रगड़ रही थी । पत्थरों के मोटे-मोटे कण बरसने लगे । मुचुकुन्द और कन्दल की कलियाँ छँट-छँट कर गिरने लगीं । सूर्य की गर्मी से व्याकुल होकर चिल पक्षी मुँह से गाज निकालने लगे । मृगतृष्णिका रूपी नदियों के झूठे बहते हुए प्रवाह में मानों निदाघकाल की हवा सूर्य के अधिक ताप के कारण तैर रही थी । शमी के सूखे पत्ते मरुभूमि के मार्गों पर बिछे हुए थे जिन पर मर्मर करती हवा दौड़ लगा रही थी । धूल के बवंडर जगह बदलते हुए ऐसे लगते थे मानों रास† के अवसर पर आनन्द-वेग से आरभटी‡ नृत्य में नट नाच रहे हों ।

† 'रास' एक प्रकार का प्राचीन समूह-नृत्य था । शङ्कर के उद्धृत श्लोक के अनुसार आठ, सोलह या बत्तीस आदमी मण्डल बनाकर जब नृत्य करते थे तब यह नृत्य 'रास' कहलाता था ।

‡ यह एक प्रकार की नृत्य-शैली है जिसमें उछल-कूद, मारकाट, माया, इन्द्रजाल के दृश्य झुण्ड में नृत्य द्वारा प्रदर्शित किये जाते थे ।

वृत्तय इव वनमयूरपिच्छचयानुच्चिन्वन्तः, सप्रयाणगुञ्जा इव शिञ्जानजरत्करञ्जमञ्जरीबीजजालकैः सप्ररोहा इवातपातुरवनमहिषनासानिकुञ्जस्थूलनिःश्वासैः, सापत्या इवोड्डीयमानजवनवातहरिणपरिपाटीपेटकैः, सभ्रुकुटय इव दह्यमानखलधानबुसकूटकुटिलधूमकोटिभिः, सावीचिवीचय इव महोष्ममुक्तिभिः, लोमशा इव शीर्यमाणशाल्मलिफलतूलतन्तुभिः, दद्रुणा इव शुष्कपत्रप्रकराकृष्टिभिः, शिराला इव तृणवेणीविकरणैः उच्छ्मश्रव इव धूयमाननवयवशूकशकलशङ्कुभिः, दंष्ट्राला इव चलितशलल-

आवृत्तयः। यदाह मुनिः—'यदा नृत्तवशादङ्गं भूयोभूयो निवर्तते। तत्राद्यमभिनेयं स्याच्छेषं नृत्ते नियोजयेत् ॥' इति। मण्डलीनृत्तं हल्लीशकम्। यदाह—'मण्डलेन तु यन्नृत्तं हल्लीशकमिति स्मृतम्। एकस्तत्र तु नेता स्याद्गोपस्त्रीणां तथा हरिः॥' इति। रेचकास्त्रयः—कटीरेचकः, हस्तरेचकः, ग्रीवारेचकश्चेति। रासलक्षणम्—'अष्टौ षोडशद्वात्रिंशद्यत्र नृत्यन्ति नायकाः। पिण्डीबन्धानुसारेण तन्नृत्तं रासकं स्मृतम् ॥' इति। अस्यैव तु हल्लीसकाद्या विशेषाः। क्षपणकवृत्तय इवेति। क्षपणकाश्च मषीमलिना बर्हिपिच्छानि शास्त्रचोदनया वहन्ति। उन्मत्तपक्षे—निर्विवेकतया मयूरपिच्छचय इत्युक्तं प्राक्। गुञ्जन्तीति गुञ्जा ढक्काभेदाः। उन्मत्तानां नृत्तावसरे सर्वं एव करतलादि वादयन्ति। शिञ्जानाः शब्दायमानाः। करञ्जो वृक्षभेदः। प्ररोहोऽङ्कुरः। उन्मत्ता अपि खेदान्निःश्वसन्ति। सापत्या इवेति। उन्मत्ता अपि श्वभ्रादिपतनभयादपत्यानि न त्यजन्ति। पेटकैर्यूथैः। सभ्रुकुटय इवेति। दह्यमानाभिप्रायेणोक्तम्। उन्मत्ता अपि क्रोधप्राया एव। क्रोधस्य भ्रुकुट्यादयोऽनुभावाः। खलधानं क्षोदादिदेशः। क्षुद्यमानं धान्यमित्यन्ये। सस्यस्य ज्वालाभावाद् धूमवर्णनं समुचितम्। कुटिलपदेन च भ्रुकुटीसादृश्यमाह। अवीचिर्नरकभेदस्तस्य वीचय इव वीचयो ज्वालाः। महोष्मेति। उन्मत्ता अपि खेदादिवशादूष्मायन्ते। लोमशा इवेति। उन्मत्ता अपि क्षुरकर्म विना लोमशाः। तूलं कार्पासः। दद्रूः कुष्ठविकारः। साऽस्यास्तीति दद्रुणः। 'दद्र्वा ह्रस्वत्वं च' इति नः। उन्मत्ता अप्युद्वर्तनं विना

दाव से जली हुई भूमियों में रगड़ मारने से हवा स्याह हो गई थी। पवनों ने मानों मलिन वेश धारण किये हुए जैन साधुओं के आचार सीख कर वन-मयूरों के पंख ग्रहण करना आरम्भ कर दिया। करंज नामक वृक्ष की मंजरियों के बीज हवा से इस प्रकार बजने लगे मानों प्रस्थान का ढक्का बज उठा हो। घाम से पीड़ित वनैले भैंसों की माला से मोटे निश्वास इस तरह निकल रहे थे मानों उस हवा के प्ररोह फूट रहे हों। तेज दौड़ने वाले वातहरिण के यूथ इस प्रकार उड़ने लगे मानों पवन के बच्चे हों। भूसे की जलती हुई ढेर की टेढ़ी धूमरेखा से ऐसा लगता था मानों हवा ने अपनी भौंहें टेढ़ी की हों। गर्मी इस तरह बरसती थी मानों अवीचि नामक नरक की ज्वाला हो। सेमल के डोडों के फटने से रुई बिखर रही थी, मानों हवा के रोंगटे हों। दाद के रोगी की भाँति हवा सूखे

सूचीशतैः, जिह्वाला इव वैश्वानरशिखाभिः, उत्सर्पत्सर्पकञ्चुकैश्चूडाला इव ब्रह्मस्तम्भरसाभ्यवहरणाय कवलग्रहमिवोष्णैः कमलवनमधुभिरभ्यस्यन्तः सकलसलिलोच्छोषणघर्मघोषणाघोरपटहैरिव शुष्कवेणुवनास्फोटनपटुरवैस्त्रिभुवनबिभीषिकामुद्भावयन्तः, च्युतचपलचाषपक्षश्रेणीशारितसृतयः, त्विषिमन्मयूखलतालातप्लोषकल्माषवपुष इव स्फुटितगुञ्जाफलस्फुलिङ्गाङ्गाराङ्किताङ्गाः, गिरिगुहागम्भीरभांकारभीषणभ्रान्तयः, भुवन-

---

दद्रूयुक्ता भवन्ति। शिरालाः प्रकटस्नायवः। उन्मत्ता अपि कृशत्वाच्छिराला भवन्ति। वेणी पङ्क्तिः। शिरासादृश्यप्रतिपादनाय वेणीपदम्। श्मश्रुः कूर्चः। शुकाः किंशारवः। उन्मत्ता अपि केशवपनाभावाद्दीर्घश्मश्रवः। दंष्ट्रा बहिर्निर्गता दन्ताः। शललः श्वावित्। सूची दीर्घकण्टकरूपाणि रोमाणि, अन्ये तु—दंष्ट्रालाः शललाः, श्वाविधः पक्षाश्च शलला उच्यन्ते। तथा च—'श्वाविधः शललैरिव' इति महाभारते दृश्यत इत्याहुः। उन्मत्ता अप्येवमादिविकारेण सर्वं भीषयन्ते। एवं जिह्वाला अपि। एवमेव स्नानादिना विनोन्मुक्तचूडत्वादुत्सर्पदित्यादि। कञ्चुकं त्वक्। ब्रह्मस्तम्भो ब्रह्माण्डः। रसाभ्यवहरणं शोषणम्, रसानां च मधुरादीनां भोजनम्। 'असंचार्यो मुखे पूर्णे गण्डूषः केवलोऽन्यथा'। अभ्यस्यन्त इति। एवमिदं शोषयिष्याम इति। घर्मो ग्रीष्मः। घोषणा श्रावणा। विभीषिकामिति। ये सगर्वा जगद्ग्रसनशीलास्ते त्रिभुवनेऽपि भयमुत्पादयन्ति। चाषः किकीदिविः पक्षिभेदः। उन्मत्तपक्षे—विस्मरणशीलत्वाच्युतेत्यादि योज्यम्। सृतिर्मार्गः। त्विषिमान् रविः। अलातमुल्मुकम्। कल्माषं रक्तकृष्णम्। गुञ्जा रक्तिका। उपलानि लोहितकृष्णानि भवन्ति। स्फुलिङ्गा अग्निकणाः। अङ्गाराङ्कितानीवाङ्गाराङ्कितानि दग्धान्यङ्गानि। ये च साङ्गारास्ते मलिनशरीरा भवन्ति। उन्मत्ता अप्यग्निशस्त्रश्वभ्रादिषु बलादतिपतन्ति। भांकारभीषणा भ्रमन्ति च॥ अभिचार उच्चाटनम्। अभिचारिणश्चोच्चा

पत्तों का खुजाने के लिए बटोरने लगा। हवा की शिराओं के समान तिनके उड़ने लगे। जब कि नुकीली शिखाएँ वायु की बढ़ी हुई दाढ़ी के समान हिल रही थीं। उड़ते हुए शलल के सैकड़ों कांटेदार रोंगटे हवा के दाँत के समान थे। आग की लपटें हवा की जीभ हो रही थीं। साँप के केंचुल हवा में बिखरे हुए बाल के समान उड़ने लगे। ब्रह्माण्ड के सारे रस को चाट जाने के लिए हवा मानों कमल के मधु का ग्रास बनाकर अभ्यास कर रही थी। बाँसों के चटखने की तीखी आवाज होने लगी मानों सारे जलों को सोख लेने वाले आतपों का घोषणा-पटह जल रहा हो, इस प्रकार हवा ने तीनों लोकों को भयभीत कर दिया। चाष पक्षी के पंख झड़कर मार्ग को ढँक रहे थे। हवा का शरीर मानों सूर्य की किरणों के जलते अङ्गारों से झुलस कर कुछ काला और लाल (कल्माष) हो गया था, चटखते हुए गुञ्जाफलों के समान अग्निकणवाही अंगारों से हवा के अङ्ग-अङ्ग भर गये। पहाड़ की गुफाओं में गंभीर झंकार भर कर हवा ने भयानक भ्रम उत्पन्न कर दिया। संसार को भस्म करने के अभिचार (वेदविहित हिंसात्मक कर्म उच्चाटन) में चरु पकाने में चतुर हवा ने नीम के गुच्छों को इस तरह बरसाया

भस्मीकरणाभिचारचरुपचनचतुराः, रुधिराहुतिभिरिव पारिभद्रद्रुमस्तबक-वृष्टिभिस्तर्पयन्तस्तारवान्वनविभावसून्, अशिशिरसिकतातारकितरंहसः, तप्तशैलविलीयमानशिलाजतुरसलवलिप्तदिशः, दावदहनपच्यमानचटकाण्ड-खण्डखचिततरुकोटरकीटपटलपुटपाकगन्धकटवः, प्रावर्तन्तोन्मत्ता मातरिश्वानः।

सर्वतश्च भूरिभस्त्रासहस्रसंधुक्षणक्षुभिता इव जरठाजगरगम्भीरगल-गुहावाहिवायवः, क्वचित्स्वच्छन्दतृणचारिणो हरिणाः, क्वचित्तरुतल-विवरविवर्तिनो बभ्रवः, क्वचिज्जटावलम्बिनः कपिलाः क्वचिच्छकुनिकुल-

---

टनमारणाद्यर्थं चरुपचनं कुर्वन्ति, रक्तेन चाग्नीन्प्रीणयन्ति। पारिभद्रा निम्बाः। मदना इत्यन्ये। उन्मत्ता अपि निर्विवेकतया रक्तादि यत्किंचिदशुचिप्रायमग्निषु निक्षिपन्ति, तत एव विश्वस्य दोषाय पर्यवस्यन्ति। तारकितमिव रंहो वेगो येषां ते। शिलाजतु अश्मसारः। दावदहनेन पच्यमानानि यानि चटकाण्डानि तेषां विदारणवशात्स्फुटिता ये खण्डाः कपालानि तैः। दोलावदुपरिपतितैः खचितानि कचायमानानि यानि तरुकोटरेषु कीटपटलानि क्रिमिसमूहास्तेषामतिपेशलत्वेन यत एव तप्तैः खण्डैरुपर्याच्छादकतया स्थितैः पुटपाकैः प्रसवधूमोऽभ्यन्तरपाकस्तद्गन्धेन कटव उद्वेजकाः। अत्राग्निपाकेन खण्डत्वं खण्डेभ्यो रसनिःसरणात्खचितत्वं कीटा-नाम्। उन्मत्ता इति। ये चोन्मत्तास्ते सिकताव्याप्ताः कर्दमविलिप्तदिशो गन्धकटवः धाटीकराद्याः पूर्वोक्ताः क्रियाः प्रायेण कुर्वत इति। सर्वत्रात्र महावाक्ये ध्वनिच्छा-यान्वेष्या। मातरिश्वानो वायवः।

सर्वतश्चेत्यादौ। दावाग्नयः प्रत्यदृश्यन्तेति संबन्धः। भस्त्रा इति। संधुक्षणमु-द्दीपनम्। जरठाजगरा वृद्धसर्पाः। गला एव गुहा गलगुहाः। स्वच्छन्दमपविघ्नम् यथारुचि। चरणं भक्षणम्, गमनं च। हरिणाः शुक्लाः, मृगाश्च। बभ्रवः कपिलाः,

---

मानों रुधिर की आहुति दे रही हो, हवा ने इस प्रकार वृक्षों में लगी हुई आग को तृप्त किया। हवा के वेग में आतप के तेज से बालू तारे की तरह चमकने लगे। गर्म चट्टानों से शिलाजीत का रस बह-बह कर दिशाओं को लेपता हुआ फैलने लगा। वन में लगी आग की गर्मी से चिड़ियों के अंडे फूटकर पेड़ों के कोटरों में बिछ गए थे जिनमें झुलसे हुए कीड़ों से मिलकर पकने से पुटपाक की उग्रगन्ध उठ रही थी।†

चारों ओर भीषण वनाग्नियाँ दिखाई पड़ने लगीं। मानों वे अग्नियाँ हजारों धौंकनियों के चलाने से क्षुभित होकर बढ़ती जा रही थीं। पुराने अजगर, साँप के गले की मीठी गुहा से निकलने वाली वायु उन्हें उत्तेजित कर रही थीं। कहीं हिरनों की भाँति अग्नियाँ घासों में स्वच्छन्द विचरण करतीं, कहीं नेवलों की तरह वृक्षों के नीचे विवरों में घुस पड़तीं, कहीं तप-स्वियों की तरह विशाखों की पीली जटाएँ धारण करती, कहीं बाजों के समान पक्षियों के

---

† हवा के सभी विशेषण उन्मत्त या पागल के स्वभाव के अनुकूल अर्थ में भी है।

कुलायपातिनः श्येनाः, क्वचिद्विलीनलाक्षारसलोहितच्छवयोऽधराः, क्वचिदासादितशकुनिपक्षकृतपटुगतयो विशिखाः, क्वचिद्दग्धनिःशेषजन्महेतवो निर्वाणाः, क्वचित्कुसुमवासिताम्बरसुरभयो रागिणः, क्वचित्सधूमोद्गारा मन्दरुचयः, क्वचित्सकलजगद्ग्रासघस्मराः सभस्मकाः, क्वचिद्वेणुशिखर-

---

नकुलाश्च। इतरत्र,—जटा मूलानि च। कपिलाः पिङ्गलाः कपिलाख्यमुनिव्रतग्रहणान्मनुष्या एवाभेदोपचारेण कपिलाः। एते च जटावल्कलधारिणः। कुलाया नीडाः। श्येनाः शुक्लाः, पाक्षिकाश्च। अधरा धर्तुमशक्याः, अधोभवा वा। लाक्षाया विलीनतया पीतत्वात्। ओष्ठाश्चाधराः। आ समन्तात्सादिता आहताः, स्वीकृताश्च। स्निग्धतया नीरसतया च। शकुनीनां पक्षेषु कृतपटुगतयः, निःसारतया कालस्थापितत्वात्। विगता शिखा ज्वाला येषां ते, विविधशिखाः शराश्च। निःशेषाः समस्ताः, प्राक्तनजन्मान्तरसंचिता अपि। जन्महेतवस्तृणाद्याः, कर्माणि च। निर्वाणाः शान्ताः, मोक्षगामिनश्च। कुसुमं धूमः पुष्पं च। अम्बरं नभः, वस्त्रं च। रागिणो लोहिताः, शृङ्गारिणश्च। अजीर्णकृतोऽपि धूमोद्गारः। रुचिर्दीप्तिः, भोजनाभिलाषश्च। जगदेव ग्रासः कवलं तद्भक्षणशीलाः। भस्मभूरिकश्चात्यशनव्याधिः। वृद्धा वृद्धिं गताः, स्थविराश्च। ते वेणुशिखरमवलम्बन्ते यष्टिं गृह्णन्ति। अचलाः पर्वताः। अन्यत्र,—क्षयस्य दीर्घकालपर्यवसायित्वादचलमविच्छिन्नं भक्षितशिलाह्वयाः। उक्तं च—'शिलाधातुप्रयोगाद्वा प्रसादाद्वाथ शांकरात्। अजामूत्रप्रयोगाद्वा क्षयः

घोसलों पर टूट पड़तीं, कहीं द्रवित होकर बढ़ते हुए लाक्षारस के अधर के समान लाल हो जातीं। कहीं पैदा होने के सभी कारणों को जला कर बुझ जाती (निर्माण की अवस्था में भी जन्म लेने के सभी हेतु क्षपित हो जाते हैं), कहीं रागियों की भाँति धुयें की धुआंसी गन्ध से आकाश को भर देतीं (रागी लोग भी फूलों की गन्ध से बसे वस्त्र पहनते हैं), कहीं धुयें को उड़ेल कर शोभा मन्द कर देतीं। (धूमोद्गार या डँकार के रोग वालों की रुचि या भोजनाभिलाप मन्द पड़ जाता है) कहीं सारे संसार को खा जाने की प्रवृत्ति करतीं और भस्म कर देती (भस्मक रोग वाले भी बहुत खाया करते हैं), कहीं अत्यन्त बढ़कर बासों की फुनगियों तक पहुँच जातीं। (जो अत्यन्त वृद्ध हो जाते हैं बांस की लाठी का सहारा लेते हैं) कहीं क्षयशील होकर पर्वत के शिलाजतु के उपयुक्त बन जातीं (क्षय रोग वाले भी हमेशा शिलाजतु का सेवन करते हैं) कहीं अत्यन्त बढ़ कर सभी रस का योग करने लग जातीं (मोटे तगड़े लोग सभी प्रकार के मधुरादि रसों का सेवन करते हैं) कहीं रौद्र रूप धारण करके गुग्गुलुओं को जलातीं (रुद्र के उपासक लोग भी गुग्गुलु जलाया करते हैं), कहीं स्थाणुओं (ठूँठ वृक्षों) पर चढ़कर मूल को ज्वलित करके मदन वृक्ष की फूलों में साथ शाखाओं को भी जलातीं (स्थाणु अर्थात् शिव जी ने प्रज्वलित नेत्र की अग्नि से फूल के बाणों वाले कामदेव को जला डाला था), कहीं चंचल शिखाओं के द्वारा नृत्य आरम्भ करके आरभटी शैली में नाचने

लग्नमूर्तयोऽत्यन्तवृद्धाः, क्वचिदचलोपयुक्तशिलाजतवः, क्षयिणः क्वचित्सर्वरसभुजः पीवानः, क्वचिद्दग्धगुग्गुलवो रौद्राः, क्वचिज्ज्वलितनेत्रदहनदग्धसकुसुमशरमदनाः कृतस्थाणुस्थितयः, चटुलशिखानर्तनारम्भारभटीनटाः क्वचिच्छुष्ककासारसृतिभिः स्फुटन्नीरसनीवारबीजलाजवर्षिभिर्ज्वालाञ्जलिभिरर्चयन्त इव घर्मघृणिम्, अघृणा इव हठहूयमानकठोरस्थलकमठवसाविस्रगन्धगृध्नवः, स्वमपि धूममम्भोदसमुद्भूतिभियेव भक्षयन्तः सतिलाहुतय इव स्फुटद् वहलबालकीटपटलाः कक्षेषु, श्वित्रिण इव प्लोषविचटद्वल्कलधवलशम्बूकशुक्तयः, शुष्केषु सरःसु, स्वेदिन इव विलीयमानमधुपटलगोलगलितमधूच्छिष्टवृष्टयः काननेषु, खलतय इव

क्षीयेत नान्यथा ॥' इति । क्षयो विनाशः, व्याधिभेदश्च यक्ष्माख्यः । रसः सलिलादिः । अत एव पीवानः । अन्यथा कथं सलिलादिभक्षणशक्तित्वममीषां प्रसज्येत । ये च मधुरादिसर्वरसानुपभुञ्जते ते स्थूला भवन्ति । रौद्रा भीषणाः, रुद्रभक्ताश्च । नेत्राणां मूलानां दहनेन दग्धाः सकुसुमाः काण्डानि मदना वृक्षभेदाश्च यैः । स्थाणुश्छिन्नशाखो वृक्षः, शिवश्च । स्थितिः स्थानम् व्यवहारश्च । स्थाणुनापि नयनाग्निना सकुसुमशरः कामो दग्धः । चटुलत्वेन नर्तनारम्भः, रवश्च । शुष्कत्वाच्चटुलादेरारभटीग्रहणम् । कासाराणि नड्वलास्तेषु याः सृतयः । क्वचित् 'स्मृतयः' इति पाठः । इतरत्र तु—शुष्ककं शुष्कगीतं मुण्ठुमादि । आसार्यन्त इत्यासाराः । आसारितानि यद्यपि गीयन्त एव, तथापि 'वर्धमानमथापीह ताण्डवं यत्र योज्यते' इति । ताण्डवं ह्यारभटीप्रधानम् । अर्चयन्त इवेति । तेषां तदभिमुखत्वात् । घर्मघृणिः सूर्यः । अघृणा अजुगुप्साः । कमठः कूर्मः । 'विस्रं स्यादामगन्धि यत्' गृध्नवो लम्पटाः । समुद्भूतिः संभारः । धूमात्किल मेघोत्पत्तिर्मेघाः शमयन्ति । कीटाः कृमयः । प्लोषो दाहः । वल्कलशब्दस्त्वगुपलक्षणार्थः । शम्बूकाः शक्तिमन्तः प्राणिभेदाः । मधुपटलगोलो माक्षिककरण्डः । मधूच्छिष्टं सिक्थकम् । खलतयः खल्वाटाः ।

वाली नट बन जाती (ये नट भी 'चटुलशिखानर्तन करते हैं), कहीं सूखे जलाशयों में फैल कर नीरस नीवार नामक धान के जावे की तरह अपनी ज्वालाओं अंजलियों से भगवान् सूर्य की मानो पूजा करतीं । घृणारहित की भाँति कठोर स्थलकमठों के पकते हुए हृदय-मांस के लिए मानों लालायित हो रही थीं मानों मेघों के उठ जाने के भय से अपने धूम को खाती जा रही थीं । घासों में आग लग जाने से छोटे-छोटे कीड़े पकड़-पकड़ कर फूटने लगे मानों अग्नि में जल की आहुति पड़ रही हो । सूखे हुए सरोवरों में उजले उजले घोंघे और सीपियाँ आग से इस तरह चटक रही थीं मानों श्वेत कुष्ठ के रोगी की चमड़ी हों । जंगलों में आग मधुमक्खियों के छाते को उजाड़ रही थी, उनसे मधु की धार इस प्रकार बरसने लगी मानों आतप से पीड़ितों (अग्नियों) का पसीना बहने लगा । विस्तीर्ण बल्वट

परिशीर्यमाणशिखासंहतयो महोषरेषु, गृहीतशिलाकवला इव ज्वलितसूर्यमणिशकलेषु शिलोच्चयेषु, प्रत्यदृश्यन्त दारुणा दावाग्नयः।

तथाभूते च तस्मिन्नत्युग्रे ग्रीष्मसमये कदाचिदस्य स्वगृहावस्थितस्य भुक्तवतोऽपराह्णसमये भ्राता पारशवश्चन्द्रसेननामा प्रविश्याकथयत्—'एष खलु देवस्य चतुःसमुद्राधिपतेः सकलराजचक्रचूडामणिश्रेणीशाणकोणकषणनिर्मलीकृतचरणनखमणेः सर्वचक्रवर्तिनां धौरेयस्य महाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीहर्षदेवस्य भ्रात्रा कृष्णनाम्ना भवतामन्तिकं प्रज्ञाततमो दीर्घाध्वगः प्रहितो द्वारमध्यास्ते' इति। सोऽब्रवीत्—'आयुष्मन्! अविलम्बितं प्रवेशयैनम्' इति।

अथ तेनानीयमानम्, अतिदूरगमनगुरुजडजङ्घाकाण्डम्, कार्दमिकचेलचीरिकानियमितोच्चण्डचण्डातकम्, पृष्ठप्रेङ्खत्पटच्चरकर्पटघटितगल-

---

शिखा ज्वाला, चूडा च। ऊषर सिकताबहुला रूक्षो देशः। शिलोच्चयो गिरिः। 'दावो वनगतो वह्निर्दावश्च वनमुच्यते'।

तथाभूतदेश इत्यादिनात्मानं प्रति तेषामादरातिशयं दर्शयति। आकुर्वत इति। न त्वप्रस्तावे। एतेन स्वस्य किमपि माहात्म्यमाह। स्वयमवसरमन्तरेण वा तस्य तदा प्रवेशाभावात्। एतदेव देवस्येत्यादिविशेषणसंदर्भमुखेन द्वारमध्यास्त इत्यनेन पोषयिष्यते। पारशवः शूद्रापुत्रः। शाणो मणिकषणम्। कोणोऽश्रिः। चक्रवर्तिनः सार्वभौमाः। धौरेयो मुख्यः। प्रज्ञाततमोऽतिप्रतीतः। एतेन च बाणं प्रति बहुमान एव गम्यते।

जडा गमनाद्यक्ताः। कर्दमेन रक्तं कार्दमिकम्। चेलं वस्त्रम्। चीरिका खण्डिका।

स्थानों में खल्वाट की भाँति उनकी शिखाएँ (ज्वालाएं या चोटियाँ) झड़ने लगीं। ज्वलित सूर्यकान्त मणियों के खण्डों वाले पर्वतों पर मानों शिलाओं के ग्रास ग्रहण करने लगीं।

इस प्रकार ग्रीष्मकाल अत्यन्त प्रखर हो उठा। एक दिन जब बाण खा-पीकर अपने घर में बैठे थे तभी दोपहर के बाद पारशव (शूद्रा माता से उत्पन्न) भ्राता चन्द्रसेन ने भीतर प्रवेश कर निवेदन किया—'चारों समुद्रों के अधिपति, समस्त राजसमूह की चूडामणियों के शाण की रगड़ से निर्मल नखमणि वाले, समस्त चक्रवर्ती राजाओं में धुरन्धर, महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीमान् हर्षदेव के भाई कृष्ण ने अत्यन्त विश्वासपात्र अपना लम्बा रास्ता तय करनेवाला दूत पठाया है जो द्वार पर खड़ा है।' बाण ने कहा—'आयुष्मन्, शीघ्र उसे अन्दर लाओ।'

तब बाण ने उसके द्वारा लाये गये प्रवेश करते हुए उस लेखहारक को देखा। लम्बी सफर करने से उसकी जाँघें भर गई थीं। मटियाले रंग की पेटी से उसका ऊँचा चंडातक

ग्रन्थिम्, अतिनिबिडसूत्रबन्धनिम्नितान्तरालकृतलेखव्यवच्छेदया लेखमालिकया परिकलितमूर्धानम्, प्रविशन्तं लेखहारकमद्राक्षीत्। अप्राक्षीच्च दूरादेव—'भद्र, भद्रमशेषभुवननिष्कारणबन्धोस्तत्रभवतः कृष्णस्य?' इति। स 'भद्रम्' इत्युक्त्वा प्रणम्य नातिदूरे समुपाविशत्। विश्रान्तश्चाब्रवीत्—'एष खलु स्वामिना माननीयस्य लेखः प्रहितः' इति विमुच्यार्पयत्। बाणस्तु सादरं गृहीत्वा स्वयमेवावाचयत्—'मेखलकात्संदिष्टमवधार्य फलप्रतिबन्धी धीमता परिहरणीयः कालातिपात इत्येतावदत्रार्थंजातम्। इतरद्वार्तासंवादनमात्रकम्'। अवधृतलेखार्थश्च समुत्सारितपरिजनः संदेशं पृष्टवान्। मेखलकस्त्ववादीत्—'एवमाह मेधाविनं स्वामी—जानात्येव मान्यो यथैकगोत्रता वा, समानज्ञानता वा, समानजातिता वा, सहसंवर्धनं वा, एकदेशनिवासो वा, दर्शनाभ्यासो वा, परस्परानुरागश्रवणं वा, परोक्षोपकारकरणं वा, समानशीलता वा, स्नेहस्य हेतवः।

उच्चण्डमुच्चर्मम्। गाढमित्यन्ये। चण्डातकमर्धोरुकं वासः। पटच्चरं जीर्णवस्त्रम्। निम्नितं नमितम्। लेखमालिकेति। अन्यैरपि तद्धस्ते लेखः प्रहित इति परागतः सबन्धः। 'परिकरित–' इति पाठे वेष्टित इत्यर्थः। तत्रभवतः पूज्यस्य नातिदूर इति। अपि तु दूर एवेति सर्वथैव स्वस्य प्रभावातिशयं प्रतिपादयति। फलं प्रतिबध्नाति रुणद्धीति फलप्रतिबन्धी। कालातिपातः कालात्ययः। अर्थजातमभिधेयप्रकारः। अवधृतो ज्ञातः। एकेत्यादि कारणमुत्तरोत्तरमप्रधानम्।

(पाजामा) कसा हुआ था। उसकी पीठ पर जीर्ण वस्त्र का गले में बंधा अँगोछा फहरा रहा था। लेखमालिका या चिट्ठी डोरे से बीचों बीच लपेट कर बांधी गई थी जिससे वह दो भागों में बंटी हुई जान पड़ती थी, उसे उसने अपने सिर से बाँध लिया था। बाण ने दूर ही से पूछा—'भद्र, सबके अकारणबन्धु तत्रभवान् कृष्ण का कुशल है?' वह 'कुशल है' यह कह कर प्रणाम करने के बाद कुछ दूर पर बैठ गया और विश्रान्त होकर बोला—'मालिक ने यह लेख माननीय आपके पास भेजा है।' यह कह उसने खोल कर अर्पित किया। बाण ने आदर के साथ उसे ले स्वयं पढ़ा—'मेखलक से सन्देश समझ कर बुद्धिमान आप काम को बिगाड़ने वाली देरी मत करें, पत्र में इतना ही लिखा जाता है, शेष मौखिक सन्देश मात्र होगा'। बाण ने लेख का तात्पर्य समझ कर परिजनों को हटा दिया और मेखलक से सन्देश पूछा।' मेखलक बोला—'स्वामी ने मेधावी आपसे इस प्रकार कहा है—मान्य, आप जानते ही हैं कि एक गोत्र होना, बराबर ज्ञान होना, समान जाति होना, साथ में रह-कर बढ़ना, एक ही देश में निवास करना, बार-बार दर्शन होना, एक दूसरे के अनुराग को सुनना, परोक्ष में उपकार करना,

त्वयि तु विना कारणेनादृष्टेऽपि प्रत्यासन्ने बन्धाविव बद्धपक्षपातं किमपि स्निह्यति मे हृदयं दूरस्थेऽपीन्दोरिव कुमुदाकरे। यतो भवन्तमन्तरेणान्यथा चान्यथा चायं चक्रवर्ती दुर्जनैर्ग्राहित आसीत्। न च तत्तथा न सन्त्येव ते येषां सतामपि सतां न विद्यन्ते मित्रोदासीनशत्रवः। शिशुचापलापराचीनचेतोवृत्तितया च भवतः केनचिदसहिष्णुना यत्किंचिदसदृशमुदीरितम्, इतरो लोकस्तथैव तद्गृह्णाति वक्ति च। सलिलानीव गतानुगतिकानि लोलानि खलु भवन्त्यविवेकिनां मनांसि। बहुमुखश्रवणनिश्चलीकृतनिश्चयश्च किं करोतु पृथिवीपतिः। तत्त्वान्वेषिभिश्चास्माभिर्दूरस्थितोऽपि प्रत्यक्षीकृतोऽसि। विज्ञप्तश्चक्रवर्ती त्वदर्थम्—यथा प्रायेण प्रथमे वयसि सर्वस्यैव चापलैः शैशवमपराधीति। तथेति च स्वामिना प्रतिपन्नम्। अतो भवता राजकुलमकृतकालक्षेपमागन्तव्यम्। अवकेशी-

---

अन्यथा चान्यथा चेति। एतेन किंचिदेव संभवतीति दर्शयति। अत एवाह—न च तत्तथेति। तथात्वे तु बाणस्य दुर्वृत्तता प्रसज्येत। कृष्णस्यापि तादृशः पक्षपातः स्वामिप्रतारणादि च दोषायैव भवेत्। अत एव वक्ष्यति—तत्त्वान्वेषिभिरित्यादि। ग्राहित इत्येतावति वक्तव्य आसीदित्यनेन दुर्जनाः संप्रतिनिरवकाशा इति प्रतिपादितम्। अत एव वक्ष्यति—तथेति च प्रतिपन्नं स्वामिनेति। सतां साधूनामपि। सतां भवताम्। उदासीनो मध्यस्थः। अपराचीनापराङ्मुखी चेतोवृत्तिर्यस्याः। अवकेशी

शील में समान होना ये सब स्नेह के हेतु हैं, पर तुममें तो अकारण ही मेरा हृदय भाई के समान स्नेह का पक्षपाती हो गया है। तुम दूर हो फिर भी चन्द्रमा जैसे कुमुद में स्नेह करता है उसी प्रकार मेरा हृदय भी अकारण स्नेह से भर गया है। तुम्हारी अनुपस्थिति में दुर्जय लोगों ने सम्राट् के कान भर दिये थे, पर यह सत्य नहीं है। सज्जनों में भी कोई ऐसे नहीं है जिनके मित्र, उदासीन और शत्रु न हों। किसी ईर्ष्यालु व्यक्ति ने तुम्हारी बाल-चपलताओं के अनुकूल चित्तवृत्ति के कारण चिढ़ कर कुछ उल्टा-पुल्टा कर दिया है, अन्य लोग भी वैसा ही समझते हैं और कहते रहते हैं। मन्दबुद्धियों के चित्त जल की तरह अस्थिर और दूसरों के कहे पर चलते हैं। बहुतों के मुँह से सुनकर सम्राट् ने अपना मत स्थिर कर लिया, क्या करते! तत्त्व को पहचानने वाले हम लोग दूर रहने वाले भी तुमको प्रत्यक्ष जान गये हैं। तुम्हारे लिए सम्राट् तक सिफारिश पहुँचाई गई है कि इस तरह की चपलता के कारण प्रायः सबका शैशव आयु के प्रथम भाग में अपराधी हो जाता है। सम्राट् ने इस बात को स्वीकार किया। इसलिए समय-यापन न करके आप राजकुल में पधारिये। सम्राट् से बिना मिले

वादृष्टपरमेश्वरो बन्धुमध्यमधिवसन्नपि न मे बहुमतः। न च सेवावैषम्य-विषादिना परमेश्वरोपसर्पणभीरुणा वा भवता भवितव्यम्। यतो यद्यपि—

स्वेच्छोपजातविषयोऽपि न याति वक्तुं
देहीति मार्गणशतैश्च ददाति दुःखम्।
मोहात्समाक्षिपति जीवनमप्यकाण्डे
कष्टं मनोभव इवेश्वरदुर्विदग्धः॥

तथाप्यन्ये ते भूपतयः, अन्य एवायम्। न्यक्कृतनृगनलनिषधनहुषाम्बरीष-दशरथदिलीपनाभागभरतभगीरथययातिरमृतमयः स्वामी। नास्याहङ्कार-कालकूटविषदिग्धदुष्टा दृष्टयः, न गर्वगरगुरुगलग्रहगदगद्गदा गिरः,

---

निष्फलतरुः। स चादृष्टरविस्तरुमध्यगो न कस्यचित्प्रियः। स्वेच्छोपजाता विषया मण्डलानि यस्मात्तादृगपि देहि प्रयच्छेति वक्तुं न पार्यते। इतरत्र—स्वेच्छया स्वसंकल्पेनोपजात उत्पन्नो विषयो गोचरो यस्य। तथा चोच्यते—'काम जानामि ते मूलं संकल्पात्किल जायसे' इति। अथ च स्वेच्छया उपजाता विषया यस्यायं देही च शरीरवानिति वक्तुं न याति। न शक्यत इति विरोधः। कामश्चानङ्गत्वाद् देही शरीरवानिति वक्तुं न युज्यत इत्यन्यार्थः। मार्गणा याचकाः, शराश्च मार्गणाः। जीव्यतेऽनेनेति जीवनम्, ग्रामादि जीवितं च, ईश्वरो राजा हरश्च। दुर्विदग्धो दुरूढः, दुष्टत्वाद्विशेषेण दग्धश्च। अमृतेत्यादि साभिप्रायम्। यस्मादहंकारादि कालकूटादिना रूपयति, अतश्चा-हंकारादीनामत्यन्ताभावप्रकाशनेच्छयाऽमृतमयत्वमस्य दर्शयति। अमृतमयस्य

निष्फल वृक्ष की तरह आपका बन्धुओं के बीच निवास करना मुझे अच्छा नहीं लगता। आपको सेवा में झंझट समझ कर उदासीन न होना चाहिए और सम्राट् के पास आने में न डरना चाहिए। यद्यपि "बुद्धिहीन राजा कामदेव की भांति कष्टदायक होता है, उसे अपनी इच्छा के अनुसार मण्डल (विषय) प्राप्त होते रहते हैं, वह किसी से 'दो' कहने नहीं जाता, सैंकड़ों बार याचना करने पर दुःख देता है, मोहवश (ग्रामादि) जीवन सामग्री को गलत स्थान में पहुँचा देता है" (श्लेष के अनुसार कामदेव भी इच्छा उत्पन्न होकर अनुभव का गोचर होता है, वह 'देही' अर्थात् शरीर-धारी नहीं कहलाता, सैकड़ों बाणों (मार्गणों) से दुःख देता है, मोह द्वारा जीवन (प्राण) को अकाण्ड दुरवस्था में डाल देता है)। तथापि ऐसे राजे कोई दूसरे ही होते हैं, यह (हर्ष) तो उससे भिन्न है। इसके सामने नृग, नल, नहुष, निषध, अम्बरीष, दशरथ, दिलीप, नाभाग, भरत, भागीरथ, ययाति आदि क्या हैं! स्वामी अमृतमय हैं, न तो इनकी दृष्टि अहंकार के काल-कूट विष से भीनी हुई क्रूर है, न इनकी वाणी दर्परोग से गला जकड़

नातिस्मयोष्मापस्मारविस्मृतस्थैर्याणि स्थानकानि, नोद्दामदर्पदाहज्वर-वेगविक्लवा विकाराः, नाभिमानमहासन्निपातनिर्मिताङ्गभङ्गानि गतानि, न मदार्दितवक्रीकृतौष्ठनिष्ठ्यूतनिष्ठुराक्षराणि जल्पितानि। तथा च—अस्य विमलेषु साधुषु रत्नबुद्धिः, न शिलाशकलेषु। मुक्ताधवलेषु गुणेषु प्रसाधनधीः, नाभरणभारेषु। दानवत्सु कर्मसु साधनश्रद्धा, न करिकीटेषु। सर्वाग्रेसरे यशसि महाप्रीतिः, न जीवितजरत्तृणे। गृहीतकरास्वाशासु प्रसाधनाभियोगः न निजकलत्रधर्मपुत्रिकासु। गुणवति धनुषि सहायबुद्धिः, न पिण्डोपजीविनि सेवकजने। अपि च—अस्य मित्रोपकरणमात्मा, भृत्योपकरणं प्रभुत्वम्, पण्डितोपकरणं वैदग्ध्यम्, बान्धवोप-

---

च कालकूटादिभिर्न योगः। गरं विषम्। स्मयो गर्वः। स्थानकानि स्थितयः। अर्दितं वातव्याधिभेदः। तस्मिन्सति मुखं वक्रं भवति। तथा चोक्तम्—'वायुः प्रवृद्धस्तैस्तैश्च वातलैरूर्ध्वमाश्रितः। वक्रीकरोति वक्तारमुक्तं हसितमीक्षितम्॥' इति। निष्ठ्यूतानि निर्गतानि। विमलेष्वपापेषु; अन्यत्र,—सुच्छायेषु। पद्मरागादिष्विति वक्तव्ये शिलेत्यादिपदमादरार्थम्। एवमुत्तरत्रापि वाच्यम्। मुक्तवत्ताभिश्च धवलास्तेषु गुणेष्वौदार्यादिषु, सूत्रेषु च। प्रसाधनं प्रकृष्टं साधनम्, अर्जनम्, भूषणं च। दानं धनत्यागः, मदश्च। साधनं संपादनम्: सैन्यं च। साध्यतेऽनेनेति कृत्वा। करो दण्डः, पाणिश्च। आशा दिशः, चेतः, वाञ्छा च। प्रसाधनं संपादनम्, दण्डश्च। गुणो ज्या, शौर्याद्याश्च गुणाः। उपक्रियन्तेऽनेनेत्युपकरणमुपयोगः। आत्मेति। न हि मित्राणि मित्रव्यतिरेकेण बान्धवादिव

जाने से भराई हुई हैं, न इनकी स्थिति ऐसी है कि घमण्ड रूप अपस्मार रोग हो जाने से धैर्य समाप्त हो गया है, इनमें विकार ऐसे नहीं जिनमें उत्कट दर्प के ज्वर की व्यग्रता है, न इनकी चाल ऐसी है कि अभिमान रूप महासन्निपात हो जाने से लड़खड़ाने लगी हो, इनकी बातों में ऐसे निष्ठुर अक्षर, जो मद की वातव्याधि ओंठ से दबोचने से निकाले जाते हैं, नहीं होते। इसी प्रकार—हर्ष निर्मल चित्त वाले सज्जनों को ही रत्न समझता है, पत्थर के टुकड़ों को रत्न नहीं। मोती के समान उज्ज्वल गुणों को वह प्रसाधन समझता है, गहनों के भार को नहीं। श्रद्धा से ऐसे कर्म करता है जिनमें दान हो, बल्कि दानजल बहाने वाले कीट रूप हाथियों का संग्रह नहीं करता। सबसे बढ़े हुए यश में इसकी अधिक प्रीति है सूखे तृण के समान प्राणों में नहीं। जिनसे कर (दण्ड) ग्रहण करता है ऐसी दिशाओं में प्रसाधन (दण्ड) का अभियोग करता है, अपनी कलत्र रूप धर्मपुत्तलिकाओं का प्रसाधन (श्रृङ्गार) नहीं करता। वह गुण (डोरी) वाले धनुष को अपना सहायक मानता है, पेट पर पलने वाले सेवकों पर

करणं लक्ष्मीः, कृपणोपकरणमैश्वर्यम्, द्विजोपकरणं सर्वस्वम्, सुकृतसंस्मरणोपकरणं हृदयम्, धर्मोपकरणमायुः, साहसोपकरणं शरीरम् असिलतोपकरणं पृथिवी, विनोदोपकरणं राजकम्, प्रतापोपकरणं प्रतिपक्षः। नास्याल्पपुण्यैरवाप्यते सर्वातिशायिसुखरसप्रसूतिः पादपल्लवच्छाया' इति। श्रुत्वा च तमेव चन्द्रसेनं समादिशत्—'कृतकशिपुं विश्रान्तसुखिनमेनं कारय' इति।

अथ गते तस्मिन्, पर्यस्ते च वासरे, संघट्टमानरक्तपङ्कजसंपुटपीय-

---

लक्ष्यादि किंचिदपेक्ष्यन्ते। प्रभुत्वमिति। तस्य प्रभुत्वं सेवकादीनां दानसंपादनादि। यथाह—'यथाकालं प्रवर्तन्ते पण्डिताः' इत्यादिवैदग्ध्यमात्रापेक्षया पण्डितानां क्षपणादिवदर्थादनपेक्षितया हि तेषामौचित्यं न प्रतीयते। अनेन पण्डितसामान्याच्चदभिप्रायेण स्वस्य समुचितमेव हेवाकमभिव्यनक्ति। वैदग्ध्यापेक्षित्वं दर्शयतीति यावत्। बान्धवाः कुल्याः। लक्ष्मीश्छत्रचामरादिप्रतिपत्तिरूपा छत्रादिवत्तुल्या एव लभन्तेऽन्येषामनर्हत्वात्। कृपणेत्यादि। कृपणानां पोषणमेव समुचितम्। तत्र चैश्वर्यमेव हेतुः। ऐश्वर्यमर्थवत्ता। न तु द्विजातिवदेते सर्वस्वमर्हन्ति। सर्वशब्देन दारा अप्युच्यन्ते। एवमादि तु द्विजा एव लभन्ते। तद्व्यतिरेकेणान्येषामनर्हत्वात्। एवं हृदयादि। तत्तदभिप्रायेण विचारणीयम्। सुखमेवास्वाद्यतया रस इव रसः सुखरसः। छाया कान्तिः। यद्वा,—छायावत्त्वमेषां सर्वस्य कस्यचिदाश्रयणीयत्वादुपचर्यते। अल्पेत्यादि। अभिप्रायेण पादयोः कल्पवृक्षतुल्यत्वमभिव्यज्यते। पुण्यवशात्तदवाप्तिः। एतत्पक्षे छायाऽऽतपप्रतिपक्षजातिः। 'भोजनाच्छादने सद्भिरुभे कशिपुरुच्यते'।

वायसः काकः। जपा रविप्रियं पुष्पम्। आपीडः स्तवकः। कोऽत्रास्तेत्यादि-

---

आश्रित नहीं रहता। वह अपने आपको मित्रों का उपकरण मानता है, अपने प्रभुत्व को अनुचरों का उपकरण मानता है, वैदग्ध्य को विद्वानों का उपकरण मानता है, धन-वैभव को बन्धु-बान्धवों का उपकरण मानता है, अपने ऐश्वर्य को दीनजनों का उपकरण मानता है, अपने सर्वस्व को ब्राह्मणों का उपकरण मानता है, हृदय को पुण्य के स्मरण का उपकरण मानता है, उसकी आयु धर्म का उपकरण है, उसका शरीर साहस का उपकरण है, पृथिवी खड्गलता का उपकरण है, राजसमूह उसके विनोद का उपकरण है और शत्रु उसके प्रताप के उपकरण हैं। जिनका पुण्य अल्प है ऐसे लोग इसके पाद-पल्लव की सबसे बढ़ कर सुख रस उत्पन्न करने वाली छाया नहीं प्राप्त करते। इतना सुनकर बाण ने उसी चन्द्रसेन को आज्ञा दी—'मेखलक को भोजन आच्छादन का प्रबन्ध करके आराम से ठहराओ।'

मेखलक चला गया। दिन भी ढल चुका था, नवजात कौवे के मुख के समान लाल

मान एव क्षयिणि क्षामतां व्रजति बालवायसास्यारुणेऽपराह्णातपे, शिथिलितनिजवाजिजवे जपापीडपाटलिम्न्यस्ताचलशिखरस्खलिते खञ्जतीव कमलिनीकण्टकक्षतपादपल्लवे पतङ्गे, पुरः परापतति प्रेङ्खदन्धकारलेशलम्बालके शशिविरहशोकश्याम इव श्यामामुखे, कृतसंध्योपासनः शयनीयमगात्। अचिन्तयच्चैकाकी—किं करोमि। अन्यथा सम्भावितोऽस्मि राज्ञा। निर्निमित्तबन्धुना च संदिष्टमेवं कृष्णेन। कष्टा च सेवा। विषमं भृत्यत्वम्। अतिगम्भीरं महद्राजकुलम्। न च मे तत्र पूर्वजपुरुषप्रवर्तिता प्रीतिः, न कुलक्रमागता गतिः, नोपकारस्मरणानुरोधः, न बालसेवास्नेहः, न गोत्रगौरवम्, न पूर्वदर्शनदाक्षिण्यम्, न प्रज्ञासंविभागोपप्रलोभनम्, न विद्यातिशयकुतुहलम्, नाकारसौन्दर्यादरः, न सेवाकाकुकौशलम्, न विद्वद्गोष्ठीबन्धवैदग्ध्यम्, न वित्तव्ययवशीकरणम्, न राजवल्लभपरिचयः।

स्वरूपकथनं क्षतपादपल्लवत्वादुत्प्रेक्षणम्। खञ्जतीवेति। यश्च खञ्जति स शिखरप्राये विषमे पथि। ये पुनरस्ताचले शिखरस्खलनकारणकं खञ्जनमित्युत्प्रेक्षयन्ते तान्प्रति कमलिनीत्यादि निरर्थकम्। खञ्जतीव स्खलतीव। पुरः पूर्वस्यां दिशि।

अपराह्न का आतप क्षीण हो रहा था मानों मुकुलित होते हुए लाल कमलों ने उसे पी लिया हो। सूर्य ने अपने घोड़ों का वेग कम कर दिया और जपापुष्प के गुच्छे के समान पाटल होकर अस्ताचल के शिखर पर गिर पड़ा मानों कमलिनी के काँटे उसके पैरों में चुभ गये जिससे वह लँगड़ाने लगा मानों चन्द्रमा के विरहजन्य शोक से रात्रि का मुख (आरम्भ) नीला हो गया हो। अन्धकार के लम्बे-लम्बे बाल उस पर लहराने लगे। तब बाण ने सन्ध्योपासना की और शय्या पर पहुँच गये। फिर एकान्त में सोचने लगे—"मैं क्या करूँ? सम्राट् ने मुझे कुछ दूसरा समझ लिया है। अकारणबन्धु कृष्ण ने इस तरह का सन्देश भेजा (राजाओं की) सेवा कष्टकारी है, और हाजिरी बजाना और भी टेढ़ा है। राजदरबार में बड़े खतरे हैं। मेरे पुरखों को कभी न तो इससे रुचि रही है, न मेरा दरबार से पुश्तैनी सम्बन्ध रहा है। न तो राजकुल के द्वारा किये गए उपकार का स्मरण आता है, न बचपन में राजकुल से ऐसी मदद मिली है जिसका स्नेह माना जाय; न अपने कुल का ही ऐसा कोई गौरव रहा है, न पहली मेल-मुलाकात की अनुकूलता है; न यह प्रलोभन है कि बुद्धिसम्बन्धी विषयों में आदान-प्रदान किया जाय; न यह चाह है कि जान-पहचान बढ़ाऊँ; न सुन्दर आकाश से मिलने वाले आदर की चाह है; न सेवकों जैसी चापलूसी करने की आदत है; न मुझमें वैसी विलक्षण चतुराई है कि विद्वानों की गोष्ठियों में भाग लूँ; न पैसा खर्च करके दूसरों को वश में करने की आदत है; न राजा के प्रेमी जनों के साथ जान-पहचान है। जाना तो पड़ेगा ही। सर्वथा त्रिभुवन गुरु

अवश्यं गन्तव्यञ्च। सर्वथा भगवान्भवानीपतिर्भुवनपतिर्गतस्य मे शरणम्, सर्वं साम्प्रतमाचरिष्यति, इत्यवधार्य गमनाय मतिमकरोत्।

अथान्यस्मिन्नहन्युत्थाय, प्रातरेव स्नात्वा, धृतधवलदुकूलवासाः, गृहीताक्षमालः, प्रास्थानिकानि सूक्तानि मन्त्रपदानि च बहुशः समावर्त्य देवदेवस्य विरूपाक्षस्य क्षीरस्नपनपुरःसरां सुरभिकुसुमधूपगन्धध्वजबलिविलेपनप्रदीपकबहुलां विधाय परमया भक्त्या पूजाम्, प्रथमहुततरलतिलत्वग्विघटनचटुलमुखरशिखाशेखरं प्राज्याज्याहुतिप्रवर्धितदक्षिणार्चिषं भगवन्तमाशुशुक्षणिं हुत्वा, दत्त्वा द्युम्नं यथाविद्यमानं द्विजेभ्यः, प्रदक्षिणीकृत्य प्राङ्मुखीं नैचिकीम्, शुक्लाङ्गरागः, शुक्लमाल्यः, शुक्लवासाः, रोचनाचित्रदूर्वाग्रपल्लवग्रथितगिरिकर्णिकाकुसुमकृतकर्णपूरः, शिखासक्तसिद्धार्थकः, पितुः कनीयस्या स्वस्रा मात्रेव स्नेहार्द्रहृदयया श्वेतवाससा साक्षा-

---

श्यामा रात्रिः, योषिच्च। मुखमारम्भः, वदनं च। निर्निमित्तेत्याद्यभिप्रायेण वक्ष्यति। अवश्यं गन्तव्यं चेत्यादि। 'काकुः स्त्रियां विकारो यः शोकभीत्यादिभिर्ध्वनेः'। इह च लक्षणया वक्रोक्तिः। सांप्रतं युक्तम्।

अथेत्यादौ। अन्यस्मिन्नहनि प्रीतिकूटान्निरगादिति संबन्धः। प्रस्थानं प्रयोजनं येषां तानि प्रास्थानिकानि सूक्तानि, वेदोक्ता मन्त्रविशेषाः। विरूपाक्षस्त्र्यक्षः। प्राज्यं भूरि। आज्यं घृतम्। द्युम्नं धनम्। यथाविद्यमानमित्यनेन निर्लोभतोक्ता। नैचिकीं वराङ्गीम्, होमधेनुं वा, शुक्लां वा। गिरिकर्णिकाश्वखुरी माङ्गल्यौषधिः। सिद्धार्थकाः सर्षपाः। स्वस्रा भगिन्या। महाश्वेता देवताविशेषः। रविस्थदेवते-

---

भगवान् शंकर तेरी शरण हैं, वहीं जाने पर सब भला करेंगे। यही सोचकर चलने का इरादा पक्का कर दिया।

दूसरे दिन बाण उठा, प्रातःकाल ही स्नान कर लिया। श्वेत दुकूल पहनकर हाथ में अक्षमाला ली। प्रास्थानिक सूक्तों और मन्त्रों को बार-बार दुहराया और देवों के देव भगवान् शंकर को दूध से स्नान कराके सुगन्धित फूल, धूप की गन्ध, ध्वज, भोग, विलेपन, प्रदीप आदि सामग्री के साथ बड़ी श्रद्धा-भक्ति से अर्चना की। अग्नि में आहुति दी। पहली बार तिल की आहुति पड़ते ही अग्नि की शिखाएँ चटकने लगीं और अधिक घी की आहुति पड़ते ही दाहिनी ओर बढ़ गई। अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों को दक्षिणा दी। पूर्व की ओर खड़ी हुई उत्तम गौ की प्रदक्षिणा की। श्वेत चन्दन, श्वेत माला और श्वेत वस्त्र धारण किया। गोरोचना लगाकर दूबनाल में गुथे हुए श्वेत अपराजिता के फूलों का कर्णफूल कान में लगाया, चोटी में पीली सरसों रखी। पिता

दिव भगवत्या महाश्वेतया मालत्याख्यया कृतसकलगमनमङ्गलः, दत्ताशीर्वादो बान्धववृद्धाभिः, अभिनन्दितः परिजनजरतीभिः वन्दितचरणैरभ्यनुज्ञातो गुरुभिः, अभिवादितैराघ्रातः शिरसि कुलवृद्धैः, वर्धितगमनोत्साहः शकुनैः, मौहूर्तिकमतेन कृतनक्षत्रदोहदः, शोभने मुहूर्ते हरितगोमयोपलिप्ताजिरस्थण्डिलस्थापितमसितेतरकुसुममालापरिक्षिप्तकण्ठं दत्तपिष्टपञ्चाङ्गुलपाण्डुरं मुखनिहितनवचूतपल्लवं पूर्णकलशमीक्षमाणः, प्रणम्य कुलदेवताभ्यः कुसुमफलपाणिभिरप्रतिरथं जपद्भिर्निजद्विजैरनुगम्यमानः, प्रथमचलितदक्षिणचरणः, प्रीतिकूटान्निरगात् ।

प्रथमेऽहनि तु घर्मकालकष्टं निरुदकं निष्पत्रपादपविषमं पथिकजननमस्क्रियमाणप्रवेशपादपोत्कीर्णकात्यायनीप्रतियातनं शुष्कमपि पल्लवितमिव तृषितश्वापदकुलजृम्भितलोलजिह्वालतासहस्रैः पुलकितमिवाच्छभल्ल-

---

त्यन्ये । दत्तेत्यादिभागो बान्धववृद्धाभिप्रायेण समुचित एव । अभिनन्दित इति । प्रतिपदं द्वयमूह्यम् । जरत्यो वृद्धाः । आघ्रातः शिरसि चुम्बितः । मौहूर्तिका गणकाः । नक्षत्रदोहदं प्रतिनक्षत्रप्राशनम्, नक्षत्रविषयोऽभिलाषो वा । अजिरमङ्गनम् । स्थण्डिलं भूः । परिक्षिप्तो वेष्टितः । पिष्टपञ्चाङ्गुलमाजकोक्ताभिः । पञ्चभिरङ्गुलीभिर्मङ्गल्याय दीयते । अप्रतिरथं प्रास्थानिकं मन्त्रम् । निजेत्यादिना स्वस्य दातृत्वमुक्तम् ।

उत्कीर्णा निखाता । कात्यायनी दुर्गा । प्रतियातना प्रतिमा । काननत्वात्पल्ल-

---

की छोटी बहन की भांति माता के समान स्नेह से भीने हृदयवाली, साक्षात भगवती महाश्वेता मालती ने प्रस्थान-समय के समस्त मङ्गलाचरण किये । सभी वृद्धाओं ने आशीर्वाद दिया और परिवार की वृद्धाओं ने अभिनन्दन किया । पूजितचरण गुरुओं ने जाने की अनुमति दी और अभिवादित कुलवृद्धों ने मस्तक सूँघा । शकुनों से जाने का उत्साह बढ़ा । फिर ज्योतिषी के अनुसार नक्षत्र-देवताओं को प्रसन्न किया । इस प्रकार शुभ मुहूर्त में हरित गोबर से लिपे हुए आँगन के चौतरे पर स्थापित पूर्ण कलश—जिसके कण्ठ में श्वेत फूलों की माला लपेट दी गई थी, जो पिसान के पंचांगुल थापों से उजला था एवं जिसके मुख में नये आम के पल्लव डाल दिये गये थे—को देखता हुआ, कुलदेवताओं को प्रणाम करके, हाथ में फल-फूल लिये हुए और अप्रतिरथ सूक्त के मन्त्रों का पाठ करते हुए अपने पुरोहित ब्राह्मणों द्वारा अनुगत होकर बाण दाहिना पैर पहले चलाकर प्रीतिकूट से निकल गया ।

पहले दिन चण्डिका वन पार किया और मल्लकूट नामक गाँव में पड़ाव किया । चण्डिकावन में घाम का कष्ट होने लगा, वहां पानी का अभाव था, पत्रहीन वृक्षों के कारण वह वन

गोलाङ्गूललिह्यमानमधुगोलचलितसरघासंघातैः, रोमाञ्चितमिव दग्धस्थलीरूढस्थूलाभीरुकन्दलशतैः, शनैश्चण्डिकायतनकाननमतिक्रम्य मल्लकूटनामानं ग्राममगात् । तत्र च हृदयनिर्विशेषेण भ्रात्रा सुहृदा च जगत्पतिनाम्ना संपादितसपर्यः सुखमवसत् । अथापरेद्युरुत्तीर्य भगवतीं भागीरथीं यष्टिगृहकनाम्नि वनग्रामके निशामनयत् । अन्यस्मिन्दिवसे स्कन्धावारमुपमणिपुरमन्वजिरवति कृतसन्निवेशं समाससाद । अतिष्ठच्च नातिदूरे राजभवनस्य ।

निर्वर्तितस्नानाशनव्यतिकरो विश्रान्तश्च मेखलकेन सह याममात्रावशेषे दिवसे भुक्तवति भूभुजि प्रख्यातानां क्षितिभुजां बहूञ्शिबिरसंनिवेशान्वीक्षमाणः शनैः शनैः पट्टबन्धार्थमुपस्थापितैश्च डिण्डिमाधिरोहणायाहूतैश्चाभिनवबद्धैश्च विक्षेपोपार्जितैश्च कौशलिकागतैश्च प्रथमदर्शन-

---

वितमिवेत्युत्प्रेक्षा । जिह्वैव लता, दीर्घत्वात् । गोलाङ्गूलः कृष्णमुखो वानरः । मधुगोलं माक्षिककरण्डः । सरघा मधुमक्षिकाः । अभीरुः शतावरी । कन्दलानि नवनालानि । भ्रात्रेति चन्द्रसेनेन । हृदयेत्याद्यभिप्रायेण सुखमित्युक्तम् । उपमणिपुरं पत्तनभेदम् । अन्वजिरवति नदीभेदनिकटे । संनिवेशो गृहादिरचना ।

निर्वर्तितेत्यादौ राजद्वारमीदृशमगमदिति संबन्धः । निर्वर्तितेत्यादि । राजदर्शनेऽकातरत्वमात्मनः प्रतिपादयति । वारणेन्द्रैः श्यामायमानमिति राजद्वारविशे-

---

तकलीफदेह था, वन के प्रवेश-वृक्षों पर कात्यायनी की मूर्तियाँ खुदी हुई थीं जिन्हें पथिक नमस्कार करते थे । वह वन सूख गया था, फिर भी श्वापद जन्तुओं की लपलपाती जीभों की हजारों लताएँ उसे मानों पल्लवित कर रही थीं । भालू और लंगूर मधुमक्खियों के छत्ते को चाटने लगते तो वे भन्नाकर उड़ने लगतीं मानों वन इस दृश्य से पुलकित था । दावाग्नि से जली हुई वनभूमि में सतावर के मोटे पौधे इस तरह निकल आये थे मानों वह जंगल रोमाञ्चित हो उठा हो । मल्लकूट ग्राम में बाण के अभिन्नहृदय भाई और मित्र जगत्पति ने उसकी आवभगत की और वह सुखपूर्वक ठहरा । दूसरे दिन बाण ने गङ्गा पार कर यष्टिगृहक नाम के वन गाँव में रात बिताई । अन्य दिन राप्ती (अजिरवती) के किनारे मणिपुर नामक ग्राम के समीप पड़ी हुई छावनी मे पहुँचा और राजभवन के पास ही ठहरा ।

बाण ने स्नान-भोजन आदि सम्पन्न करके विश्राम किया और जब एक पहर दिन रहा और महाराज भी भोजन कर चुके तब मेखलक के साथ वह राजाओं के अनेक शिविरों को देखता हुआ धीरे-धीरे राजद्वार के पास आया । राजद्वार बड़े-बड़े हाथियों से श्यामायमान था, कुछ

कुतूहलोपनीतैश्च नागवीथीपालप्रेषितैश्च पल्लीपरिवृढढौकितैश्च स्वेच्छायुद्धक्रीडाकौतुकाकारितैश्च दूतसंप्रेषणप्रेषितैश्च दीयमानैश्चाच्छिद्यमानैश्च मुच्यमानैश्च यामावस्थापितैश्च सर्वद्वीपविजिगीषया गिरिभिरिव सागरसेतुबन्धनार्थमेकीकृतैर्ध्वजपटपटुपटहशङ्खचामराङ्गरागरमणीयैः पुष्याभिषेकदिवसैरिव कल्पितैर्वारणेन्द्रैः श्यामायमानम्, अनवरतचलितखुरपुटप्रहतमृदङ्गैश्च नर्तयद्भिरिव राजलक्ष्मीमुपहसद्भिरिव सृक्विपुटप्रसृतफेनाट्टहासेन जवजडजङ्घां हरिणजातिमाकारयद्भिरिव संघट्टहेतोर्हर्षहेषितेनोच्चैरुच्चैःश्रवसमुत्पतद्भिरिव दिवसकररथतुरगरुषा यक्षायमाणमण्डनचामरमालेगगनतलं तुरङ्गैस्तरङ्गायमाणम्, अन्यत्र प्रेषितैश्च प्रेष्यमाणैश्च प्रेषितप्रतिनिवृत्तैश्च बहुयोजनगमनगणनसंख्याक्षरावलीभिरिव वराटिकावलीभिर्घटितमुखमण्डनकैस्तारकितैरिव संध्यातपच्छेदैररुणचामरिकारचितकर्ण-

---

षणम् । डिण्डिमः पटहः । विक्षेपः करः । नागवीथी हस्तिभूः । पल्ली शबरवसतिः । परिवृढः स्वामी । आकारितैराह्वानैः । 'आच्छिद्यमानैरपह्रियमाणैः । यत्र दिने पुष्यनक्षत्रे राजा स्नाति तद्दिनं पुष्याभिषेकाख्यम् । श्यामायमानं कालत्वमापद्यमानम् । अथ च दिवसः श्यामायति । रात्रिवदाचरतीति वक्रोक्तिः । अभिषेकदिनानि च ध्वजादिरम्याणि । अनवरतेत्यादौ । तुरङ्गैस्तरङ्गायमाणमिति संबन्धः । मृदोऽङ्गं मृदङ्गश्च मुरजः । सृक्विण्योष्ठपर्यन्तौ । अन्यत्रेत्यादौ—क्रमेलककुलैः कपि-

---

पट्टबन्ध के लिए लाये गये, कुछ धौंसे चढ़ाने के लिए लाये गये, कुछ नये पकड़े हुए, कुछ कर रूप में प्राप्त, कुछ उपहार में मिले, कुछ (सम्राट् के) प्रथम दर्शन के कुतूहल में लाये गये, कुछ नागवीथी या नागवन के अधिपतियों द्वारा भेजे गये, कुछ शबर बस्तियों के सरदारों द्वारा भेजे हुए, कुछ गजयुद्ध की क्रीडाओं और खेल-तमाशों के लिए बुलवाये गये या स्वेच्छा से दिये गये, कुछ दूत भेजने से भेजे गये, कुछ दिये गये, कुछ बलपूर्वक छीने गये, कुछ बंधन से मुक्त हुए और कुछ पहरे के लिए रखे गये थे, मानों समस्त द्वीपों पर विजय पाने की इच्छा से समुद्रों में पुल बांधने के लिए पहाड़ के पहाड़ जुट गये हों, ध्वजपट, पटह, शंख, चामर, अंगराग आदि से सजे हाथी दीख पड़े, मानों पुण्य अभिषेक के दिन हों। वहाँ घोड़े लहरों के समान मचल रहे थे। उनके चंचल खुरों की टाप हमेशा मृदंग की आवाज में जमीन पर पड़ रही थी, मानों राजलक्ष्मी को नचा रहे थे। थूथन तक बहते हुए मुँह के गाज के अट्टहास से वे मानों वेग में विजड़ित जाँघ वाले हरिणों का उपहास कर रहे थे। प्रसन्नता से इस तरह हिनहिना रहे थे मानों होड़ के लिए इन्द्र के घोड़े उच्चैःश्रवा को पुकार रहे हों। सूर्य के रथ

पूरैः सरक्तोत्पलैरिव रक्तशालिशालेयैरनवरतझणझणायमानचारुचामीकर-घुरुघुरुकमालिकैर्जत्करञ्जवनैरिव रणितशुष्कबीजकोशीशतैः श्रवणोपान्त-प्रेङ्खत्पञ्चरागवर्णोर्णाचित्रसूत्रजूटजटाजालैः कपिकपोलकपिलैः क्रमेलककुलैः कपिलायमानम्, अन्यत्र शरज्जलधरैरिव सद्यःस्रुतपयःपटलधवलतनुभिः कल्पपादपैरिव मुक्ताफलजालकजायमानालोकलुप्तच्छायामण्डलैर्नारायण-नाभिपुण्डरीकैरिवाश्लिष्टगरुडपक्षैः क्षीरोदोद्देशैरिव द्योतमानविकटविद्रुम-दण्डैः शेषफणाफलकैरिवोपरिस्फुरत्स्फीतमाणिक्यखण्डैः श्वेतगङ्गा-पुलिनैरिव राजहंसोपसेवितैरभिभवद्भिरिव निदाघसमयमुपहसद्भिरिव

लायमानमित्यन्वयः । वराटिकाः श्वेतिकाः । शालीनां भवनं क्षेत्रं शालेयम् । 'व्रीहिशाल्योर्ढक्' । बीजकोशी शिम्बिका । क्रमेलका उष्ट्राः । अन्यत्रेत्यादिनाऽऽत-पत्रखण्डैः श्वेतायमानमित्यन्वयः । सद्य इत्याद्यभिप्रायेण शरद्ग्रहणम् । स्रुतं निर्गतम् । पयः क्षीरम्, जलं च । पटलवत्तेन च धवला तनुराकारो येषाम् । अन्यत्र,—धवलाश्च ते तनवः, क्षीणाश्च ते । पुण्डरीकग्रहणेनाकारसदृशत्वमप्युच्यते । गरुडपक्षा रत्नभेदाः, गरुडस्य चाङ्गरुहाः । क्षीरोदेति । शुक्लतया राजहंसाः मुख्यनृपाः रक्तचञ्चुचरणा राजहंसाः । निदाघस्य तिरस्करणादभिभवद्भिरिवेत्युक्तम्—उपहस-

---

के घोड़ों की मानों ईर्ष्या से वे स्वयं अपनी चामरमाला को पंख बनाकर आकाश में उड़ जाना चाहते थे । अन्यत्र ऊँटों ने राजद्वार को कपिल वर्ण में परिणत कर दिया था । कुछ ऊँट भेजे गये थे, कुछ भेजे जा रहे थे, कुछ भेजे गये थे, फिर वापिस आ गये थे । उनके मुँह के चारों ओर कौड़ियाँ गूँथ कर पहना दी गई थीं जो मानों बहुत योजन पार करने पर उनकी संख्या गिनने के लिए अक्षरों की माला थी और वे कौड़ियों पर इस तरह लगतीं मानों सायंकाल के आतप के टुकड़े हों । ऊँटों के कानों में लाल चंवरियों के फूल लगे थे मानों लाल वर्ण वाले धान के खेतों में लाल कमल उत्पन्न हों । सोने के बने घुँघुरुओं की माला हमेशा उनके गले में झनझन आवाज करती थी, ऐसा लगता था जैसे सूखे हुए करंज-वनों में उनकी गुठलियों के बीज बज रहे हों । उनके कानों के पास पंचरंगी ऊन के फुन्दने लटक रहे रहे थे । वे वानर के कपोल की भाँति कपिल वर्ण के थे । अन्यत्र उजले-उजले अनेक छत्र उस प्रदेश को श्वेत द्वीप बना रहे थे । वे छत्र पानी बरस जाने के बाद बिल्कुल सफेद वर्ण वाले शरत् काल के मेघ के समान थे । कल्पवृक्षों की भाँति उनमें मोतियों की झालरें लगी थीं, जिनसे उत्पन्न आलोक के द्वारा छाया मिट गई थी । उनमें गारुड रत्न पिरोये गये थे जैसे विष्णु के नाभि कमलों में गरुड़ के पंख लगे रहते हैं । उनके दंड विद्रुम के बने थे, मालूम होता था वह क्षीर समुद्र का एक भाग हो गया हो । जैसे शेषनाग के फनों पर माणिक्य के टुकड़े चमकते रहते हैं उसी प्रकार इनमें

विवस्वतः प्रतापमापिबद्भिरिवातपं चन्द्रलोकमयमिव जीवलोकं जनयद्भिः कुमुदमयमिव कालं कुर्वद्भिर्ज्योत्स्नामयमिववासरं विरचयद्भिः फेनमयीमिव दिवं दर्शयद्भिरकालकौमुदीसहस्राणीव सृजद्भिरुपहसद्भिरिव शातक्रतवीं श्रियं श्वेतायमानैरातपत्रखण्डैः श्वेतद्वीपायमानम्, क्षणदृष्टनष्टाष्टदिङ्मुखं च मुष्णद्भिरिव भुवनमाक्षेपोत्क्षेपदोलायितुं दिनं गतागतानीव कारयद्भिरुत्सारयद्भिरिव कुनृपतिसम्पर्ककलङ्ककालीं कालेयीं स्थितिं विकचविशदकाशवनपाण्डुरदशदिशं शरत्समयमिवोपपादयद्भिर्बिसतन्तुमयमिवान्तरिक्षमाविर्भावयद्भिः शशिकररुचीनां चलतां चामराणां सह-

---

द्भिरिवेति । प्रतापस्योपहास एव समुचितो वैयर्थ्यात् । अथ च प्रतापपदेन भङ्ग्या विवस्वत आरोपितविजिगीषुव्यवहारत्वाच्छत्रुमनःसंतापकारि यश उक्तम् । आतपं प्रकाशम् । आपिबद्भिरिति । तस्य सर्वत एवादर्शनात् । जीवलोकमिति । यश्च जीवानां लोकस्तत्र कथं चन्द्रलोक इति विरोधः । कुमुदमयमिवेति । कुमुदमयत्वाच्छुक्लं भवति न तु कालम् । कुमुदमयं च समयं कार्तिकादि । ज्योत्स्नेति । वासरे ज्योत्स्ना न संभवतीति विरोधः । एवं च दिवः फेनमयीत्वम् । जलदे हि फेनानामभावः । कौमुदी कुमुदिनी, कार्तिकी च ज्योत्स्ना । पूर्वं सामान्येनोक्ता इति । विशेषेण श्वेता इवाचरन्तः श्वेतायमानाः । तैस्तत्र तेषां स्वत एव श्वेतत्वाच्छ्वेतपदेन कथमुपमानतेत्युच्यते । श्वेतगुणा इवाचरन्तः श्वेतायमानाः । तेन यथा श्वेतगुणयोगादन्यत्किंचिच्छ्वेतते तद्वदेतद्योगात् राजद्वारमिति । श्वेताः स्फटिका इत्यन्ये । केचित्तु 'श्वेतमानैः' इति पठन्ति । क्षणेत्यादौ चामराणां सहस्रैर्दोलायमानमित्यन्वयः ।

भी लगे हुए थे। गंगा के श्वेत सिकतिल तटों के समान उनके राजहंस की आकृतियाँ कढ़ी हुई थीं। मानो वे ग्रीष्मकाल पर विजय प्राप्त कर रहे थे, मानो सूर्य के प्रताप को हँस रहे थे, आतप को मानो पीते जा रहे थे, मानों जीवलोक को चन्द्रलोकमय बना रहे थे, काल को कुमुदमय बना रहे थे, दिन में चाँदनी ही चाँदनी फैला रहे थे, आकाश को मानों फेनमय दिखा रहे थे, असमय में हजारों चाँदनियों का निर्माण कर रहे थे; इन्द्र की सम्पत्ति का मानों उपहास कर रहे थे। चन्द्रमा की किरणों के समान उज्ज्वल चलते हुए चँवर भी स्कन्धावार की शोभा बढ़ा रहे थे। आठों दिशाओं को क्षणभर में ही स्पष्ट कर देते और क्षण भर में ढक लेते मानों इस प्रकार त्रिभुवन का ही अपहरण करने लगे हों। ऊपर नीचे डोलते हुए चामरों ने सूर्य की किरणों को क्रम से छोड़ते-रोकते हुए मानों दिन का आना-जाना लगा दिया था। कुत्सित राजाओं द्वारा कलंकित कलियुग के आचारों को मानों वे झाड़ रहे थे। शरत्काल की छटा को उत्पन्न कर रहे थे जिनमें काश के उजले-

स्त्रैर्दोलायमानम्, अपि च हंसयूथायमानं करिकर्णशङ्खैः, कल्पलतावनायमानं कदलिकाभिः, माणिक्यवृक्षकवनायमानं मायूरातपत्रैः, मन्दाकिनीप्रवाहायमाणमंशुकैः, क्षीरोदायमानं क्षौमैः, कदलीवनायमानं मरकतमयूखैः, जन्यमानान्यदिवसमिव पद्मरागबालातपैः, उत्पद्यमानापराम्बरमिवेन्द्रनीलप्रभापटलैः, आरभ्यमाणापूर्वनिशमिव महानीलमयूखान्धकारैः स्यन्दमानानेककालिन्दीसहस्रमिव गारुडमणिप्रभाप्रतानैः अङ्गारकितमिव पुष्परागरश्मिभिः, कैश्चित्प्रवेशमलभमानैरधोमुखैश्चरणनखपतितवदनप्रतिबिम्बनिभेन लज्जया स्वाङ्गानीव विशद्भिः कैश्चिदङ्गुलीलिखितायाः क्षितेर्विकीर्यमाणकरनखकिरणकदम्बव्याजेन सेवाचाम-

---

कलेरियं कालेयी। सर्वत्राग्निकलिभ्यां ढक्। पद्मरागा इव बालातपास्तैः। महानीला गरुडमणयः। पुष्परागाश्च मणिभेदाः। कैश्चिदित्यादौ शत्रुमहासामन्तैः समन्तादासेव्यमानमित्यन्वयः। सेवेत्यादि। त्वयेदानीं चामरग्रहणेन सेवनीय इति तेषां हि क्षितिः कलत्रमतस्तद्द्वारेण सेवनेच्छा। 'हारस्य यो मध्यमणिस्तरलः स प्रकी-

---

उजले फूल चारों ओर खिल जाते हैं, मानों आकाश को मृणालसूत्रों से भर रहे थे। हाथी के कानों के शंख हंससमूह की भाँति लग रहे थे। केले के खम्भे इस तरह लगाये गये थे कि राजद्वार कल्पलतावन के समान लग रहा था। नाचते हुए मोर के बहमण्डल की आकृति वाले मायूर आतपत्रों से वह स्थान माणिक्य के वृक्षों के वन के समान हो रहा था। वहाँ अंशुक इस तरह लहरा रहे थे कि आकाशगङ्गा का प्रवाह बन गया। क्षौम वस्त्रों से क्षीरसमुद्र का दृश्य उत्पन्न हो रहा था। मरकत मणियों की हरी-हरी किरणें इस तरह फैल गई थीं मानों वह केले का वन हो। पद्मराग मणियों की लाल-लाल किरणें उषाकाल की लाली के समान छिटक रही थीं मानों दूसरा दिन होने लगा हो। इन्द्रनीलमणियों की नीली प्रभा के फैलने से मानों दूसरा आकाश उत्पन्न हो गया ऐसा लग रहा था। महानील मणियों की किरणें इस तरह फैल रही थी मानों कोई अपूर्व रात्रि ही उत्पन्न होने वाली हो। गारुड मणियों की प्रभा इस प्रकार फैलती जा रही थी मानो यमुना के हजारों प्रवाह चल पड़े हों। पुष्पराग मणियों की रश्मियाँ अङ्गारे की भाँति लग रही थीं। भुजनिर्जित अनेक शत्रु महासामन्त वहाँ उपस्थित थे। कुछ तो भीतर प्रवेश नहीं पाने के कारण मुख नीचा किये हुए खड़े थे, चरण के नखों पर उनका मुख प्रतिबिम्बित हो रहा था मानो वे लज्जा के कारण अपने ही अङ्गों में सिमटते जा रहे थे। कुछ बैठे-बैठे अंगुलियों से जमीन पर लिख रहे थे, अपने नख के फैलते हुए किरणजाल से महाराज की सेवा में मानो

राणीवार्पयद्भिः कैश्चिदुरःस्थलदोलायमानेन्द्रनीलतरलप्रभापट्टैः स्वामिकोपप्रशमनाय कण्ठबद्धकृपाणपट्टैरिव कैश्चिदुच्छ्वाससौरभभ्राम्यद्भ्रमरपटलान्धकारितमुखैरपहृतलक्ष्मीशोकधृतलम्बश्मश्रुभिरिवान्यैः शेखरोड्डीयमानमधुपमण्डलैः प्रणामविडम्बनाभयपलायमानमौलिभिरिव निर्जितैरपि सुसंमानितैरिवानन्यशरणैरन्तरान्तरा निष्पततां प्रविशतां चान्तरप्रतीहाराणामनुमार्गप्रधावितानेकार्थिजनसहस्राणामनुयायिनः पुरुषान श्रान्तैः पुनः पुनः पृच्छद्भिः 'भद्र ! अद्य भविष्यति भुक्त्वा स्थाने दास्यति दर्शनं परमेश्वरः, निष्क्रमिष्यति वा बाह्यां कक्षाम्' इति दर्शनाशया दिवसं नयद्भिर्भुजनिर्जितैः शत्रुमहासामन्तैः समन्तादासेव्यमानम्, अन्यैश्च प्रतापानुरागागतैर्नानादेशजैर्महामहीपालैः प्रतिपालयद्भिर्नरपतिदर्शनकालमध्यास्यमानम्, एकान्तोपविष्टैश्च जैनैरार्हतैः पाशुपतैः पाराशरिभिर्वर्णिभिः सर्वदेशजन्मभिश्च जनपदैः सर्वाम्भोधिवेलावनवलयवासिभिश्च म्लेच्छ-

---

तितः' । चपलो वा । शेखरं मुण्डमालिकम् । मौलयः केशाः । निर्जितैः पुरस्कृतन्यक्कृतैः, राजसेवाप्राप्तैः, संमानितैः पूजितैरिव । अनुयायिन इति । तेषां स्वयं सुलभत्वात् । जैनैः शाक्यैः । आर्हतैर्नग्नक्षपणकैः । पाशुपतैः शैवभेदैः । पराशरेण

चँवर अर्पित कर रहे हों । कुछ के वक्ष पर लटकते हुए इन्द्रनील की प्रभा तरल हो रही थी मानो उन्होंने महाराज के क्रोध को शान्त करने के लिए अपने-अपने कण्ठ में कृपाण बाँध लिये थे । कुछ के मुख पर उच्छ्वास की सुगन्ध से भौंरे छा गये थे, मानों लक्ष्मी के अपहरण कर लिये जाने के शोक से उन्होंने बड़ी लम्बी दाढ़ी बढ़ा रखी थी । उनके मस्तक के ऊपर भौंरे मँडरा रहे थे, मानो प्रणाम करने के लिए झुकने के तिरस्कार के भय से उनके धम्मिल्ल उड़े जा रहे थे । वे पराजित थे, फिर भी सम्मानित के समान थे । उनका कोई दूसरा आश्रय नहीं था । बीच-बीच में अन्तःपुर से द्वारपाल निकलते तो उनके पीछे-पीछे अनेक याचक दौड़ पड़ते, आगे जानेवाले पुरुषों से ये शत्रुसामन्त बिना थकते पूछते रहते थे कि 'भद्र, सजाये जाते हुए मुक्तास्थानमण्डप में सम्राट् आज दर्शन देंगे या वे बाहरी आस्थानमण्डप में निकल कर आयेंगे ?' इस प्रकार सम्राट् के दर्शनों की आशा में दिन बिताते थे । भिन्न-भिन्न देशों के दूसरे राजे जो प्रताप अनुराग से पधारे हुए थे, महाराज के दर्शनों के अवसर की प्रतीक्षा में वहाँ विराजमान थे । एक ओर बौद्ध, जैन, शैव, संन्यासी, ब्रह्मचारी, अनेक देशों के लोग, समुद्रों के तटवर्ती जंगलों के निवासी म्लेच्छ और अनेक देशों के आये हुए राजदूत वहाँ वर्तमान थे । वह राजद्वार मानो प्रजा-

जातिभिः सर्वदेशान्तरागतैश्च दूतमण्डलैरुपास्यमानम् सर्वप्रजानिर्माणभूमिमिव प्रजापतीनां, लोकत्रयसारोच्चयरचितं चतुर्थमिव लोकम्, महाभारतशतैरप्यकथनीयसमृद्धिसंभारम्, कृतयुगसहस्रैरिव कल्पितसन्निवेशम् स्वर्गार्बुदैरिव विहितरामणीयकम्, राजलक्ष्मीकोटिभिरिव कृतपरिग्रहं राजद्वारमगमत्।

अभवच्चास्य जातविस्मयस्य मनसि—'कथमिवेदमियत्प्रमाणं प्राणिजातं जनयतां प्रजासृजां नासीत्परिश्रमः, महाभूतानां वा परिक्षयः, परमाणूनां वा विच्छेदः, कालस्य वान्तः, आयुषो वा व्युपरमः, आकृतीनां वा परिसमाप्तिः' इति। मेखलकस्तु दूरादेव द्वारपाललोकेन प्रत्यभिज्ञायमानः 'तिष्ठतु तावत्क्षणमात्रमत्रैव पुण्यभागी' इति तमभिधायाप्रतिहतः पुरः प्राविशत्।

प्रोक्तमधीयते पाराशरिणो यतयस्तैः। वर्णिभिर्ब्रह्मचारिभिः। सर्वप्रजेति। अत्र हि स्थित्वा यदि प्रजापतयो न सृज्येयुः तत्कथं सर्वे भावाः कारणभूता इव तत्र लक्ष्येरन्। अर्बुदं दशकोटयः। कोटिर्लक्षशतम्। इह तु बहुसंख्योपलक्षणार्थावर्बुदकोटिशब्दौ।

परिसमाप्तिरनारम्भः। तिष्ठत्विति। विद्यायुक्ते कदाचिदनादरशङ्केत्येतदर्थमाह—पुण्यभागीति।

पतियों को सब प्रकार की प्रजाओं के निर्माण का स्थान था। तीनों लोकों के सार को इकट्ठा करके मानो कोई चौथा लोक बना दिया गया था। सैकड़ों महाभारत भी लिखे जाँय फिर भी उसके वैभव का वर्णन नहीं किया जा सकता। मानो हजारों सतयुगों ने अपने-अपने रहने के लिए वहां भवन बना लिया था। मानो करोड़ों स्वर्ण उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। करोड़ों की संख्या में राजलक्ष्मी ने आकर उसे मानों अपना आश्रय बना लिया था।

बाण को आश्चर्य हुआ, उसके मन में हुआ—'इतने प्राणियों को उत्पन्न करते हुए प्रजापतियों को कैसे नहीं थकान हुई? या पांचों महाभूत समाप्त क्यों न हुए? परमाणुओं का विच्छेद क्यों न हुआ? समय का अन्त या आयु का खात्मा या आकृतियों की परिसमाप्ति क्यों न हुई?' इधर मेखलक को दूर से ही द्वारपालों ने पहचान लिया। 'पुण्यभागी आप क्षण भर नहीं ठहरें' बाण से यह कह मेखलक बेरोकटोक भीतर घुस गया।

अथ स मुहूर्तादिव प्रांशुना, कर्णिकारगौरेण, वीध्रकञ्चुकच्छन्नवपुषा, समुन्मिषन्माणिक्यपदकबन्धबन्धुरवस्तबन्धकृशावलग्नेन, हिमशैल-शिलाविशालवक्षसा, हरवृषककुदकूटविकटांसतटेन, उरसा चपलहृषीक-हरिणकुलसंयमनपाशमिव हारं बिभ्रता, 'कथयतं यदि सोमवंशसंभवः सूर्यवंशसंभवो वा भूपतिरभूदेवंविधः' इति प्रष्टुमानीताभ्यां सोमसूर्याभ्या-मिव श्रवणगताभ्यां मणिकुण्डलाभ्यां समुद्भासमानेन, वहद्वदनलावण्य-विसरवेणिकाक्षिप्यमाणैरधिकारगौरवाद्दीयमानमार्गेणेव दिनकृतः किरणैः प्रसादलब्धया विकचपुण्डरीकमुण्डमालयेव दीर्घया दृष्ट्या दूरादेवानन्द-यता, नैष्ठुर्याधिष्ठानेऽपि प्रतिष्ठितेन पदे पदे प्रश्रयमिवावनम्रेण, मौलिना

अथेत्यादौ। ईदृशपुरुषेणानुगम्यमानो निर्गत्यावोचदिति संबन्धः। अन्तराले स्वत्वन्तरादिवर्णनामावादथेत्यादिना समनन्तरमेव निर्गमनेन पुनरादर एव प्रतीयते। अत आह—मुहूर्तादिवेति। पुरुषानुगतत्वेन चादर एव पोष्यते। वीध्रं निर्मलम्। बन्धुरं शोभनम्। वस्तं सुवर्णपट्टिकाकटिसूत्रम्। तस्य बन्धेन निवेशनेन कृशमवलग्नं मध्यं यस्य तेन। हिमशैले। हिमग्रहणं राज्ञो धवलत्वात्। हरग्रहणं जराशौक्ल्यप्रतिपादनाय पूर्ववत्। हृषीकाणीन्द्रियाणि। आनीताभ्यामिति। आनयने तस्य प्रभविष्णुता ध्वन्यते। यश्च स्त्रष्टुमानीयते स स्रवणं गच्छति। वेणिका

तब कुछ ही क्षण में मेखलक बाहर निकला उसके पीछे-पीछे एक दूसरा भी पुरुष था। वह लम्बा और कर्णिकार की भाँति पीतवर्ण का था। उसका शरीर निर्मल कंचुक से ढँका था। उसकी कमर चमकते हुए माणिक्य के पदकों वाली सुन्दर पेटी से बँध जाने के कारण पतली हो गई थी। उसकी छाती हिमालय की चट्टान के समान चौड़ी थी। शिव के वाहन वृषभ की पीठ के टाट के समान उसके दोनों कन्धे थे। वह अपने चंचल इन्द्रिय-हरिणों को बांध रखने के लिए पाश के समान अपने वृक्ष पर हार धारण किये हुए था। चन्द्र और सूर्य के समान मणिकुण्डल उसके कानों में शोभित हो रहे थे, मानों वे (चन्द्र और सूर्य) उन कानों से पूछ रहे थे कि 'यदि चन्द्रवंश में या सूर्यवंश में कोई हर्ष जैसा सम्राट् उत्पन्न हुआ हो तो उसे बताओ।' वह दूर ही से अपनी बड़ी-बड़ी आँखों द्वारा आनन्दित कर रहा था, उसकी आँखें खिले हुए पुण्डरीक की मानो मुण्डमाला थी, जिसे सूर्य की किरणों ने प्रसन्न होकर मानो अर्पित किया था, क्योंकि उसके मुख की लावण्यप्रभा के प्रवाह से वे किरणें बिल्कुल तिरस्कृत हो रही थीं, फिर भी सूर्य के अधिकार-गौरव को देखकर उसने उनके लिए मार्ग दे दिया था। अत्यन्त निष्ठुर पद पर प्रतिष्ठित होने पर भी वह अपने झुके मस्तक से विनय की भाँति सफेद पगड़ी धारण किये था। उसके बायें हाथ में स्थूल

पाण्डुरमुष्णीषमुद्वहता, वामेन स्थूलमुक्ताफलच्छुरणदन्तुरत्सरुं करकिसलयेन कलयता कृपाणम्, इतरेणापनीततरलतां ताडिनीमिव लतां शातकौम्भीं वेत्रयष्टिमुन्मृष्टां धारयता पुरुषेणानुगम्यमानो निर्गत्यावोचत्— 'एष खलु महाप्रतीहाराणामनन्तरश्चक्षुष्यो देवस्य पारियात्रनामा दौवारिकः। समनुगृह्णात्वेनमनुरूपया प्रतिपत्त्या कल्याणाभिनिवेशी' इति। दौवारिकस्तु समुपसृत्य कृतप्रणामो मधुरया गिरा सविनयमभाषत— 'आगच्छत। प्रविशत देवदर्शनाय। कृतप्रसादो देवः' इति। बाणस्तु 'धन्योऽस्मि, यदेवमनुग्राह्यं मां देवो मन्यते' इत्युक्त्वा तेनोपदिश्यमानमार्गः प्राविशदभ्यन्तरम्।

अथ वनायुजैः, आरट्टजैः, काम्बोजैः, भारद्वाजैः, सिन्धुदेशजैः, पारसी-

---

प्रवाहः। वामेनेति। तदा तस्य व्यापारानुपपत्तेः अपनीतेत्यादिनास्य नियमविधायित्वं पोष्यते। उन्मृष्टामुत्तंसिताम्। अनेन भास्वरतैव पोष्यते। अनन्तरः प्रधानम्। चक्षुष्यः प्रियः। आगच्छतेत्यादौ बहुत्वनिर्देशेनादर एवास्यापाद्यते।

अथेत्यादौ एवंविधैस्तुरङ्गैरारचितां मन्दुरां विलोकयन्दूरादिमधिष्ण्यागारमपश्यदिति सम्बन्धः। वनायुजादीनि देशविशेषेणाश्वानां नामानि। शोणैरित्यादि-

---

मोतियों की जड़ाऊ मूठ वाली तलवार था और दाहिनी हाथ में तरलता से रहित विद्युल्लता के समान; चमक चढ़ी सोने की वेत्रयष्टि थी। मेखलक ने कहा—'यह महाप्रतिहारों का मुखिया, महाराज का प्रिय, परियात्र नामक दौवारिक है। कल्याण में अभिनिवेश रखने वाले आप इसका उचित सम्मान करें। दौवारिक पारियात्र ने पास आकर प्रणाम किया और मधुर आवाज में विनयपूर्वक बोला—'आप आइए, और महाराज के दर्शन के लिए प्रवेश कीजिए, महाराज आप पर प्रसन्न हैं। बाण ने कहा—'मैं धन्य हूँ, जो मुझे महाराज इस प्रकार अपने अनुग्रह के योग्य समझ रहे हैं।' यह कहकर पारियात्र के द्वारा मार्ग दिखाने जाने पर बाण ने भीतर प्रवेश किया।

बाण ने भीतर प्रवेश करते ही अनेक राजवल्लभ तुरङ्गों की बनी हुई मन्दुरा (घोड़साल) देखी। वहाँ कुछ वनायुज (वानाघाटी वजीरिस्तान में उत्पन्न) घोड़े, कुछ आरट्टज (वाहीक या पंजाब में उत्पन्न) घोड़े; कुछ काम्बोज (मध्य एशिया में वन्धु नदी के पामीर प्रदेश में उत्पन्न) घोड़े, कुछ भारद्वाज (उत्तरी गढ़वाल के) घोड़े, कुछ सिन्धुदेशज (सिंधसागर या थल दोआब के उत्पन्न) घोड़े, कुछ पारसीक (सासानी ईरान के) घोड़े थे। कुछ शोण (लालकुम्मैत), कुछ श्याम (मुश्की), कुछ श्वेत (सब्जा), कुछ पिञ्जर (समंद), कुछ हरित (नीलासब्जा),

कैश्च, शोणैश्च, श्यामैश्च, श्वेतैश्च, पिञ्जरैश्च, हरिद्भिश्च, तित्तिरिकल्माषैश्च, पञ्चभद्रैश्च, मल्लिकाक्षैश्च, कृत्तिकापिञ्जरैश्च, आयतनिर्मांसमुखैः, अनुत्कटकर्णकोशैः, सुवृत्तश्लक्ष्णसुघटितघण्टिकाबन्धैः, यूपानुपूर्वीवक्रायतोदग्रग्रीवैः, उपचयश्वसत्स्कन्धसंधिभिः, निर्भुग्नोरःस्थलैः अस्थूलप्रगुणप्रसृत-

वर्णविशेषवर्णनम् । 'शोणः पद्मारुणः स्मृतः' । पिञ्जरैरीषत्कपिलैः । हरिच्छुकनिभो वर्णः । तित्तिरिः पक्षिभेदस्तद्वच्चित्रैः । 'सिताश्च यस्य वाजिनः शफाः समस्तकं मुखम् । स पञ्चभद्रनामको नृपस्य राज्यसौख्यदः' ॥ शुक्लपर्यन्ते असिततारके नयने येषां ते मल्लिकाक्षाः । उक्तं च—'पृथुस्निग्धा समा चैव मल्लिकाकुसुमप्रभा । राजी यस्य तु पर्यन्ते परिक्षेप्ये तु लोचने ॥ सह यो मल्लिकाक्षस्तु दृष्टिपर्यन्ततारकः ॥' इति । तारकाः कदम्बककल्पानेकबिन्दुकल्माषितत्वचः कृत्तिकापिञ्जरा यतः । आयतेत्यादि । तदुक्तम्—'मुखं तन्वायतनतं चतुरस्रं समाहितम् । ऋजु चैवोपदिष्टं च परिपूर्णं च शस्यते ॥' इति । कृष्णेनाप्युक्तम्—'उज्जा अतुंगअत्थं णिम्मं संवाहिराण अच्चअणं' इति । अनुत्कटो ह्रस्वः । कोशो मध्यम् । शिरसो ग्रीवायाश्च यन्मध्यं स घण्टिकाबन्धः । यो निगाल इत्युच्यते तस्य सुवृत्तादि शस्यते । यदाह—'ग्रीवाशिरोऽन्तरश्लिष्टो दीर्घवृत्तः समाहितः । नाद्वर्तो नाधितो नातिदुर्नाहोऽतिविधानतः ॥ सुदिग्धोऽनुपदिग्धश्च निगालो गदितः शुभः ॥' इति । यूपो यज्ञचिह्नं तस्येवानुपूर्वी यस्याः । तथा वक्रा आयता उदग्रा उद्धुरा ग्रीवा येषाम् । तदुक्तम्—'ग्रीवा मूलम्बिनी वृत्ता दीर्घा च सुसमाहिता । गले बद्धा विदोर्वृत्ता तथा शिरसि चोद्यता । निगाले स्याच्च निर्मांसा वृद्धो साकुञ्चिता भृशम् । श्लिष्टमांसाप्रबद्धा च तुरगस्य प्रशस्यते ॥ इति । उपचयेत्यादि । तदुक्तम्—'स्कन्धः सुपरिपूर्णः स्याद्व्यक्तमांसः पृथुत्रिकः । बहुमांसाङ्गसंश्लिष्टः स्थिरमांसश्च पूरितः ॥' इति । निर्भुग्नं स्थूलत्वाद्बहिर्निःसृतम् । उक्तं च—'स्थूलास्थि महदच्छिद्रं पृथुलं यच्च निर्वलि । उर ईदृक्प्रशंसन्ति स्थूलक्रोडं महत्तरम् ॥ इति । निर्भुग्नमुत्पन्नद्रोणिकमिति केचित् ।

कुछ तित्तिरिकल्माष (तीतरपंखी) घोड़े थे। (शुभ लक्षणों वाले घोड़े थे जैसे) पञ्चभद्र (अर्थात् पञ्चकल्याण-हृदय, पृष्ठ, मुख और दोनों पार्श्वों में पुष्पित या भौंरी वाला), मल्लिकाक्ष (शुक्ल अपांग वाला) और कृत्तिकापंजर (तारों जैसी सफेद चित्तियों वाला, चितकबरा)। उनका मुँह लम्बा और मांसरहित था, कान छोटे-छोटे थे, घांटी (सिर और गर्दन की जोड) गोल, चिकनी और सुडौल थी, गर्दन ऊपर उठी हुई और यूप की तरह लम्बी और टेढ़ी थी, कन्धे की जोड़ मांस से फूली हुई थी, छाती निकली हुई थी, जांघें पतली और सीधी थीं, खुर लोहे की भांति कड़े थे; वेग में टूटने के भय से मानो अँतड़ियों से रहित और गोल उदर भाग था (पीठ, छाती, कटि भागों के मांस के खिच जाने से)

र्लोहपीठकठिनखुरमण्डलै:, अतिजवत्रुटनभयादनिर्मितान्त्राणीवोदराणि वृत्तानि धारयद्भिः, उद्यद्द्रोणीविभज्यमानपृथुजघनैः, जगतीदोलायमानबालपल्लवैः, कथमप्युभयतो निखातदृढभूरिपाशसंयमननियन्त्रितैः, आयतैरपि पश्चात्पाशबन्धपरवशप्रसारितैकाङ्घ्रिभिरायततरैरिवोपलक्ष्यमाणैः, बहुगुणसूत्रग्रथितग्रीवागण्डकैः, आमीलितलोचनैः, दूर्वारसश्यामलफेनलवशबलान् दशनगृहीतमुक्तान् फरफरितत्वचः कण्डूजुषः प्रदेशान् प्रचालयद्भिः, सालसवलितवालधिभिः, एकशफविश्रान्तिश्रमस्रस्तशिथिलितजघनार्धैः, निद्रया प्रध्यायद्भिश्च, स्खलितहुंकारमन्दमन्दशब्दायमानैश्च, ताडितखुरधरणीरणितमुखरशिखरखुरैर्लिखितक्ष्मातलैर्घासमभिलषद्भिश्च, प्रकीर्यमाणयवसग्रासरसमत्सरसमुद्भूतक्षोभैश्च, प्रकुपितचण्डचण्डालहुङ्कारकातरतरतरलतारकैश्च, कुङ्कुमप्रमृष्टिपिञ्जराङ्गतया सततसन्निहितनीरा-

---

अस्थूलप्रगुणप्रास्थतैर्निर्मांसऋजुजङ्घैः। उक्तं च—'जङ्घे वृत्ते दीर्घे निर्मांसे पूजिते निगूढसिरे' इति। मण्डलशब्देन वृत्तत्वमुच्यते। तदुक्तम्—'खुरास्तुरङ्गे वृत्ताश्च ह्रस्वाश्च सुदृढा घनाः' इति। तथा शिलातलनिभैः खुरैरिति। उदराणीति। तदुक्तम्—'उदरं वृत्तमगुरु मृगस्योपचितं तथा। अच्छिद्रह्रस्ववृत्ताल्पसमकुक्षि च पूजितम्॥' इति। द्रोणी शोभाविशेषः। यदाह—'पृष्ठोरःकटिपार्श्वस्थमांसोत्कर्षणनिर्मिता। द्रोणिकेति प्रशंसन्ति शोभा वाजिनि पञ्चमी॥' इति। बाला एव पल्लवाः। उभयत इति। अत्युद्दामवेगवत्त्वादुभयत्र पाशबन्धः। गण्डको भूषणभेदः। फरफरिताः पुनः पुनरीषत्कम्पिताः। वालधिः पुच्छः। शफः समुद्गयुक्तः पादः। खुरधरणी खुराधःकाष्ठपट्टाच्छादिता भूः। चण्डालोऽश्वपालः। प्रमृष्टिः प्रमार्जनम्। विता-

---

प्रकट होता हुआ शोभा-विशेष उनके पुट्ठों को विभक्त कर रहा था। पूँछ के बाल जमीन तक लटक रहे थे। किसी प्रकार अगाड़ी और पिछाड़ी गड़ी हुई, मजबूत रस्सियों से बंध कर उन्हें नियन्त्रण में रखा गया था। वे लम्बे थे, फिर भी पिछाड़ी बाँधने से उनका एक पैर बिल्कुल फल गया था, इससे और भी उनकी लम्बाई बढ़ गई थी। उनके गले का गण्डक नामक अलंकार तिगुने-चौगुने सूत में गुँथा हुआ था। वे अपने खुजलाहट युक्त अंगों, जो दूब के रस से साँवले फेनों से रंग गये थे, जिन्हें दाँतों से पकड़ कर छोड़ दिया था तथा जो फरफरा रहे थे, को चलाते रहते थे। आलस्य के साथ पूँछ टेढ़ी करते थे। एक ही खुर की टेक लेकर विश्राम करने से वे थक जाते और उनकी आधी जाँघ टटाने लगती। नींद में कुछ सोच रहे थे। हूँफकर धीरे-धीरे हिनहिनाने लगते थे। खुर से पृथ्वी पर ताड़न से मुखर खुरों के अग्र-भाग से पृथ्वी पर लिखते और घास की अभिलाषा कर रहे थे।

जनानलरक्ष्यमाणैरिवोपरिविततवितानैः, पुरःपूजिताभिमतदैवतैः, भूपाल-वल्लभैस्तुरङ्गैरारचितां मन्दुरां विलोकयन्, कुतूहलाक्षिप्तहृदयः किंचिदन्तरमतिक्रान्तो हस्तवामेनात्युच्चतया निरवकाशमिवाकाशं कुर्वाणम्, महता कदलीवनेन परिवृतपर्यन्तं सर्वतो मधुकरमयीभिर्मदस्रुतिभिर्नदीभिरिवापतन्तीभिरापूर्यमाणम्, आशामुखविसर्पिणा बकुलवनानामिव विकसतामामोदेन लिम्पन्तं घ्राणेन्द्रियं दूरादव्यक्तमिभधिष्ण्यागारमपश्यत्। अपृच्छच्च—'अत्र देवः किं करोति ?' इति। असावकथयत्—'एष खलु देवस्यौपवाह्यो वाह्यं हृदयं जात्यन्तरित आत्मा बहिश्चराः प्राणा विक्रमक्रोडासुहृद्दर्पशात इति यथार्थनामा वारणपतिः। तस्यावस्थानमण्डपोऽयं महान् दृश्यते'

नकं रक्तकम्। देवतात्र गोविन्दः आरचितां भूषिताम्। हस्तवामशब्दो भाष्यकृता वामहस्तमार्ग इत्यर्थे धृतः। बकुलेत्यादिना प्राशस्त्यमेव पोषयति। तदुक्तम्—'मालतीमुक्तपुंनागबकुलोपमसौरमम्। दानं पिष्टाम्बुसदृशं मुच्चच्छ्वेतं तु शीतलम्॥' इति। श्लैष्मिका दानलक्षणम्। एवं च धर्मलक्षणे तु प्रकोपसमयेऽपि तथाविधमदवर्णनया श्लेषप्रकृतित्वं प्रकाशयति—'श्लेष्मप्रकृतिकं श्रेष्ठं भद्रजातिं तथैव च' इति च शास्त्रकृता दर्शितम्। धिष्ण्यं मण्डपम्। औपवाह्यः क्रीडा हस्ती। यस्मात्केचन संनाह्याः केचिद्भद्रजातीया उभयस्वभावा भवन्ति करिणः। अस्य च यद्यपि विक्रमक्रीडासुहृदित्यनेन दर्पशात इति यथार्थनामा वारणपतिरित्यनेन च सांनाह्यत्वमेवोक्तम्, तथाप्यौपवाह्य इति कथनेऽर्धद्वयेऽपि योग्यत्वाद्भद्रजातीयत्वं चास्य

बिखेरी जाती हुई घासों के मत्सर से क्षुब्ध हो उठे थे। सईसों की तगड़ी डंपटान सुनकर मारे डर के उनकी पुतलियाँ दीन भाव से फिरने लगती थीं। उनके अङ्ग मानों केसर से मले गये थे अतः मानों उनके समीप सदा नीराजन अग्नि जलती हो। उनके ऊपर चँदोवे तने हुये थे। उनके सामने अभीष्ट देवता पूजे गये थे। मन्दुरा को देखकर बाण का हृदय कुतूहल से भर गया और कुछ आगे बढ़कर बायीं ओर दूर होने से अव्यक्त से हाथीसाल को देखा जो अत्यन्त ऊँचा होने से आकाश को अवकाशहीन बना रहा था। केलों के विशाल वन से वह चारों ओर से घिरा हुआ था। सब ओर से नदियों को भाँति बहती हुई मद की धारायें थीं जिन पर भौंरे झूल रहे थे। उसकी गन्ध दिशाओं में इस प्रकार फैल रही थी मानों मौलसिरी के फूलने की गन्ध नाक में भर रही हो। बाण ने मेखलक से पूछा—'यहाँ महाराज क्या करते हैं ?' उसने कहा—'यह महाराज का क्रीडाहस्ती यथार्थनामा दर्पशात है, जिसे वे युद्ध में साथ ले जाते है। यह महाराज का बाहरी हृदय है, दूसरे स्वरूप में आत्मा है, बहिश्चर प्राण है। उसका यह विशाल अवस्थान मण्डप दिखाई दे रहा है।' बाण ने उससे कहा—

इति। स तमवादीत्—'भद्र ! श्रूयते दर्पशातः। यद्येवमदोषो वा पश्यामि तावद्वारणेन्द्रमेव। अतोऽर्हसि मामत्र प्रापयितुम्। अतिपरवानस्मि कूतूहलेन' इति। सोऽभाषत—'भवत्वेवम्। आगच्छतु भवान्। को दोषः। पश्यतु तावद्वारणेन्द्रम्' इति।

गत्वा च तं प्रदेशं दूरादेव गम्भीरगलगर्जितैर्वियति चातककदम्बकैर्भुवि च भवननीलकण्ठकुलैः कलकेकाकलकलमुखरमुखैः क्रियमाणाकालकोलाहलम्, विकचकदम्बसंवादिमदसुरासौरभभरितभुवनम्, कायवन्तमिवाकालमेघकालम्, अविरलमधुबिन्दुपिङ्गलपद्मजालकितां सरसीमिवात्यवगाढां दशां चतुर्थीमुत्सृजन्तम्,

---

निश्चीयते। जात्यन्तरितो द्वितीयां जातिं हस्तिरूपां प्राप्तः। यद्येवमिति। यदि सत्यं दर्पशातोऽयमदोषो वेति। वाशब्दश्चार्थे। यदि च न दोष इत्यर्थः। यतो रसदानादिमयेन केनचिद् द्रष्टुं न लभ्यते। कुतूहलेन परवान्कुतूहलायितः।

गत्वेत्यादौ। दूरादेव दर्पशातमपश्यदिति सम्बन्धः। गर्जितं बृंहितम्। चातकाः स्तोकका:। नीलकण्ठा मयूराः। केका मयूररुतानि। मेघकालमिति। मेघकालश्च चातककदम्बनीलकण्ठकुलकदम्बकसौरभादियुक्तः। अविरला घना ये मधुबिन्दव इव मधुबिन्दवो माक्षिककणास्तद्वत्पिङ्गलानि पद्मजालकानि संजातानि यस्याम्। 'पद्मकं बिन्दुजालं स्याद्गात्रकं करिणामिति'। यथा—'पद्मस्वस्तिकसंस्थानो बिन्दुमिश्र कचैस्तथा। स्वङ्किताङ्गस्तुषाराभः शावः शक्तिकरः करी॥' इत्युक्तम्। अन्ये मधुबिन्दवो मकरन्दकणास्तैः पिङ्गलानीति व्याख्येयम्। महत्सरः सरसी। अत्यवगाढामिति। परिणताम्। दशां कालावस्थाम्। चतुर्थीमिति। 'चतुर्थीमवगाढायां

'भद्र, दर्पशात का नाम सुना जाता है। यदि ऐसी बात है और कोई झंझट न हो तो उस गजराज को देखूँगा। मुझे वहां ले चलो, मैं अपने कुतूहल के वेग से लाचार हूँ।' वह बोला—'ऐसी बात है तो आइये, झंझट क्या है ? तब तक गजराज को देख लें।'

उस स्थान में जाकर बाण ने दूर ही से दर्पशात को देखा। उसकी गम्भीर चिग्घाड़ से आकाश में चातक पक्षी और पृथ्वी पर गृहमयूर अव्यक्त-मधुर एवं केका की आवाज से मुखरित हो असमय में कोलाहल कर रहे थे। उसकी गम्भीर चिग्घाड़ सुनकर आकाश में चातक पक्षी मेघ की गड़गड़ाहट समझ कर कोलाहल करने लगे और पृथिवी के गृहमयूर अपनी केकावाणी द्वारा असमय में मुखरित हो उठे। खिले हुए कदम्ब के समान अपने मद की सुरासौरभ से उसने दिशाओं को भर दिया था। असमय में वर्षाकाल मानो शरीरधारी हो गया था। पूर्ण मधु-बिन्दुओं के कारण पिङ्गल वर्ण से पद्म-समूहों से भरी हुई सरसी की भांति सघन मधुमाक्षिकों की तरह पिङ्गल वर्ण के पद्मक नाम के बूंदों से युक्त परिपक्व चतुर्थी अवस्था को छोड़ रहा था।

अनवरतमवतंसशङ्खैरामन्द्रकर्णतालदुन्दुभिध्वनिभिः पञ्चमीप्रवेशमङ्गलारम्भमिव सूचयन्तम्, अविरतचलनचित्रत्रिपदीललितलास्यलयैर्दोलायमानदीर्घदेहाभोगवत्तया मेदिनीविदलनभयेन भारमिव लघयन्तम्, दिग्भित्तितटेषु कायमिव कण्डूयमानम्, आहवायोदस्तहस्ततया दिग्वारणानिवाह्वयमानम्, ब्रह्मस्तम्भमिव स्थूलनिशितदन्तेन करपत्रेण पाटयन्तम्, अमान्तं भुवनाभ्यन्तरे बहिरिव निर्गन्तुमीहमानम्; सर्वतःसरसकिसलयलतालासिभिर्लेशिकैश्चिरपरिचयोपचितैर्वनैरिव त्रिक्षिप्तं, सशैवलबिसविसरशबलसलिलैः सरोभिरिव चाधोरणैराधीयमाननिदाघसमयसमुचितोपचारानन्दम्, अपि च प्रतिगजदानपवनादानदूरोत्क्षिप्तैनानेकसमरविजयगणनालेखाभिरिव वलित्रलयराजिभिस्तनीयसीभिस्तरङ्गितोदरेणातिस्थवीयसा हस्तार्गलदण्डेनार्गलयन्तमिव सकलं सकुलशैलसमुद्रद्वीपकाननं ककुभां चक्रवालम्, एकं करान्तरार्पितेनोत्तरलाशेन

लेखाबिन्दुभिराचितः' इत्युक्तम् । शङ्खैः । शङ्खशब्दैरित्यर्थः । कर्णेत्यादि । कर्णौ च दुन्दुभिध्वनितौ । 'कर्णौ च करिणः कार्यकारिणौ सत्प्रशंसिनौ' इति । पञ्चमो दशा त्रिपदी । एकपदोत्क्षेपे पादत्रयावस्थितिः । लयो लीलाः । आहवः संग्रामः । ब्रह्मस्तम्भो ब्रह्माण्डम् । करपत्रं क्रकचं स्थूलनिशितदन्तं भवति । तच्च भेदयति स्तम्भम् । अमान्तमवर्तमानम् । लेशिकैर्घासिकैः । आधोरणैर्गजारोहैः । वलयाकारा वलिर्वलिवलयम् । अर्गलयन्तं सनाटकं कुर्वाणम् । कुमुदवनानीत्युत्प्रेक्षा । दन्तयोर्वर्णप्राशस्त्यमाह—'पयःकुमुदकुन्दाभौ केतकीकुमुदद्युती । मृगाङ्ककिरणालोकौ कीर्ति-

---

निरन्तर कानों के शंख गम्भीर कर्णताल तथा दुन्दुभि के समान आवाज द्वारा मानों वह पाँचवीं स्वास्थ्यदशा के प्रवेश का मंगलारम्भ सूचित कर रहा था । अपने तीन पैरों पर खड़ा होकर सुन्दर नृत्य की मुद्रा में स्थूल शरीर को निरन्तर लम्पित कर रहा था, मानों पृथिवी के धँस जाने के भय से बोझ को हल्का कर रहा हो । मानों वह (झूमता हुआ) दिशाओं की भीतों में अपनी देह खुजला रहा था । मानों अपनी सूँड़ उठा-उठाकर दिग्गजों को युद्ध के लिए गुहार रहा था । अपने मोटे-मोटे और तेज दाँतों के आरे से मानों ब्रह्माण्ड को फाड़ रहा था । वह संसार में न अटने के कारण मानो बाहर निकलना चाहता था । मेघों की भाँति बहुत दिनों के परिचित घसियारे सरस पत्तों और लताओं से उसे नचा रहे थे, तथा सरोवरों की भाँति महावत सेवार सहित कमलनाल के जलों को छिड़क कर ग्रीष्म-काल के समुचित उपचार का आनन्द उसे दे रहे थे । वह अपनी सूँड़ के अर्गलादण्ड को जिसमें मानों अनेक समरों की विजय की गणना-लेख हों, ऐसे महीन चारों ओर की लकीरों से मध्यभाग में युक्त था, प्रति-

कदलीदण्डेनान्तर्गतशीकरसिच्यमानमूलम्, मुक्तपल्लवमिवापरं लीलावलम्बिना मृणालजालकेन समररसोच्चरोमाञ्चकण्टकितमिव दन्तमाण्डमुद्वहन्तम्, विसर्पन्त्या च दन्तकाण्डयुगलस्य कान्त्या सरःक्रीडास्वादितानि कुमुदवनानीव बहुधा वमन्तम्, निजयशोराशिमिव दिशामर्पयन्तम्, कुकरिकीटपाटनदुर्विदग्धान् सिंहानिवोपहसन्तम्, कल्पद्रुमदुकूलमुखपटमिव चात्मनः कलयन्तम्, हस्तकाण्डदण्डोद्धरणलीलासु च लक्ष्यमाणेन रक्तांशुकमुकुमारतरेण तालुना कवलितानि रक्तपद्मवनानीव वर्षन्तम्, अभिनवकिसलयराशीनिवोद्गिरन्तम्, कमलकवलपीतं मधुरसमिव स्वभावपिङ्गलेन वमन्तं चक्षुषां, चूतचम्पकलवलीलवङ्गकक्कोलवन्त्येलालतामिश्रितानि ससहकाराणि कर्पूरपूरितानि पारिजातक-

---

कल्याणकारकौ ॥' इत्युक्तम् । रक्तांशुकेति । उक्तं च—'रक्तौष्ठतालुरसनम्' इति । स्वभावपिङ्गलेनेति । उक्तं च 'शशिसूर्यसमाभासे कलविङ्काक्षसन्निभे । प्रसन्नमधुपिङ्गे च स्थिरे चामीलने तथा ॥ अपरिस्राविणी चैव कुशाग्निनिभभास्वरे । नेत्रे शस्ते समे स्निग्धे दीर्घे चाविलपक्ष्मणी ॥' इति । चूतेत्यादिना प्रशस्तत्वमाह । यदाह—'उभयस्तुतिरप्येष विवर्णो हर्षवर्जितः । यदि स्यादपगन्धश्च तदासौ न

द्वन्दी हाथी के मद-जल की वायु ग्रहण करके दूर ऊपर उठाया मानों कुल पर्वतों, समुद्रों, द्वीपों और जंगलों सहित दिशाओं के चक्रवाल को अर्गलित कर रहा हो। उसने अपने दांत के बीच सूँड़ से कदली का पत्ररहित दण्ड रख लिया था यथा उसके पानी से दन्तमूल सिंच रहा था मानों उसका पल्लवरहित दूसरा दन्तकाण्ड लीला से लटकाये मृणालों से प्रतीत होता था कि समर के अनुराग से उत्पन्न रोमाञ्च के कंटक से युद्ध हो, इस प्रकार वह अपने दोनों दांतों का धारण कर रहा था। उसके दोनों दाँतों की कान्ति आगे की ओर फैल रही थी, मानो वह जलक्रीडा के समय चखे हुए कुमुदवनों को अनेक प्रकार से वमन कर रहा था, अपनी यशोराशि को दिशाओं के लिए (दाँत की किरणों के रूप में) अर्पित कर रहा था, उन शेरों पर हँस रहा था जो क्षुद्र गजों को विदीर्ण करके मतवाले बन जाते हैं, या वह कल्पवृक्ष के दुकूल का अपना मुखपट (रुमाल) बना रहा था। जब वह अपनी सूँड़ लीला से उठाया करता तो उसके मुख का रक्तांशुक के समान सुकुमार तालुभाग दिखाई देने लगता था, वह मानों गटके हुए लाल कमलों को बरसाने लगा हो, या नये-नये लाल पत्तों को उगल रहा हो। वह अपनी स्वाभाविक पीली आंखों से मानो कमलों के ग्रास के साथ पिये मधुरस का उद्गिरण कर रहा था। सहकार और कपूर से युक्त पारिजात के वन का उसने उपभोग किया जिनमें आम, चंपक, लवली, लवंग, इलायची के भी आस्वाद लिये थे, मानों इसी से दोनों कपोलों से बहती

वनानीवोपभुक्तानि पुनःपुन करटाभ्यां बहलमदामोदव्याजेन विसृजन्तम्, अहर्निशं विभ्रमकृतहस्तस्थितिभिरर्धखण्डितपुण्ड्रेक्षुकाण्डकण्डूयनलिखितैरलिकुलवाचालितैर्दानपट्टकैर्विलभमानमिव सर्वकाननानि करिपतीनाम्, अविरलोदविन्दुस्यन्दिना हिमशिलाशकलमयेन विभ्रमनक्षत्रमालागुणेन शिशिरीक्रियमाणम्, सकलवारणेन्द्राधिपत्यपट्टवन्धवन्धुरमिवोच्चैस्तरां शिरो दधानम्, मुहुर्मुहुः स्थगितापावृतदिङ्मुखाभ्यां कर्णतालतालवृन्ताभ्यां वीजयन्तमिव भर्तृभक्त्या दन्तपर्यङ्किकास्थितां राजलक्ष्मीम्, आयतवंशक्रमागतेन गजाधिपत्यचिह्नेन चामरेणेव चलता वाल-

---

सतां मतः ॥' इति करटाभ्यां गण्डाभ्याम् । अर्धेत्यादिनेक्षुकाण्डकस्य लेखनीसादृश्यमाह । लिखितैः कृतलेखैरप्यलिकुलेषु सत्सु वाचालितशब्दयोगो येषामित्यनेनालिकुलस्य लिप्यक्षररूपतां ध्वनयति । लिप्यक्षरेषु च सत्सु पाठ्यमानेषु वाचालता । दानपट्टकलिखितैः किंचिद्धि लभ्यते । अक्षरपाटिकैश्च तेषां हस्तस्थितिर्न क्रियते । दानि च वाच्यन्ते । यद्वा स्वहस्तेनाक्षरकरणं हस्तस्थितिः । हिमशिला वातवज्रीभूतं हिमम् । केचित्तु 'हिमानि हिमशकलानि चन्द्रकान्ताः' इत्याहुः । हिमस्य च तदा वर्णनानुचितत्वात् । पर्वतेभ्यो हिमानयनं सुलभमेवेति पूर्वोक्तमेव श्रेष्ठम् । यतश्चन्द्रकान्तानां दिवा स्रुतिर्न भवतीति । नक्षत्रमाला हस्त्याभरणभेदः । उच्चैस्तरामिति । उच्चं हि शिरः करिणः शस्यते । यदुक्तम्—'समं महच्च पूर्णं च नातिस्तब्धोच्चमस्तकम् । नावाग्रं नातिपृथुलं वितानावग्रहं मृदु ॥' इति । दन्तावेव

हुई मदधारा के व्याज से वह उन्हीं की गन्ध को फैला रहा था† । दिनरात वह अपने हाथ से तैयार किये गये, अर्ध-खण्डित ईख की लेखनी से लिखे गये एवं भौंरों द्वारा पढ़े गये दानपट्टों से करपतियों के सभी जंगलों को मानो प्राप्त कर रहा था । निरन्तर पानी टपकाने वाले, चन्द्रकान्त के टुकड़ों से बने नक्षत्रमाला नामक आभूषण में वह ठंडा हो रहा था । वह ऊँचा मस्तक, जो मानों सभी वारणेन्द्रों के आधिपत्य के पट्टबन्ध के कारण निम्नोन्नत था, धारण कर रहा था । बार-बार उसके कानों के पंखे चलते रहते थे जिससे दिशायें ढकती और खुलती रहती थीं । इस प्रकार वह अपने स्वामी की भक्ति से दाँत से पलंग पर बैठी हुई राजलक्ष्मी को पंखा झल रहा था । वह अपनी हिलती हुई पूँछ से, जो

---

† उस समय सहकार, कपूर, कक्कोल, लवंग, पारिजातक आदि सुगन्धद्रव्य थे जिनसे मुखवास बनाया जाता था, उसी की गन्ध दर्पशात के मदजल में थी, क्योंकि जंगलों में उसने भी इनके वृक्षों का उपयोग किया था ।

धिना विराजमानम्, स्वच्छशिशिरशीकरच्छलेन दिग्विजयपीताः सरित इव पुनःपुनर्मुखेन मुञ्चन्तम्, क्षणमवधानदाननिःस्पन्दीकृतसकलावयवानामन्यद्विरदडिण्डिमाकर्णनाङ्गवलनानामन्ते दीर्घफूत्कारैः परिभवदुःखमिवावेदयन्तम्, अलब्धयुद्धमिवात्मानमनुशोचन्तम्, आरोहाधिरूढिपरिभवेन लज्जमानमिवाङ्गुलीलिखितमहीतलम्, मदं मुञ्चन्तम्, अवज्ञागृहीतमुक्तकवलकुपितारोहारटनानुरोधेन मदतन्द्रीनिमीलितनेत्रत्रिभागम्, कथं कथमपि मन्दमन्दमनादरादाददानं कवलान्, अर्धजग्धतमालपल्लवसुतश्यामलरसेन प्रभूततया मदप्रवाहमिव मुखेनाप्युत्सृजन्तम्, [1]चलन्तमिव

तदवस्थानसमुचितत्वात्। पर्यङ्किका च दन्तमयः पर्यङ्कः आस्त इति श्लेषः। आयतवंशः, वक्रवंशः, शरवंशः' बालवंशश्चेति चत्वारो वंशाः। तेषु बालवंश आयत एव शास्त्रकृतामभिप्रेतः। तथा च—'यावत्पूरितपार्श्वश्च वंशश्चापलताकृतिः। शुभो ज्ञेयो गजेन्द्राणामायतः कुरुते सुखम्॥' इति तैरुक्तम्। आयताद्वंशात्तत्क्रमेण गोपुच्छवदायत इति विग्रहः। समानार्हो हि वालधिः शोकं करोति। यदुक्तम्—'वक्रं स्थूलं च ह्रस्वं च पुच्छं कचविवर्जितम्। समानार्हं हि नागस्य भर्तुः शोककरं स्मृतम्॥' इति। वंशं पृष्ठनाभिः, कुलं च। क्रम आनुपूर्वी; पारम्पर्यं च। वालधिः पुच्छम्। लज्जमानमिति। एष लज्जते स भूमिं लिखति, दर्पं चोज्झति। अंगुली करिकराग्रावयवः, करशाखा च। तन्द्री आलस्यम्, गाढनिद्रा वा। चलन्तमि-

---

उसके आयत पृष्ठवंश से निकली हुई, उसके गजाधिपत्य का चिह्न एवं चामर के समान थी, शोभित हो रहा था। अधिपति है। वह अपने मुँह से ठण्डे और सफेद जल के फुहारे बार-बार फेंकता रहता था, मानों दिग्विजय के समय सोखी हुई नदियों को उगल रहा हो। क्षण भर ध्यान देने से सभी अङ्गों को निश्चल कर देने वाले, दूसरे हाथियों के डिण्डिम घोष (यशोगान) के श्रवण से उत्पन्न अङ्गों के चाञ्चल्यरहित हो जाने से लम्बे फूत्कारों द्वारा अपने परिभव का कष्ट मानों आवेदन कर रहा था। वह पश्चात्ताप अनुभव करता कि उसे युद्ध करने का अवसर नहीं दिया जा रहा है। दूसरे उसकी पीठ पर चढ़ते तो वह अपना परिभव महसूस करके अपने नखों से जमीन पर कुछ लिखने लगता। मद का त्याग कर रहा था। उसने कौर लेकर भी अवज्ञा से छोड़ दिया, इसपर महावत ने कुपित होकर खाने के लिए अनुरोध किया तो उसने मद से अलसा कर आँखें बन्द कर लीं। बहुत प्रयत्न करने पर रह-रहकर अनादर से कौर ले लेता था। आधा खाये हुए तमाल-पत्रों से चूना हुआ सांवला पानी इतना अधिक हो गया था, मानों वह मुख से भी मद-प्रवाह को छोड़ रहा था। दर्प से वह मानो काँप रहा था, शौर्य से जीवित था, शौर्य

---

१. दलन्त।

दर्पेण, श्वसन्तमिव शौर्येण, मूर्च्छन्तमिव मदेन, त्रुट्यन्तमिव तारुण्येन, द्रवन्तमिव दानेन, वल्गन्तमिव बलेन, माद्यन्तमिव मानेन, उद्यन्तमिवोत्साहेन, ताम्यन्तमिव तेजसा, लिम्पन्तमिव लावण्येन, सिञ्चन्तमिव सौभाग्येन, स्निग्धं नखेषु, परुषं रोमविषये, गुरुं मुखे, सच्छिष्यं विनये, मृदुं शिरसि, दृढं परिचयेषु, ह्रस्वं स्कन्धबन्धे, दीर्घमायुषि, दरिद्रमुदरे, सततप्रवृत्तं दाने, बलभद्रं मदलीलासु, कुलकलत्रमायत्ततासु, जिनं क्षमासु, वह्निवर्षं क्रोधमोक्षेषु, गरुडं नागोद्धृतिषु, नारदं कलहकुतूहलेषु, शुष्काशनिपातमवस्कन्देषु, मकरं वाहिनीक्षोभेषु, आशीविषं दशनकर्मसु, वरुणं हस्तपाशाकृष्टिषु, यमवागुरामरातिसंवेष्टनेषु,

---

त्यादि दर्पाधिकरणसमुचितक्रियाप्रतिपादनसाभिप्रायं व्याख्येयम् । स्निग्धमिति । उक्तं च—'नखाः स्निग्धाः सिताः शस्ताः' इति । परुषं निष्कृपम् । यश्च स्निग्धः प्रीतिमान्स कथं परुषः प्रीतिशून्यो भवतीति विरोधः । एवं गुरुर्विस्तीर्णः, आचार्यश्च । विनय इति । उक्तं च—'विनये मुनिभिस्तुल्याः क्रुद्धा नागाश्च राक्षसाः । निस्त्रिंशस्याधिकत्वाच्च शस्त्रं नागा महीपतेः ॥' इति । स्कन्धबन्धे ग्रीवामूले । दरिद्रः कृशः दुर्गतश्च । दानं मदवारि वितरणं च । बलभद्रो हलधरः । मदो दानम्, सुराकृतश्च । नागाः करिणः, सर्पाश्च । कलहो रणोऽपि । अविदितशत्रुसैन्ये पातोऽवस्कन्दः । मकरं कूर्मम् । वाहिनी सेना नदी च । दशनकर्म दन्तव्यापारः, दशनरूपा च क्रिया । हस्त एव पाशः, प्रशस्तहस्तो हस्तपाश इति वा । हस्ते च पाशः । वागुरा जालम् । परिणतिषु दन्तविदारणकर्मसु । कालं यमम् । शुभाशुभादि-

---

से श्वास ले रहा था, मद से मूर्च्छित हो रहा था, जवानी से उसके अङ्ग-अङ्ग टूट रहे थे, दान-जल के रूप में वह ढल रहा था, बल से मचल रहा था, मान के कारण अपने मद को और भी प्रकट कर रहा था, उत्साह से उठ रहा था, तेज से तमतमा रहा था, वह अपने भड़कीले चेहरे से सबको लिप रहा था, सौभाग्य से सींच रहा था, स्निग्धता उसके नखों में थी, परुषता उसके रोमों में, गुरुता मुख में, सच्छिष्यता विनय में, मृदुता सिर में, दृढ़ता परिचय में, ह्रस्वता ग्रीवामूल में, लम्बी आयु, पेट छोटा और दान में हमेशा उसकी प्रवृत्ति थी, वह मद-लीलाओं में बलभद्र, अधीनता स्वीकार करने में कुलांगना, क्षमा करने में जिन, क्रोध और त्याग करने में अग्नि और वर्षा, नागों (हाथियों, सर्पों) को उठा लेने में गरुड़, झगड़े के कुतूहल में नारद, आक्रमण में शुष्क वज्रपात, वाहिनी (सेना या नदी) को क्षुभित करने में मकर, काटने में सर्प, सूंड़ से पकड़ कर खींच लेने में वरुण, शत्रुओं को घेरने में यमपाश, दांतों का

कालं परिणतिषु, राहुं तीक्ष्णकरग्रहणेषु, लोहिताङ्गं वक्रचारेषु, अलातचक्रं मण्डलभ्रान्तिविज्ञानेषु, मनोरथसंपादकं चिन्तामणिपर्वतं विक्रमस्य, दन्तमुक्ताशैलस्तम्भनिवासप्रासादमभिमानस्य, घण्टाचामरमण्डनमनोहरमिच्छासंचरणविमानं मनस्वितायाः, मदधारादुर्दिनान्धकारं गन्धोदकधारागृहं क्रोधस्य, सकाञ्चनप्रतिमं महानिकेतनमहंकारस्य, सगण्डशैलप्रस्रवणं क्रीडापर्वतमवलेपस्य, सदन्ततोरणं वज्रमन्दिरं दर्पस्य, उच्चकुम्भकूटाट्टालकविकटं संचारिगिरिदुर्गं राज्यस्य, कृतानेकबाणविवरसहस्रं लोहप्राकारं पृथिव्याः, शिलीमुखशतझांकारितं , पारिजात-

---

कर्मविपाकेषु च कालमहरादिरूपम् । तीक्ष्णं कृत्वा करेण हस्तेन ग्रहणम्, रविश्च तीक्ष्णकरः । लोहिताङ्गोऽङ्गारकः । वक्रं कुटिलम् । पश्चाच्च मण्डलाकृत्या भ्रान्तेर्भ्रमणस्य विज्ञानानि कौशलातिशयगतिः । गोमूत्रिकामण्डले त्रिविधा हि गतिः । तत्रालातचक्रमुल्मुकचक्रं भ्रमणं करोति । मनोरथसम्पादकमिति । शेषे षष्ठीसमासः । 'कर्मण्यण्' इति वाऽणिकृते स्वार्थे कः । दन्तौ मुक्ताशैलस्य श्वेतपाषाणस्य स्तम्भाविव यस्य । अन्यत्र—दन्तस्य मुक्ताशैलानां च स्तम्भा यत्र । प्रतिमा दन्तकोशः, देवताकृतिश्च । महानिकेतनं साधुदेवगृहम् । गण्डावेव शैलौ तत्र प्रस्रवणं दाननिर्यासः । सह तेन वर्तते निर्झरश्च । 'महतो मुक्तपाषाणान्गण्डशैलान्प्रचक्षते ।' संचारी जङ्गमः । यदाह कौटिल्यः—'हस्तिनो हि जङ्गमं दुर्गम्' इति । कृतान्यनेकानि बाणैर्विवरसहस्राणि यस्य तम् । प्राकारेषु बाणानुत्स्रष्टुं विवरसहस्राणि क्रियन्ते, य इन्द्रकोशा इति चाणक्यादिषु प्रसिद्धाः । भूनन्दनो राजा । 'देवोद्यानं च

प्रहार करने में काल, सूंड़ से प्रचण्ड आघात करने में (कर से ग्रहण में या सूर्य के ग्रहण करने में) राहु, टेढ़े चाल में मंगलग्रह और मण्डलाकार भ्रमण करने में अलातचक्र था। वह विक्रम का चिन्तामणि पर्वत था जो सब प्रकार के मनोरथ को सम्पन्न करने वाला था। वह अभिमान का निवासभवन था जिसमें मुक्ताशैल के दो खम्भे दाँतों के रूप में लगे थे। वह मनस्विता का स्वेच्छाचारी विमान था जो घण्टा और चँवर के आभूषणों से सुसज्जित था। क्रोध का वह सुगन्धित जल से भरा हुआ धारा गृह था जिससे मद की धारा के हमेशा बरसते रहने से अन्धकार छाया हुआ था। वह अलंकार का महानिकेतन था जिसमें सोने की मढ़ी हुई प्रतिमाएँ थी। वह अवलेप का क्रीड़ापर्वत था, उसके गण्डस्थल से झरने के रूप में मद की धारा झरती रहती थी। दर्प का वह वज्रमन्दिर था जिसमें दाँतों के तोरण लगे हुये थे। वह राज्य का संचरणशील गिरिदुर्ग था, जिससे कुम्भ के रूप में ऊपरी भाग में अट्टालक था। वह पृथ्वी की लौह दीवार था जिसमें बाणों की मार से हजारों छिद्र बने

पादपं भूनन्दनस्य, तथा च संगीतगृहं कर्णतालताण्डवानाम्, आपानमण्डपं मधुपमण्डलानाम्, अन्तःपुरं शृङ्गाराभरणानाम्, मदनोत्सवं मदलीलालास्यानाम्, अक्षुण्णप्रदोषं नक्षत्रमालामण्डलानाम्, [1]अकालप्रावृट्कालं मदमहानदीपूरप्लवानाम्, अलीकशरत्समयं सप्तच्छदवनपरिमलानाम्, अपूर्वहिमागमं शीकरनीहाराणाम्, मिथ्याजलधरं गर्जिताडम्बराणां दर्पशातमपश्यत्।

आसीच्चास्य चेतसि—'नूनमस्य, निर्माणे गिरयो ग्राहिताः परमाणुताम्। कुतोऽन्यथा गौरवमिदम्। आश्चर्यमेतत्। विन्ध्यस्य दन्तावादिवराहस्य करः' इति विस्मयमानमेवं दौवारिकोऽब्रवीत्—

'पश्य,—

मिथ्यैवालिखितां मनोरथशतैर्निःशेषनष्टां प्रियं
चिन्तासाधनकल्पनाकुलधियां भूयो वने विद्विषाम्।

नन्दनम्'। कर्णतालानां ताण्डवानीव ताण्डवानि। अन्यत्र,—लास्यप्रधानानि ताण्डवानि। मधुपा भ्रमराः, विटाश्च। शृङ्गारः सिन्दूरादिदानम्, रसभेदश्च। अक्षुण्णः परिपूर्णः, अभ्रादिनानावृतः अपूर्वो वा।

ग्राहिताः प्रापिताः। मिथ्यैवेति। तस्या निःशेषनष्टत्वात्पुनरभावप्रसङ्गान्निःशेषेत्याद्यभिप्रायेणाह—मनोरथशतैरिति। तस्यां व्यापाररहितत्वाच्छून्यमनस्कत्वा-

---

थे। पृथ्वी के नन्दनवन का वह पारिजात-वृक्ष था जिसमें सैकड़ों भौंरे झंकार रहे थे। कानों के संचालन रूप नृत्य का यह संगीतगृह था, भौंरों का आपानमण्डप था, शृङ्गार और आभरणों का अन्तःपुर था, मदलीला के नृत्य का मदनोत्सव था, नक्षत्रमाला (एक अलंकार) का वह कभी नष्ट न होने वाला प्रदोप था, मद की महानदी के प्रवाह का वह असामयिक वर्षाकाल था, सप्तच्छदवन के सौरभों का मिथ्या शरत्काल था। जलकण के शीकरों का वह अपूर्व समागम था। गरज-तरज के आडम्बर का वह मिथ्या मेघ था।

बाण ने मन में सोचा—'निश्चय ही दर्पशात के बनाने में पर्वतों के परमाणु लगे होंगे, नहीं तो इसमें इतनी गुरुता कहाँ से आती? आश्चर्य होता है। यह हाथी क्या है। दाँतों वाला विन्ध्य पर्वत है। अथवा सूँड़ से युक्त भगवान् आदिवराह है।' इस तरह आश्चर्य में पड़े हुए बाण से दौवारिक ने कहा—'देखो—

'पराजित होकर वन में भागे शत्रु राजा अपनी समूल नष्ट धन-सम्पत्ति को फिर

---

१. अकाण्डप्रावृट्।

आयातः कथमप्ययं स्मृतिपथं शून्यीभवच्चेतसां
नागेन्द्रः सहते न मानसगतानाशागजेन्द्रानपि ॥

तदेहि। पुनरप्येनं द्रक्ष्यसि। पश्य तावद्देवम्' इत्यभिधीयमानश्च तेन मदजलपङ्किलकपोलपट्टपतितां मत्तामिव मदपरिमलेन मुकुलितां कथमपि तस्माद् दृष्टिमाकृष्य तेनैव दौवारिकेणोपदिश्यमानवर्त्मा समतिक्रम्य भूपालकुलसहस्रसंकुलानि त्रीणि कक्षान्तराणि चतुर्थे मुक्तास्थानमण्डपस्य पुरस्तादजिरे स्थितम्, दूरादूर्ध्वंस्थितेन प्रांशुना कर्णिकारगौरेण व्यायामव्यायतवपुषा शस्त्रिणा मौलेन शरीरपरिवारकलोकेन पंक्तिस्थितेन कार्तस्वरस्तम्भमण्डलेनेव परिवृतम्, आसन्नोपविष्टविशिष्टेष्ट-

देवाह—सहत इत्यादि। मानसं मनः, सरोभेदोऽपि। आशाः दिशः, अभिलाषोऽपि। देवमिति इत्यादौ। चक्रवर्तिनं हर्षमद्राक्षीदिति संबन्धः। मदजलेन पङ्किले कपोलपट्टे पतिताम्। मत्तामिवेति। मत्तश्च पतति, मुकुलितदृष्टिश्च भवति, गतिवैकल्यादन्येन कृष्यते। भोजनं भोक्तव्यम्। भुक्ते सत्यास्थानं लोकदर्शनं तदर्थं मण्डपस्तस्य। ऊर्ध्वंस्थितेत्यादि साधारणम्। प्रांशुनोन्नतेन, अन्यत्र,—प्रकृष्टा अंशवो यस्य तेन। कर्णिकारमारग्वधपुष्पम्। व्यायामः श्रमः। व्यायतं विभक्तावयवम्, विशेषेण दीर्घं च। शस्त्रिणा सायुधेन, स्तम्भा अपि शस्त्रेण वध्यन्ते। मौलभृतकश्रेणिमित्रामित्राटविकभेदेन षट्प्रकाराः सहाया भवन्ति। अन्यत्र—मूले बुध्ने भवं मौलम्। बुध्नप्रतिष्ठमित्यर्थः। पंक्तिस्थितेनेति साधारणम्। कार्तस्वरं सुवर्णम्, यस्योद्घृष्यमाणस्य सतः कुंकुमस्येव रागो जायते; सौगन्ध्यं च तद्धरिचन्दनम्।

से प्राप्त करने के सैकड़ों मनोरथों की चिन्तापूर्ण कल्पना करने लगते हैं, पर किसी प्रकार जब उन्हें दर्पशात का स्मरण हो जाता है तब अत्यन्त निरास हो जाते हैं। इस प्रकार यह गजराज मन के आशारूपी गजेन्द्रों को भी सह नहीं पाता।'

तो चलो, फिर इसे देखना। तब तक महाराज के दर्शन करो। दौवारिक के इस प्रकार कहने पर बाण ने दर्पशात के मदजल से पंकिल गण्डस्थल पर पड़ी हुई मतवाली-सी तथा मद के सौरभ से मूंदी हुई अपनी दृष्टि को किसी प्रकार फेर कर उसी दौवारिक द्वारा मार्ग बताये जाने पर चलकर हजारों राजाओं से भरी तीन ड्यौढ़ियों को पार करके चौथी में चक्रवर्ती महाराज हर्ष को देखा। वे मुक्तास्थानमण्डप के सामने आंगन में बैठे हुए थे। दूर पर खड़े, प्रांशु (लम्बे, पक्ष में उत्कृष्ट किरणों वाले) कर्णिकार की भांति और व्यायाम से विभक्त शरीर वाले, शस्त्रधारी मौल (एक प्रकार के सहायक) अङ्गरक्षक लोग पंक्ति में खड़े सुवर्णस्तम्भ के मण्डल की भांति उनके चारों ओर विद्यमान थे। उनके समीप विशिष्ट प्रेमी जन बैठे थे।

लोकम्, हरिचन्दनरसप्रक्षालिते तुषारशीकरशीतलतले दन्तपाण्डुरपादे शशिमय इव मुक्ताशैलशिलापट्टशयने समुपविष्टम्, शयनीयपर्यन्तविन्यस्ते समर्पितसकलविग्रहभारं भुजे, दिङ्मुखविसर्पिणि देहप्रभावितानेवितत-मणिमयूखे घर्मसमयसुभगे सरसीव मृदुमृणालजालजटिलजले सराजकं रममाणम्, तेजसः परमाणुभिरिव केवलैर्निर्मितम्, अनिच्छन्तमपि बलदारोपतयितुमिव सिंहासनम्, सर्वावयवेषु सर्वलक्षणैर्गृहीतम्, गृहीतब्रह्मचर्यमालिङ्गितं राजलक्ष्म्या, प्रतिपन्नासिधाराधारणव्रतमविसंवादिनं राजर्षिम्,

शशिमय इति वक्ष्यमाणाभिप्रायेण। तुषारेत्यादिना शीतत्वममुष्य दर्शयति। दन्तेतद्वच्च पाण्डुरे पादे। रश्मयोऽपि पादाः। मुक्तेत्यादिना शुक्लतयापि शशिमय इवेत्येतदेव पोषयति। विग्रहः कायः, रणश्च। घर्मेत्यादि। मणीनां स्वभावत एव शीतत्वात्तदीया मयूखा अपि ह्लादयन्ति। यो हि बलवानारोप्यते स सर्वाङ्गेषु गृह्यते। गृहीतब्रह्मचर्यमिति। स्वदारसंतुष्ट ऋतुकालगामी। 'गृहस्थोचितव्यापारो ब्रह्मचार्येव' इति श्रुतेः। यत्त्वेवमनुश्रूयते—'यावन्मया न सकला जिता भूमिस्तावन्मे ब्रह्मचर्यम्' इति श्रीहर्षः प्रतिज्ञातवान्। द्वादशभिश्च वर्षैर्जित्वा तां महिषीमब्रवीत्—'प्रतिज्ञा मे निर्व्यूढा' इति। ततो रोषात् 'अहमपि द्वादशवर्षं ब्रह्मचर्यं चरामि' इति सा प्रतिज्ञामकरोत्। इति ब्रह्मचर्येणाज्ञाकालोऽतिवाहितः। यश्च गृहीतब्रह्मचर्यः स कथं योषितालिङ्ग्यत इति विरोधः। असिधारा खड्गधारा, व्रतविशेषश्च। यत्र स्त्रीपुंसावकपटौ ब्रह्मचर्येण तिष्ठतः। यश्च प्रतिपन्नेषु विश्वासिते खड्गधारां पातयति स कस्मान्न विसंवदते; नान्यथा भवति कथं च राजर्षिरसावुच्यत इति विरोधः। यश्च राजर्षिरुत्तममुनिर्गृहीतासिधारो ब्रह्मचारी च

मुक्ताशैल की शिलाओं से निर्मित पट्टशयन पर, जो हरिचन्दन के रस से धुला हुआ, हिम के फुहारों से ठंडा, हाथीदांत के उज्ज्वल गोड़ों वाला एवं मानों चन्द्रमा को गढ़कर बना हुआ था, विराजमान थे। शयन के सिरे की ओर टिकी हुई भुजा पर वे सारे शरीर का भार डाले थे। उनके शरीर का प्रभा-वितान एवं मणियों का किरण जाल दिशाओं में फैल रहा था, मानों वे कोमल मृणालों से भरे तालाब में ग्रीष्म के समय उन राजाओं के साथ स्नान का आनन्द ले रहे थे, मानों केवल तेज के परमाणुओं से उनका निर्माण हुआ था। ऐसा लगता था कि उनकी इच्छा के विरुद्ध उन्हें सिंहासन पर बैठने के लिए बाध्य किया गया था। उनके समस्त अंगों में सब के सब लक्षण दिखाई दे रहे थे। ब्रह्मचर्य ग्रहण करके भी राजलक्ष्मी से आलिङ्गित थे।†

† हर्ष ने राज्यवर्धन की मृत्यु के बाद यह प्रतिज्ञा की थी कि जब तक मैं सम्पूर्ण भूमि की दिग्विजय न कर लूँगा तब तक ब्रह्मचर्य का पालन करूँगा।

विषमराजमार्गविनिहितपदस्खलनभियेव सुलग्नं धर्मे, सकलभूपालपरित्यक्तेन भीतेनेव लब्धवाचा सर्वात्मना सत्येन सेव्यमानम्, आसन्नवारविलासिनीप्रतियातनाभिश्चरणनखपातिनोभिर्दिग्भिरिव दशभिर्विग्रहावर्जिताभिः प्रणम्यमानम्, दीर्घैर्दिगन्तपातिभिर्दृष्टिपातैर्लोकपालानां कृताकृतमिव प्रत्यवेक्षमाणम्, मणिपादपीठपृष्ठप्रतिष्ठितकरेणोपरिगमनाभ्यनुज्ञां मृग्यमाणमिव दिवसकरेण, भूषणप्रभासमुत्सारणबद्धपर्यन्तमण्डलेन प्रदक्षिणीक्रियमाणमिव[1] दिवसेन, अप्रणमद्भिर्गिरिभिरपि[2] दूयमानं, शौर्योष्मणा फेनायमानमिव चन्दनधवलं लावण्यजलधिमुद्वहन्तमेकराज्योर्जित्येन, निजप्रतिबिम्बान्यपि नृपचक्रचूडामणिधृतान्यसहमानमिव दर्पदुःखासिकया चामरानिलनिभेन वहुधेव श्वसन्तीं राजलक्ष्मीं दधानम्,

---

स कयाचिदालिङ्ग्यते। विषमोऽशक्यानुष्ठानो नतोन्नतरूपः। मार्गो व्यवहारः, पन्थाश्च। विषमे पथि च स्खलति येन क्वचित्सुलग्नेन भूयते। लब्धवाचेति। सत्यस्य वागेवाश्रयणीयश्च। सर्वैस्त्यक्तः सम्भीतः संस्त्वां, त्यजामीति वाचं लब्ध्वान्यं सेवते, वारविलासिनी शरीरोपचारचतुरा मुख्यललनाप्रतिबिम्बम्। दशभिरिति। नखानां दिशां च दशसंख्याकत्वात्। मणिपादेति। मणिसंबन्धप्रतिष्ठानमेव पोषयति। करो हस्तोऽपि। फेनायमानमिति। जल संतापेन सफेनं

उन्होंने असिधाराव्रत लिया था फिर भी वे सदा एकान्त रहने वाले (अविसंवादी) राजर्षि थे। टेढ़े-मेढ़े राजमार्ग (राजा के पद) पर पैर फिसलने के भय से मानों उन्होंने धर्म का आश्रय लिया था। मानों सत्य दूसरे राजाओं से तिरस्कृत होकर डरते-डरते वचन लेकर सब प्रकार से उन्हीं की सेवा में तत्पर था। पास में खड़ी वेश्या (चामरग्राहिणी) की परछाइयाँ उनके चरण के नखों पर पड़ रही थीं, मानों दशो दिशाएँ शरीर धारण करके उनको प्रणाम कर रही हों। वे दूर तक लम्बे दृष्टिपात से मानो लोकपालों की गलती सही देख रहे थे। सूर्य की किरणें उनके मणिमय पादपीठ पर पड़ रही थीं मानों वह आकाश में दूर जाने के लिए सम्राट् की अनुमति पाने की इच्छा से प्रार्थना कर रहा था। आभूषणों की प्रभा से उनके चारों ओर मंडल-सा बन गया था मानो दिन उनकी प्रदक्षिणा कर रहा हो। शौर्य के दर्प से वे न झुकने वाले पर्वतों से कष्ट का अनुभव करते थे। वह उस चन्दन के सदृश उज्ज्वल लावण्य के समुद्र को धारण कर रहे थे जो उनके ऐकाधिपत्य के बड़े शौर्य के प्रताप से खौलकर फेनिल हो रहा था। दर्प के कारण अपने ही प्रतिबिम्बों को जो राजाओं की चूडामणियों में पड़ रहे थे, सहन नहीं कर पाते थे। चँवर की हवा के बहाने बार-बार साँस

---

१. मिव गलितोष्मणा दिवसेन। २. भूभृद्भिर्दूयमानं।

सकलमिव चतुःसमुद्रलावण्यमादायोत्थितया श्रिया समुपश्लिष्टम्, आभरणमणिकिरणप्रभाजालजायमानानीन्द्रधनुःसहस्राणीन्द्रप्राभृतप्रहितानि विलभमानमिव राज्ञां संभाषणेषु परित्यक्तमपि मधु वर्षन्तम्, काव्यकथास्वपीतमप्यमृतमुद्वमन्तम्, विस्रम्भभाषितेष्वनाकृष्टमपि हृदयं दर्शयन्तम्, प्रसादेषु निश्चलामपि श्रियं स्थाने स्थाने स्थापयन्तम्, वीरगोष्ठीषु पुलकितेन कपोलस्थलेनानुरागसंदेशमिवोपांशु रणश्रियः शृण्वन्तम्, अतिक्रान्तसुभटकलहालापेषु स्नेहवृष्टिमिव दृष्टिमिष्टे कृपाणे पातयन्तम्, परिहासस्मितेषु गुरुप्रतापभीतस्य राजकस्य स्वच्छमाशयमिव दशनांशुभिः कथयन्तम्, सकललोकहृदयस्थितमपि न्याये तिष्ठन्तम्,

---

नवति । असहमानमिवेति । कथं सामान्येन समान इति । सकलमित्यादि । सकलपदेन चतु.शब्देन च शौरेरस्य विशेषमाह । ततो लवणत्वस्य तत्राद्यापि शिष्यमाणत्वात् । अलं लावण्यमादाय । एकस्माच्च समुद्रादुत्थाय लक्ष्म्या शौरिः समुपश्लिष्टः । लावण्यं लवणता; सौन्दर्यं च । प्राभृतं ढौकनिकम् । मधु मद्यम्, अमृतं च । विस्रम्भ आश्वासः । उपांश्वप्रकटम् । अतिक्रान्ते कलहे रणे शस्त्राणां स्नेहो दीयते रुधिरादिसलिलनिवारणाय । स्वच्छं निर्मलम् . सुप्रसादमाशयं भावं, प्रकृष्टतापभीतस्य च स्वच्छो निर्मल आशयो जलाधारो दृश्यते । अत्र प्रतापेत्यादि प्रकरणसाहचर्यात्स्वच्छतान्यथानुपपत्त्या च जलशब्द विना जलाशय एव प्रतीयते । न्याये तिष्ठन्तम् । न्यायममुञ्चन्तमित्यर्थः । यः सर्वेषां हृदयस्थितः स एकस्मिन्नेव तिष्ठ-

---

छोड़ती हुई राजलक्ष्मी को धारण कर रहे थे, मानो चारों समुद्रों के सम्पूर्ण लावण्य को लेकर निकली हुई श्री ने उनका आलिंगन किया था । उनके आभरणों की प्रभा से हजारों इन्द्रधनुष बन गए थे, मानो उपहार के रूप में इन्द्र ने भेजा हो । राजाओं के साथ बातचीत के प्रसङ्ग में छुटे हुए भी मधु (मदिरा अथवा मधुरस) की मानो वर्षा कर रहे थे । कविता की गोष्ठियों में न पिये हुए अमृत को भी मानो उगल रहे थे । विस्रंभालाप करते हुए अपने अनाकृष्ट हृदय को मानों दिखा रहे थे । प्रसन्न होकर स्थान-स्थान में अपनी निश्चल श्री को भी अर्पित कर रहे थे । वीरगोष्ठियों में उनके कपोल रोमांच से भर आये थे मानों एकांत में रणश्री द्वारा भेजे गये अनुरागसंदेश को सुन रहे थे । बड़े-बड़े योद्धाओं के युद्धों की बातचीत के प्रसंगों में अपने प्रिय कृपाण पर मानो स्नेह की वर्षा की भांति दृष्टिपात कर रहे थे । हँसी-मजाक में मुस्कुराते हुए वे अपने प्रचण्ड प्रताप से भीत राजाओं के प्रति दाँत की किरणों से अपने स्वच्छ मनोभाव को व्यक्त कर रहे थे । सारे जन-समूह के हृदय में स्थित होकर भी न्याय पर स्थित थे । उनमें

अगोचरे गुणानामभूमौ सौभाग्यानामविषये वरप्रदानानामशक्य आशिषाममार्गे मनोरथानामतिदूरे दैवस्यादिश्युपमानानामसाध्ये धर्मस्यादृष्टपूर्वे लक्ष्म्या महत्त्वे स्थितम्, अरुणपादपल्लवेन सुगतमन्थरोरुणा वज्रायुधनिष्ठुरप्रकोष्ठपृष्ठेन वृषस्कन्धेन भास्वद्बिम्बाधरेण प्रसन्नावलोकितेन चन्द्रमुखेन कृष्णकेशेन वपुषा सर्वदेवतावतारमिवैकत्र दर्शयन्तम्, अपि च मांसलमयूखमालामलिनितमहीतले महति महार्हे माणिक्यमालामण्डितमेखले महानीलमये पादपीठे कलिकालशिरसीव सलीलं विन्यस्तवामचरणम्, आक्रान्तकालियफणाचक्रवालं बालमिव पुण्डरीकाक्षम्, क्षौमपाण्डुरेण चरणनखदीधितिप्रतानेन प्रसरता महीं महादेवीपट्टबन्धेनेव महिमानमारोपयन्तम्, अप्रणतलोकपालकोपेने-

---

तीति विरोधः। अरुणो लोहितः, अनूरुश्च। शोभनं गमनं ययोस्तौ मन्थरावूरू यस्य। बुद्धश्च सुगतः। वज्राख्यमायुधं तद्वन्निष्ठुरं कठोरं प्रकोष्ठस्य पृष्ठं यस्य तेन। इन्द्रश्चास्य वज्रमायुधम्। 'प्रकोष्ठमन्तरं विद्यादरत्निमणिबन्धयोः'। वृषो दान्तः, धर्मश्च। भास्वद्भास्वरम्; रविश्च भास्वान्। बिम्बं फलभेदः, मण्डलं च। अवलोकितं वीक्षितम्, बुद्धिभेदश्चावलोकितः। कृष्णः कालः, हरिश्च कृष्णः। कलिकालेति। कलिकालस्य मलिनत्वादेवमुत्प्रेक्षा। वामपादेन पराभवनीयत्वमेव पोष्यते। कालियो

लक्ष्मी का उत्कर्ष था जो गुणों का अगोचर, सौभाग्य का अभूमि, वरदान का अविषय, आशीर्वचनों का अशक्य, मनोरथों का अमार्ग, भाग्य से भी अतिदूर, उपमानों का अविषय एवं धर्म का असाध्य था। अपने शरीर से समस्त देवताओं के अवतार को प्रकट कर रहे थे, उनके पादपल्लव अरुण (लाल, सूर्य का सारथी अरुण), सुगत (बुद्ध) अर्थात् सुन्दर गमन करने वाले और मन्दगामी दोनों ऊरु, हाथ के गट्टे वज्र के समान (वज्रायुध = इन्द्र) कड़े, वृष (बैल, धर्म) के समान कंधे, चमकते हुए (भास्वत = सूर्य) बिम्बाधर, दृष्टिपात (अवलोकितेश्वर) प्रसन्न, चन्द्र के सदृश मुख एवं केश काले (कृष्ण) थे। इन्होंने अपना बायाँ पैर महानील मणि के विशाल, बहुमूल्य, स्थूल प्रभाजाल से पृथ्वी को फलित करने वाले एवं माणिक्यसमूह से मण्डित मध्यभाग वाले पादपीठ पर मानों कलिकाल के सिर पर रखा था। अथवा वे बालक श्रीकृष्ण के सदृश थे जिन्होंने कालिया नाग के फनों पर आक्रमण किया था। क्षौम वस्त्र के समान उनके चरणों के नखों की रश्मियाँ फैलती थीं मानो पृथिवी को पट्टबंध द्वारा राजमहिषी के पद पर प्रतिष्ठित कर रहे थे। सम्राट् के दोनों चरण प्रणत न होने वाले लोकपालों पर क्रोध के कारण मानो अत्यन्त लाल थे। समस्त नरपतियों के मुकुटों में अधिक पान किये हुए पद्मराग मणि की प्रभा को मानो वमन कर रहे थे,

वातिलोहितौ सकलनृपतिमौलिमालास्वतिपीतं पद्मरागरत्नातपमिव वमन्तौ सर्वतेजस्विमण्डलास्तमयसंध्यामिव धारयन्तावशेषराजककुसुमशेखरमधुरसस्रोतांसीव स्रवन्तौ समस्तसामन्तसीमन्तोत्तंसस्रक्सौरभभ्रान्तैर्भ्रमरमण्डलैरमित्रोत्तमाङ्गैरिव मुहूर्तमप्यविरहितौ संवाहनतत्परायाः श्रियो विकचरक्तपङ्कजवनवासभवनानीव कल्पयन्तौ जलजशङ्खमीनमकरसनाथतलतया कथितचतुरम्भोधिभोगचिह्नाविव चरणौ दधानम्, दिङ्नागदन्तमुसलाभ्यामिव विकटमकरमुखप्रतिबन्धबन्धुराभ्यामुद्वेललावण्यपयोधिप्रवाहाभ्यामिव फेनाहितशोभाभ्यां कलाचन्दनद्रुमाभ्यामिव भोगिमण्डलशिरोरत्नरश्मिरज्यमानमूलाभ्यां हृदयारोपितभूभारधारणमाणिक्यस्तम्भाभ्यामूरुदण्डाभ्यां विराजमानम्, अमृतफेनपिण्डपाण्डुना मेखलामणिमयूखखचितेन नितम्बबिम्बव्यासङ्गिना विमलपयोधौतेन नेत्रसूत्रनिवेशशोभिनाधरवाससा वासुकिनिर्मोकेणेव मन्दरं द्योतमानम्, अघनेन सतारागणेनोपरिकृतेन द्वितीयाम्बरेण भुव-

---

नागभेदः। पुण्डरीकाक्षमिति राज्ञी विशेषणम्। तेजस्विनो वीराः, आदित्याश्च। जलजेत्यादीनि महाराजविशेषणानि लक्षणानि। एवमादि च संभवति। मकरमुखं जानुसंधिः, मकरमुखचिह्नितान्तकपोलश्च। उद्वेलतया लावण्यस्य समुच्छलद्रूपत्वमाह। फेनो रससंतानः, डिण्डीरश्च। भोगिनो नृपाः, सर्पाश्च। फेनवत्तैश्च पाण्डु। मेखला रशना, पर्वतमध्यभूमिश्च। पयो जलम्, क्षीरं च। नेत्रसूत्रं पट्टसूत्रम्, मन्थनरज्जुश्च। अघनेन, छातेन, अनभ्रेण च। ताराः सूत्रबिन्दवः नक्ष-

---

समस्त तेजस्वियों (वीरों अथवा आदित्यों) के अस्त हो जाने के कारण मानो संध्या को धारण कर रहे थे, समस्त राजाओं के सिर की पुष्परचित माला के मधुरस के प्रवाह को मानो बहा रहे थे, समस्त सामन्तों के केशविन्यास की माला की सुगन्ध में लुभाए हुए भौंरे शत्रुओं के सिर के रूप में मानो क्षणभर भी इन चरणों को नहीं छोड़ते; सेवा में लीन लक्ष्मी के निवास के लिए खिले हुए लाल कमलों के भवनों को मानो बना रहे थे, तलवे में कमल, शंख, मछली और मकर के चिह्न थे जिनसे व्यक्त होता था कि उन्होंने चारो समुद्रों के उपभोग के चिह्नों को प्राप्त किया था। उनकी जाँघें दिग्गज के दंतरूपी मुसलों के समान थीं, उद्वेल लावण्य के समुद्र के दो प्रवाहों की भाँति विशाल मकरमुखों (जानुसन्धियों, पक्ष में मकर के मुखों) के प्रतिबन्ध के कारण निम्नोन्नत, फेन से शोभित थीं एवं चन्दन के वृक्षों की भांति भोग-मण्डल (धनिकसमूह वृक्ष में सर्पसमूह) के सिर के रत्नों की किरणों से जिनका मूल भाग रंजित हो रहा था तथा सम्राट् के हृदय पर आरोपित पृथ्वी के भार के धारण के लिए माणिक्य-स्तम्भ थीं।

नाभोगमिव भासमानम्, इभपतिदशनमुसलसहस्रोल्लेखकठिनमसृणे-नापर्याप्ताम्बरप्रथिम्ना विविधवाहिनीसंक्षोभकलकलसंमर्दसहिष्णुना कैलास-मिव महता स्फटिकतटेनोरुणोरःकपाटेन विराजमानम्, श्रीसरस्वत्यो-रुरोवदनोपभोगविभागसूत्रेणेव पातितेन शेषेणेव च तद्भुजस्तम्भविन्यस्त-समस्तभूभारलब्धविश्रान्तिसुखप्रसुप्तेन हारदण्डेन परिवलितकन्धरम्। जीवितावधिगृहीतसर्वस्वमहादानदीक्षाचीरेणेव हारमुक्ताफलानां किरण-निकरेण प्रावृतवक्षःस्थलम्, अजजिगीषया वालैर्भुजैरिवापरैः प्ररोहद्भि-र्बाहूपधानशायिन्याः श्रियाः कर्णोत्पलमधुरसधारासंतानैरिव गलद्भिर्भुज-जन्मनः प्रतापस्य निर्गमनमार्गैरिवाविर्भवद्भिररुणैः केयूररत्नकिरणदण्डै-रुभयतःप्रसारितमणिमयपक्षवितानमिव माणिक्यमहीधरम्, सकल-

---

त्राणि च। अम्बरं वासः, नभश्च। इभपतीत्यादिना साधारणम्। अपर्याप्तमम्बरं वासो यस्य तादृक्प्रथिमा यस्य, अम्बरं च खम्। वाहिनी सेना, नदी च। अन्यपर्वतसाधारण्येऽपि छायावत्त्वादुन्नतत्वाच्च कैलासमिवेत्युक्तम्। हारेत्यादिना उरुत्वं काठिन्यमाह। परिवलिता। 'परिवेष्टिता—' इति पाठे व्याप्तेत्यर्थः। अजो हरिः। भुजेत्यादिना सेनादिकृतं नयादिकृतं च प्रतापं व्यवच्छिनत्ति। माणिक्य-

---

वासुकि सर्प केंचुल से मन्दर पर्वत की भांति वह अपने अधोवस्त्र से जो अमृत के फेनपिण्ड की भांति उज्ज्वल, मेखला की मणियों की किरणों से खचित, नितम्ब भाग से लगा हुआ, विमल जल से धुला हुआ, रेशम के पुटकों से शोभित (मकर के पक्ष में, अमृत के फेन पड़ने से उज्ज्वल मेखला भाग की मणिकिरणों से खचित, निर्मल क्षीण से धुला हुआ एवं मन्थनरज्जु के निवेश से शोभित) था शोभा प्राप्त कर रहे थे। ऊपर धारण किये गये, झीने (अघन) सूत्रबिन्दुओं से कढ़े उत्तरीय वस्त्र से (पक्ष में घन अर्थात् मेघ से रहित, तारागण से युक्त) आकाश से भुवन के आभोग की भांति वे शोभित हो रहे थे। जैसे कैलास पर्वत का स्फटिक तट ऐरावत के दांतों के हजारों प्रहार से कठिन और चिकना हो गया है और आकाश के लिए जिसका विस्तार पर्याप्त नहीं एवं विविध नदियों के कोलाहलपूर्ण संमर्द को जो सहता है उसी प्रकार सम्राट् का विशाल उरःकपाट भी गजों के दशनों के वात-प्रतिपात से कठिन और कोमल वस्त्र, के लिए अपर्याप्त प्रथिमा युक्त एवं विविध सेनाओं के कोलाहल में भी क्षुब्ध न होने वाला था। उनका हारदंड कंधे से गिर कर लटक रहा था, मानों वह लक्ष्मी और सरस्वती के क्रम से वक्ष और मुख के उपभोग का विभाग-सूत्र रखा गया था, अथवा मानो शेषनाग सम्राट् की भुजाओं पर सारे पृथिवी के भार को रख कर विश्राम की नींद ले रहे हों। हार में पिरोई हुई मुक्ताओं की किरणें फैलकर उनके वक्ष में लिपट रही थीं मानो सम्राट् ने जो प्रति पांचवें वर्ष सर्वस्वदक्षिण महादान दिये हैं उन्हीं के दीक्षावस्त्र हों। उनके विजाइठ के

लोकालोकमार्गार्गलेन चतुरुदधिपरिक्षेपखातशातकुम्भशिलाप्राकारेण सर्वराजहंसबन्धवज्रपञ्जरेण भुवनलक्ष्मीप्रवेशमङ्गलमहामणितोरणेनातिदीर्घदोर्दण्डयुगलेन दिशां दिक्पालानां च युगपदायतिमपहरन्तम्, सोदर्यलक्ष्मीचुम्बनलोभेन कौस्तुभमणेरिव मुखावयवतां गतस्याधरस्य गलता रागेण पारिजातपल्लवरसेनेव सिञ्चन्तं दिङ्मुखानि, अन्तरान्तरा सुहृत्परिहासस्मितैः प्रकीर्यमाणविमलदशनशिखाप्रतानैः प्रकृतिमूढाया राजश्रियाः प्रज्ञालोकमिव दर्शयन्तम्, मुखजनितेन्दुसन्देहागतानि कुमुदिनीवनानीव प्रेषयन्तम्, स्फुटस्फटिकधवलदशनपङ्क्तिकृतकुमुदवनशङ्काप्रविष्टां शरज्ज्योत्स्नामिव विसर्जयन्तम्, मदिरामृतपारिजातगन्धगर्भेण भरितसकलककुभा मुखामोदेनामृतमथनदिवसमिव सृज-

---

मुरःस्थो मणिः। चतुर्णामुदधीनां संबन्धी परिक्षेप एव खातं परिखा यस्य स तादृग्दाढर्याच्छिलाप्राकार इव तेन। परिखां कृत्वान्तरे प्राकारो दीयते इति स्थितिः।

रत्नों की दंडाकार अरुण किरणें उनके दोनों ओर फैल रही थीं मानो चतुर्भुज विष्णु को जीतने की इच्छा रखने वाले सम्राट् के दो और हाथ उद्भिन्न हो रहे हों, अथवा विष्णुतुल्य सम्राट् की भुजाओं को उपधान बनाकर सोने वाली लक्ष्मी के कर्णोत्पल का मधुरस धारारूप में प्रवाहित होकर चू रहा हो, अथवा मानो उनकी भुजाओं से उत्पन्न होने वाले प्रताप के निकलने के लिए मार्ग आविर्भूत हो रहे हों, इस प्रकार वे उन किरणदंडों से मणिमय पक्षवितान को फैलाये हुए माणिक्यपर्वत के समान थे। वे अपने दोनों अतिदीर्घ भुजदण्डों से दिशाओं के विस्तार और दिक्पालों के प्रताप को एक काल में हर ले रहे थे, मानो उनके वे भुजदण्ड समस्त लोकालोक पर्वत के मार्ग के अर्गलादंड हों, मानो चारो समुद्र के घेरे की खाई में सुवर्ण चट्टानों को जोड़कर बनाये गये प्राकार हों; समस्त राजसमूहरूपी हंसों के रहने के लिए वज्रमय पिंजड़े हों; भुवनलक्ष्मी के प्रवेश के अवसर पर मंगलार्थ लगाये जाने वाले बड़े-बड़े मणिमय तोरण हों। मानो उनका कौस्तुभमणि के समान अधर अपनी बहन लक्ष्मी को चूमने के लिए मुख का अवयव बन गया हो; ऐसे अधर से पारिजात-पल्लव के रस के समान द्रवित होते हुए राग से मानो वे दिशाओं को सींच रहे थे। बीच-बीच में मित्रों के साथ हँसी मजाक के प्रसङ्ग में सम्राट् हँस पड़ते थे तो उनके दांतों की निर्मल किरणें चारों ओर फैल जाती मानो प्रकृतिमुग्धा राजलक्ष्मी को प्रज्ञा का आलोक दिखा रहे हों अथवा उन किरणों के रूप में मुख को चन्द्र समझ कर पहुँचे हुए कुमुदवनों को मानो वे लौटा रहे थे, स्फटिक के समान जड़े हुए दांतों को कुमुदवन समझ कर प्रविष्ट हुई शारदी ज्योत्स्ना को मानो वापस कर रहे थे। उनके मुख से मदिरा, अमृत और पारिजात के मुखवास की मिली हुई सुगन्ध

न्तम्, विकचमुखकमलकर्णिकाकोशेनानवरतमापीयमानश्वाससौरभमिवाधोमुखेन नासावंशेन, चक्षुषः क्षीरस्निग्धस्य धवलिम्ना दिङ्मुखान्यपूर्ववदनचन्द्रोदयोद्वेलक्षीरोदोत्प्लावितानीव कुर्वाणम्, विमलकपोलफलकप्रतिबिम्बतां चामरग्राहिणीं विग्रहिणीमिव मुखनिवासिनीं सरस्वतीं दधानम्, अरुणेन चूडामणिशोचिषा सरस्वतीर्ष्याकुपितलक्ष्मीप्रसादनलग्नेन चरणालक्तकेनेव लोहितायतललाटतटम्, आपाटलांशुतन्त्रीसंतानवलयिनीं कुण्डलमणिकुटिलकोटिबालवीणामनवरतचलितचरणानां वादयतामुपवीणयतामिव स्वरव्याकरणविवेकविशारदम्, श्रवणावतंसमधुकरकुलानां कलक्वणितमाकर्णयन्तम्, उत्फुल्लमालतीमयेन राजलक्ष्म्याः कचग्रहलीलालग्नेन नखज्योत्स्नावलयेनेव मुखशशिपरिवेषमण्डलेन मुण्ड-

---

राजहंसा राजोत्तमाः, हंसेभेदाश्च । आयतिर्दैर्घ्यम्, प्रतापश्च । कर्णिका कोशः, चक्रं च। आपीयमानं श्वाससौरभं यस्य तम् । अधोमुखेनेति । अनेन सुलक्ष्यत्वं सौरभस्य तथाऽऽपीयमानानुमतिं दर्शयति । अंशुरेव तन्त्रीसंतानः स एव वलयाकारत्वाद्वलयं विद्यते यस्यास्ताम् । कुण्डलमणिकुटिलकोटिमेव बालवीणां सप्ततन्त्रीकां विपञ्चीं वादयताम् । अनवरतेत्यादिना व्यापारसादृश्येनोक्तम् । वद-(वादय) तामिति । वीणायोपगायतामुपवीणयतामिति गानस्य प्राधान्यं प्रतिपा-

---

समस्त दिशाओं में भर गई थी मानों अमृतमथन के दिन को बना रहे थे । सम्राट् का खिले हुए मुख कमल के बीजकोश के सदृश अधोमुख नासावंश था जिससे मानों वे निरन्तर सुगंध से भरी सांस ले रहे थे। क्षीर के समान स्निग्ध अपनी आंखों की सफेदी द्वारा अपूर्वमुखरूपी चन्द्र के उदित होने से उद्वेल क्षीरसमुद्र द्वारा मानों दिशाओं को उत्प्लावित कर रहे थे। उनके निर्मल कपोलफलक पर समीप में खड़ी चामरग्राहिणी (चंवर डुलाने वाली स्त्री) प्रतिबिम्बित हो रही थी मानो शरीरिणी होकर मुख में निवास करने वाली सरस्वती को वे धारण कर रहे थे । उनके चौड़े ललाट पर चूडामणि की अरुण किरणें छिटक रही थीं, मानो सरस्वती की ईर्ष्या से कुपित हुई लक्ष्मी के प्रसादन के लिए पैर पड़ते हुए इनके ललाट पर उसका आलता लग गया हो । उनके कर्णावतंस पर बैठकर भौंरे कुण्डलमणि की बाल वीणा के लाल वर्ण वाले किरणरूपी तारों पर स्वर का विस्तार और विवेक करते हुए अव्यक्त-मधुर जो गा रहे थे उसे वे ध्यान से सुन रहे थे। उनके बालों में मुंडमाला बंधी थी जिसमें खिले हुए मालती के फूल थे, मानो कचग्रह के अवसर पर राजलक्ष्मी के नखों की कुछ किरणें वहां फँस कर रह गई हों, वह उनके मुख-चन्द्र के चारों ओर परिधि थी । उनके शिखंडा-

मालागुणेन परिकलितकेशान्तम्, शिखण्डाभरणभुवा मुक्ताफलालोकेन मरकतमणिकिरणकलापेन चान्योन्यसंवलनवृजिनेन प्रयागप्रवाहवेणिकावारिणेवागत्य स्वयमभिषिच्यमानम्, श्रमजलविलीनबहलकृष्णागुरुपङ्कतिलककलङ्ककल्पितेन कालिम्ना प्रार्थनाचाटुचतुरचरणपतनशतश्यामिकाकिणेनेव नीलायमानललाटेन्दुलेखाभिः क्षुभितमानसोद्गतैरुत्कलिकाकलापैरिव हारैरुल्लसद्भिरवष्टभ्यमानाभिर्विलासवल्गनचटुलैर्भ्रूलताकल्पैरीर्ष्यया श्रियमिव तर्जयन्तीभिरायामिभिः श्वसितैरविरलपरिमलैर्मलयमारुतमयैः पाशैरिवाकर्षन्तीभिर्विकटबकुलावलीवराटकवेष्टितमुखैर्बृहद्भिः स्तनकलशैः स्वदारसंतोषरसमिवाशेषमुद्धरन्तीभिः

दयति। स्वरव्याकरणविशारदमित्यादिना गानं दर्शयति। परिवेषः परिधिः। वृजिनेन शकलेन, कलुषेण वा। प्रयागो गङ्गायमुनासंगमः। तत्प्रवाहस्य वेणिकारूपेण वारिणेव। श्रमजलेत्यादौ वारविलासिनीभिः सर्वतो विलुप्यमानमसौभाग्यमिवेति संबन्धः। प्रार्थनाचाट्वित्यादौ प्रार्थनादीनि सर्वाणि श्रीहर्षविषयाणि ज्ञेयानि। मानसं सरः, चेतश्च। उत्कलिका, रुहरुहिकाः, वीचयश्च। अविरलेत्यादिना धारणम् आकर्षणं वशीकरणम्, समीपप्रमाणं च। विकटेत्यादिनोद्दीपनभावमेव पोषयति। वराटको रज्जुः। बृहद्भिरिति। बृहत्त्वेन हृद्यत्वमेषामाह। बृहत्त्वादेव च वक्ष्यति—अशेषमिति। स्तनकलशैरिति। कलशैः किल रज्जुवेष्टितमुखैः रसो जलमु-

---

भरण में मोती और मरकत दोनों लगे थे, दोनों की किरणें परस्पर मिल कर उन पर पड़ रही थीं, मानों प्रयाग से गङ्गा और यमुना के जल स्वयं आकर उनका अभिषेक कर रहे हों। वहां गणिकाएं थीं जो उनके सौभाग्य को सब प्रकार से लुप्त कर रही थीं। उन गणिकाओं के ललाट की चन्द्रलेखा पसीने से पसीज कर बहते हुए कृष्णागुरु के पङ्क के तिलक-कलंक के कारण काली पड़ गई थीं, मानों प्रिय वचन बोलकर प्रार्थना करने में चतुर होने के कारण सैकड़ों बार प्रिय के चरण पर सिर पटकने से वहां दाग पड़ गया हो। उनके वक्ष पर हार उल्लसित हो रहे थे मानों वे उनके उथल-पुथल होते हुए मानस की वीचियाँ हों। वे इस प्रकार विलास के साथ अपनी भौंहें मटकाती थीं मानों ईर्ष्या से लक्ष्मी को तर्जना दे रही हों। मलयानिल की तरह निरन्तर निकलती हुई सुगन्धित लम्बी सांसें लेतीं तो मालूम होता कि साँसों की डोर से कुछ खींच रही हों। वकुलमाला की लम्बी-लम्बी डोर से उनके स्तनरूपी वृहत् कलश बँधे हुए थे जिनसे अपनी पत्नियों में होने वाले सम्राट् के समस्त संतोष-रस को मानो वे रिक्त कर रही थीं। हांफने से हिलते हुए उनके स्तन पर हार की तरह मणियों की किरणों से मानो वे सम्राट् के हृदय को खींच कर हठात् अपने में प्रविष्ट कर रही थीं।

कुचोत्कम्पिकाविकारप्रेङ्खितानां हारतरलमणीनां रश्मिभिराकृष्य हृदय-मिव हठात्प्रवेशयन्तीभिः प्रभामुचामाभरणमणीनां मयूखैः प्रसारितै-र्बहुभिरिव बाहुभिरालिङ्गन्तीभिर्जृम्भानुबन्धबन्धुरवदनारविन्दावरणी-कृतैरुत्तानैः करकिसलयैः सरभसप्रधावितानि मानसानीव निरुन्धती-भिर्मदनान्धमधुकरकुलकीर्यमाणकर्णकुसुमरजःकणकूणितकोणानि कुसुम-शरशरनिकरप्रहारमूर्च्छामुकुलितानीव लोचनानि चतुरं संचारयन्ती-भिरन्योन्यमत्सरादाविर्भवद्भङ्गुरभ्रुकुटिविभ्रमक्षिप्तैः कटाक्षैः कर्णेन्दी-वराणीव ताडयन्तीभिरनिमेषदर्शनसुखरसराशि मन्थरितपक्ष्मणा चक्षुषा पीतमिव कोमलकपोलपालीप्रतिबिम्बितं वहन्तीभिरभिलाषलीलानि-र्निमित्तस्मितैश्चन्द्रोदयानिव मदनसहायकाय संपादयन्तीभिरङ्गभङ्गवल-नान्योन्यघटितोत्तानकरवेणिकाभिः स्फुटनमुखराङ्गुलीकाण्डकुण्डली-क्रियमाणनखदीधितिनिवहनिभेनाकिंचित्करकामकार्मुकाणीव रुषा भञ्ज-

---

द्भिरियते। रसोभिलाषः, जलं च। बन्धुरं हृद्यम्। कूणितः संकोचितः। मदनादि-शब्दे विद्यमानेऽपि मदनान्धेत्यभिप्रायेण कुसुमशरग्रहणम्। अत्र पक्षे कर्णपदं त्य-ज्यते। अनिमेषदर्शनसुखरसराशिमिव श्रीहर्षम्। प्रतिबिम्बितमिति। अथ च रसो जलादिः विमले मणिभाजनादावन्तर्वर्त्यपि प्रतिबिम्बितो लक्ष्यते। करवेणिका

उनके चमचमाते हुए आभूषणों की किरणें इस प्रकार फैल रही थीं मानो वे सम्राट् के आलि-ङ्गन के लिए अनेक भुजाएँ पसार रही हों। जंमाई लेते हुए अपने उतान हाथों से मुँह ढँक कर मानो वे वेग से निकल भागते हुए अपने चित्त को रोक रही थी। कामांध भौंरों द्वारा विकीर्ण किये गये कान के पराग कणों से वे अपनी आंखों के कोने संकुचित कर लेतीं, मानो वे आंखे कामदेव के बाणों के प्रहार के कारण मूर्च्छा से मुंद गई हों, उस प्रकार वे अपनी आंखें चतुरता से चला रही थीं। आंखों से परस्पर मत्सर के कारण भौंहें ऐंच कर छोड़े गए कटाक्षों से मानो अपने कर्णोत्पलों का ताड़न कर रही हों। सम्राट् के निरन्तर दर्शन-सुख की राशि जिसे उन्होंने अपनी निश्चल आंखों से पी रखा था मानो उनके कपोल पर प्रतिबिम्बित हो रही थी। मानो काम की सहायता करने के लिए अभिलाषाओं के कुतूहल से निर्निमित्त हँसी हँसकर बहुत से चन्द्रों को उदित कर रही थीं। कभी-कभी अपने अङ्गों को तोड़-मरोड़ करते हुए हाथों की उँगलियां एक दूसरे में फंसाकर हथेली ऊपर उठा रही थीं। उँगलियां चटका कर नखों की किरणों को कुण्डलाकार बनाते हुए मानों काम की निकम्मी धनुहियों को क्रोध से तोड़ रही थीं। चरण दबाने वाली को,

न्तीभिर्वारविलासिनीभिर्विलुप्यमानसौभाग्यमिव सर्वतः, स्पर्शस्विन्न-वेपमानकरकिसलयगलितचरणारविन्दां चरणग्राहिणीं विहस्य कोणेन-लीलालसं शिरसि ताडयन्तम्, अनवरतकरकलितकोणतया चात्मनः प्रियां वीणामिव श्रियमपि शिक्षयन्तम्, निःस्नेह इति धनैः, अनाश्रयणीय इति दोषैः, निग्रहरुचिरितीन्द्रियैः, दुरुपसर्प इति कलिना, नीरस इति व्यसनैः, भीरुरित्ययशसा, दुर्ग्रहचित्तवृत्तिरिति चित्तभुवा, स्त्रीपर इति सरस्वत्या, षण्ढ इति परकलत्रैः, काष्ठामुनिरिति यतिभिः, धूर्त इति वेश्याभिः, नेय इति सुहृद्भिः, कर्मकर इति विप्रैः, सुसहाय इति

परस्परानुबन्धस्थितकराद्वयांगुलिविन्यासः । विलुप्यमानसौभाग्यादिना ताः सुभगा इत्यर्थः । कोणो वीणादिवादनभाण्डम् । प्रियामिति । वीणायाः श्रियाश्च विशेषणम् । निःस्नेह इत्यादौ । एतैरेकमप्यनेकधा गृह्यमाणमिति सम्बन्धः । षण्ढः प्रजननाक्षमः । काष्ठा पराधारा, तत्प्रधानो मुनिः काष्ठामुनिरतिशयवांस्तपस्वी । नेयः परवशः । शन्तनुर्नाम राजा भीष्मस्य पिता, वाहिन्या गङ्गायाः पतिः, अयं तु तस्मादपि महतीनां वाहिनीनां सेनानां पतिः शन्तनुरिति । 'पञ्चमी विभक्ते' इति पञ्चमी । भीष्मो जितकाशी जितेन्द्रियः । यतस्त्वयि त्वत्पुत्रे वा सत्यस्मद्दौहित्रस्य कुतो राज्यमिति । यदा हि दशाधिपतिना स्वसुता मत्स्योदरोद्गता मत्स्यावती नामास्मै पित्रर्थमर्थ्यते न दत्ता, तदैतेन प्रतिज्ञातम्—'नाहं राज्यं विवाहं वा करिस्यामि' इति । अत एव ब्रह्मचार्येवाभूत् । राजा च ततोऽपि जितकाशितमः जितकाशी वा । जितेन जयेन काशते शोभते यः । तथा हि भीष्मेण रामो जितः । सर्वराजसहितं काशिराजं च जित्वा भ्रात्रर्थमम्बादिकन्यात्रयमनैषीत् । राजा तु

जो अपने हाथों को सम्राट् के स्पर्श से पसीज जाने और काँपने के कारण उनके चरणों पर गिरती जा रही थी, हँसकर लीला में शनैः शिर पर वीणादण्ड द्वारा ताडन कर रहे थे। निरन्तर वे अपने वीणादण्ड को अपने हाथ में लिए रहते थे, इस प्रकार अपनी प्रिया वीणा के समान मानों श्री को भी शिक्षा दे रहे थे। धन उन्हें समझते कि इनमें हमारे प्रति स्नेह कुछ भी नहीं; दोष कहते हैं कि हमारे ये आश्रय के योग्य नहीं हैं; इन्द्रियाँ कहतीं कि सम्राट् हमें निगृहीत रखना चाहते हैं; कलि कहता है कि इनके समीप जाना कठिन है; व्यसन कहते कि ये नीरस हैं; अयश चिल्लाता कि सम्राट् डरपोक है; काम समझता कि इनकी चित्तवृत्ति दुर्ग्रह है; सरस्वती कहती कि ये स्त्रैण हैं; परकीया स्त्रियाँ कहतीं कि ये नपुंसक हैं; यती लोग कहते हैं कि ये पहुँचे हुए तपस्वी हैं; वेश्याएँ उन्हें धूर्त कहतीं; सुहृद्वर्ग कहता कि ये नेय हैं अर्थात् इनकी बुद्धि दूसरों पर निर्भर रहती है, ब्राह्मण कहते कि ये हमारे भृत्य हैं; शत्रु कहते कि बहुत से दूसरे इनके सहायक हैं। इस प्रकार एक ही सम्राट को लोग अनेक प्रकार से

शत्रुयोधैः, एकमप्यनेकधा गृह्यमाणम्, शन्तनोर्महावाहिनीपतिम्, भीष्माज्जितकाशितमम्, द्रोणाच्चापलालसम्, गुरुपुत्रादमोघमार्गणम्, कर्णान्मित्रप्रियम्, युधिष्ठिराद्बहुक्षमम्, भीमादनेकनागायुतबलम्, धनञ्जयान्महाभारतरणयोग्यम्, कारणमिव कृतयुगस्य, बीजमिव विबुधसर्गस्य, उत्पत्तिद्वीपमिव दर्पस्य, एकागारमिव करुणायाः, प्रातिवेशिकमिव पुरुषोत्तमस्य, खनिपर्वतमिव पराक्रमस्य, सर्वविद्या-संगीतगृहमिव सरस्वत्याः, द्वितीयामृतमन्थनदिवसमिव लक्ष्मी-समुत्थानस्य, बलदर्शनमिव वैदग्ध्यस्य, एकस्थानमिव स्थितीनाम्, सर्वस्वकथनमिव कान्तेः, अपवर्गमिव रूपपरमाणुसर्गस्य, सकलदुश्च-रितप्रायश्चित्तमिव राज्यस्य, सर्वबलसन्दोहावस्कन्दमिव कन्दर्पस्य,

---

ततोऽपि जितकाशितमः। द्रोणश्चापाचार्यः। स हि चापे धनुषि लालसः। चापलं न करोतीत्यर्थः। यद्वा चः समुच्चये। अपगता लालसा यस्य सोऽपलालसः। निर-भिलाष इत्यर्थः। गुरुपुत्रोऽश्वत्थामा तस्य सफलशरता। तथा शस्त्रोपसंहारे-ऽक्षमतया याचितोऽपि कस्यचिदेकस्य मारणमन्तरेण न तदुपसंजहार। तत उत्तराया उदरस्थे परीक्षिति पातिते तस्मिंस्तदुपसंहृतवान्। अन्यत्र—अमोघा मार्गणा याचका यस्येति। मित्रः सूर्यः सुहृच्च मित्रम्। क्षमा क्षान्तिः भूश्च। अनेकानि बहूनि, अनन्यसदृशानि च। एकशब्दस्य च साधारणार्थं नञ्। बलं सामर्थ्यम्, सैन्यं च। धनञ्जयोऽर्जुनः। महाभारतानां कुरूणां यो रणः संग्रामः। अन्यत्र—महती भारस्य कार्यधुरायास्तरणं निर्वाहणम्। प्रातिवेशिकं प्रतिबिम्बम्। 'खनि राकरः। अपवर्गः समाप्तिः। सन्दोहः समूहः। अवभृथो यज्ञान्तः। गम्भीरं प्रसन्नं चेति परस्परापेक्षं बोद्धव्यम्। तथा च सति गम्भीरत्वे प्रसन्नत्वम् ऋजुत्वं चेन्न स्यात्तत

ग्रहण करते थे। शन्तनु केवल वाहिनीपति (अर्थात् गंगा के पति) थे, (उनकी अपेक्षा ये सम्राट् महावाहिनी (अर्थात् महासेना) के पति थे। भीष्म की अपेक्षा वे अधिक जितेन्द्रिय थे। द्रोण की अपेक्षा वे अधिक चापलालस (अर्थात् धनुष के प्रेमी अथवा चपलता से शून्य या निरभिलाष) थे। अश्वत्थामा की अपेक्षा वे अधिक बाण चलाने में निपुण (अमोघमार्ग) थे। कर्ण की अपेक्षा अधिक वे अपने मित्रों के प्रिय थे। युधिष्ठिर की अपेक्षा अधिक क्षमावान् थे अथवा विस्तृत पृथिवी के स्वामी थे। भीम की अपेक्षा अधिक हाथियों का उनमें बल था। अर्जुन की अपेक्षा अधिक वे महाभारत के युद्ध के योग्य थे, अथवा कार्य के बड़े बोझ को सम्हालने में निपुण थे। मानों वे सतयुग के कारण, विद्वानों की सृष्टि के बीज, दर्प के उत्पन्न होने के द्वीप, करुणा के एकागार, पुरुषोत्तम विष्णु के पड़ोसी; पराक्रम की

उपायमिव पुरन्दरदर्शनस्य, आवर्तनमिव धर्मस्य, कन्यान्तःपुरमिव कलानाम्, परमप्रमाणमिव सौभाग्यस्य, राजसर्गसमाप्त्यवभृथस्नानदिवसमिव सर्वप्रजापतीनाम्, गम्भीरं च, प्रसन्नं च, त्रासजननं च, रमणीयं च, कौतुकजननं च, पुण्यं च, चक्रवर्त्तिनं हर्षमद्राक्षीत्।

दृष्ट्वा चानुगृहीत इव निगृहीत इव साभिलाष इव तृप्त इव रोमाञ्चमुचा मुखेन मुञ्चन्नानन्दबाष्पवारिबिन्दून्दूरादेव विस्मयस्मेरः समचिन्तयत्—'सोऽयं सुजन्मा, सुगृहीतनामा, तेजसां राशिः, चतुरुदधिकेदारकुटुम्बी, भोक्ता ब्रह्मस्तम्भफलस्य, सकलादिराजचरितजयज्येष्ठ-

---

जिह्मप्रकृतित्वं प्रसज्येत। एवं त्रासेत्यादौ बोद्धव्यम्। तथा च कालिदासः 'भीमकान्तैर्नृपगुणैः स बभूवोपजीविनाम्। अधृष्यश्चाभिगम्यश्च यादोरत्नैरिवार्णवः॥' इति दिलीपं प्रति वर्णितवान्। कौतुकजननपुण्यत्वादपि संभाव्यते। अत आह—पुण्यमिति। गम्भीरं च प्रसन्नं चेत्यादौ सर्वत्र विरोध उद्भाव्यः। गम्भीरं सतमिस्रं प्रसन्नं निर्मलं न भवतीति।

अनुगृहित इवेत्यादि। एवंविधमहीपतिप्रसादवशात्। निगृहीत इवेति। संकोचवशात्। साभिलाष इवेति। तस्य दर्शनीयत्वात्। तृप्त इवेति। तथैव तस्य कृतार्थत्वात्। विरोधी ह्यत्र सुबोधः। केदारं क्षेत्रम्। ब्रह्मस्तम्भं जगत्। फलं रत्नादिः। यच्च स्तम्भस्य फलं धान्यादिः तद्भोक्ता कर्षको भवति, राजन्वती प्रशस्तराजयुता।

खान वाले पर्वत, सरस्वती की समस्त विद्या वाला संगीतकभवन, लक्ष्मी के हृदय का दूसरा अमृतमन्थनदिवस, विदग्धता के बल का दर्शन, मर्यादाओं के एक ही स्थान, कान्ति के सर्वस्वकथन, रूपपरमाणुओं को सृष्टि के मोक्ष, राज्य के समस्त दुश्चरितों के प्रायश्चित्त, काम के सारे बलों के सहित आक्रमण, इन्द्र के दर्शनार्थ उपाय, धर्म के आवर्तन, कलाओं के कुमारी अन्तःपुर और सौभाग्य के परम प्रणाम थे। समस्त प्रजापतियों ने मानो उन्हीं का निर्माण करके राजाओं की सृष्टि का यज्ञ समाप्त कर अन्त में अवभृथस्नान कर लिया। इस प्रकार हर्ष गम्भीर, हँसमुख, भय उत्पन्न करने वाले और रमणीय, आह्लाद उत्पन्न करने वाले और पवित्र थे।

सम्राट् हर्ष को देखकर अनुगृहीत, निगृहीत साभिलाष और तृप्त की भाँति अपने उद्धत रोमाञ्च वाले मुख से आनन्द के अश्रुकणों को छोड़ता हुआ बाण दूर ही से आश्चर्योत्फुल्ल हो सोचने लगा—ये ही शोभन जन्मवाले, सुगृहीतनामा, तेजोराशि, चार समुद्रों से घिरे पृथ्वी के क्षेत्र के स्वामी, जगत् के रत्नादि फलों का उपभोग करने वाले एवं समस्त प्राचीन

मल्लो देवः परमेश्वरो हर्षः। एतेन च खलु राजन्वती पृथ्वी। नास्य-हरेरिव वृषविरोधीनि बालचरितानि, न पशुपतेरिव दक्षजनोद्वेगकारीण्यैश्वर्यविलासतानि, न शतक्रतोरिव गोत्रविनाशपिशुनाः प्रवादाः, न यमस्येवातिवल्लभानि दण्डग्रहणानि, न वरुणस्येव निस्त्रिंशग्राहसहस्र-रक्षिता रत्नालयाः, न धनदस्येव निष्फलाः सन्निधिलाभाः, न जिनस्ये-वार्थवादशून्यानि दर्शनानि, न चन्द्रमस इव बहुलदोषोपहताः श्रियः।

वृषो धर्मः, अरिष्टासुरो दान्तरूपश्च। बालेति। बाला हि विवेकहीनत्वाद्धर्मविरुद्धमाचरन्ति। अस्य तु तस्यामपि दशायां धर्मविरोधाभावः। दक्षः कुशलः प्रजापति-भेदश्च। महेश्वरपक्ष ऐश्वर्यशब्दो मुख्यवृत्तिः, इतरत्र गौणः। गोत्रं कुलम्, कुल-पर्वताश्च गोत्राः। अतिवल्लभानीति। अतिशब्देन युक्तदण्डत्वमाह। दण्डः करः, यमा-युधं च। निस्त्रिंशग्राहाः खड्गहस्ताः, अन्यत्र, जलचरभेदाश्च। रत्नालया भाण्डा-गाराणि, समुद्राश्च। निष्फला ऐश्वर्यादिफलप्राप्तिशून्याः, दानादिविनाकृताश्च। सन्निधिः सन्निधानम्। एतस्य दर्शनं सर्वस्य फलदायि भवतीत्यर्थः। अन्यत्र—संनि-धयः शोभनानि निधनान्यस्य। दर्शनानि जिनस्येव नार्थवादशून्यानि। अर्थो धनं तस्य वादः, अनेनेदं लब्धमिति, तेन शून्यानि। सर्वे तद्दर्शिनोऽर्थेन युज्यते। जिनस्य पुनरर्थवादशून्यानि महायानयोगाचारमाध्यमिकदर्शनानि। बहुलाः प्रभूता दोषा रागाद्याः, बहुलदोषाश्च कृष्णपक्षरात्रयः। श्रियः समृद्धयः, शोभाश्च।

राजाओं के चरितों को जीतने वाले, ज्येष्ठ मल्लदेव परमेश्वर (सम्राट्) हर्ष हैं। इनसे धरती राजन्वती है (अर्थात् प्रशस्त राजा से युक्त है)। विष्णु के समान इनके ऐसे बालचरित नहीं जिनमें वृष (अर्थात् धर्म, विष्णुपक्ष में अरिष्टासुर) का विरोध हो। इनके पशुपति शिव के समान ऐसे ऐश्वर्य के विलास नहीं, जिनसे दक्षजनों (चतुर जन, शिवपक्ष में दक्षप्रजापति) के मन में जरा भी उद्वेग हो। इन्द्र के समान इनके विषय में ऐसा कोई प्रवाद नहीं कि ये गोत्रों (कुलों, इन्द्रपक्ष में कुलपर्वतों) का विनाश कर डालते हैं। यम के समान दण्ड-ग्रहण (कर लेना, यमपक्ष में दण्डनामक आयुध का ग्रहण) इन्हें अतिप्रिय नहीं। ये वरुण के समान अपने रत्नालयों (रत्न के खजाने, वरुणपक्ष में समुद्र) की रक्षा हजारों की संख्या में तैनात निस्त्रिंशग्राह (खड्गधारी सैनिक, वरुणपक्ष में जलचारी खूंखार जीव) द्वारा नहीं करते, जैसे कुबेर का सन्निधान प्राप्त करना निष्फल अर्थात् ऐश्वर्य आदि फलों से रहित एवं प्राप्ति से शून्य है उसी प्रकार इनका सन्निधान फलशून्य नहीं। जैसे बुद्ध के दर्शन (महायान के योगाचार और माध्यमिक दर्शन) सर्वथा अर्थवाद (प्राशस्त्यमूलक वाक्य) से शून्य हैं, वैसे ही इनके दर्शन धन की प्राप्ति के वचनों से शून्य नहीं। चन्द्र जैसे बहुलदोष (कृष्ण

चित्रमिदमत्यमरं राजत्वम् । अपि चास्य त्यागस्यार्थिनः, प्रज्ञायाः शास्त्राणि, कवित्वस्य वाचः, सत्त्वस्य साहसस्थानानि, उत्साहस्य व्यापाराः कीर्तेर्दिङ्मुखानि, अनुरागस्य लोकहृदयानि, गुणगणस्य संख्या, कौशलस्य कला, न पर्याप्तो विषयः । अस्मिश्च राजनि यतीनां योगपट्टकाः, पुस्तकर्मणां पार्थिवविग्रहाः, षट्पदानां दानग्रहणकलहाः, वृत्तानां पादच्छेदाः, अष्टापदानां चतुरङ्गकल्पना, पन्नगानां द्विजगुरुद्वेषाः, वाक्यविदामधिकरणविचाराः, इति समुपसृत्य चोपवीती स्वस्तिशब्दमकरोत् ।

पर्याप्तः परिपूर्णः । योगपट्टका यतीनामुपकरणं पर्यङ्कबन्धनार्थम् । ते यतीनां चतुर्थाश्रमिणामेव, न पुनर्योगेन युक्ताः पट्टकाः कूटप्रधानानि लेख्यपत्राणि केषांचित् । एवमन्यत्रापि । पुस्तकर्म लेप्यम् । पार्थिवविग्रहा मृन्मयशरीराणि, राजभिः सह वैराणि च । दानग्रहणं मदजलं दानम्, ऋणव्यवहारश्च । वृत्तानां गुरुलघुनियमात्मकानां । समाश्च समविषमाणां पादच्छेदा भागविरामाः, चरणकर्तनानि च । अष्टापदानां चतुरङ्गफलकानाम् । 'चत्वार्यङ्गानि सेनाया हस्त्यश्वरथपत्तयः' तेषां कल्पना रचना, चतुर्णामङ्गानां पाणिपादस्य च छेदः । द्विजगुरुर्गरुडोऽपि । वाक्यविदां मीमांसकानामधिकरणविश्रान्तिस्थानानि । राज्ञां च धर्मनिर्णयस्थानानि । अधिकबलो वा रणः संग्राम इति केचित् । उपवीती दक्षिणावीती करः । उक्तं च— 'उद्धृते दक्षिणे पाणावुपवीत्युच्यते द्विजः' इति ।

पक्ष की रातों) में क्षीण हो जाता है उस प्रकार के रोग आदि बहुत दोषों के कारण आहत या समृद्धिहीन नहीं हुए । देवताओं से भी बढ़ा-चढ़ा इनका प्रभुत्व है यह देखकर आश्चर्य होता है । और भी—इनका त्याग इतना है कि पर्याप्त याचक नहीं मिलते, इनकी प्रज्ञा इतनी है कि शास्त्र के विषय पर्याप्त नहीं, कवित्व के सामने वाणी, बल के सामने साहस का स्थान, उत्साह के सामने व्यापार, गुणों के सामने संख्या और कौशल के सामने कला आदि पर्याप्त विषय नहीं ठहरते । इनके शासन में यति लोग ही (पर्यङ्कबन्ध आदि आसन में) योगपट्ट नामक वस्त्रविशेष धारण करते थे, (न कि इनके राज्य में जाली बनाए हुए ताम्रपत्र थे) । इनके शासन में मूर्तियाँ ही मिट्टी की बनाई जाती है (न कि परस्पर पार्थिवविग्रह अर्थात् राजाओं के साथ लड़ाई-झगड़े होते हैं) । भौंरे ही (हाथियों के) दानजल के ग्रहण में झगड़ते (याचक लोग दान लेने के अवसर पर नहीं झगड़ते हैं) वृत्त अर्थात् छन्दों के ही चरण में सम-विषम या भाग और विराम आदि भेद होते (न कि किसी पाप-विशेष के होने से पैर काट लिए जाते थे) । शतरंज के खेल में ही सेना के चार अङ्ग हस्ती-अश्व-रथ-पैदल की कल्पना है (न कि अपराधी के दोनों हाथ और दोनों पैर काट लिए जाते हैं) सर्प ही द्विजगुरु (गरुड) से द्वेष रखते हैं (न कि प्रजा के

अथोत्तरे नातिदूरे राजधिष्ण्यस्य गजपरिचारको मधुरमपरवक्त्र-मुच्चैरगायत्—

'करिकलभ विमुञ्च लोलतां चर विनयव्रतमानताननः।
मृगपतिनखकोटिभङ्गुरो गुरुरुपरि क्षमते न तेऽङ्कुशः' ॥

राजा तु तच्छ्रुत्वा दृष्ट्वा च तं गिरिगुहागतसिंहबृंहितगम्भीरेण स्वरेण पूरयन्निव नभोभागमपृच्छत्—'एष स बाणः ?' इति। 'यथाऽऽज्ञापयति देवः। सोऽयम्' इति विज्ञापितो दौवारिकेण 'न तावदेनमकृतप्रसादः पश्यामि' इति तिर्यङ्नीलधवलांशुकधारां तिरस्करिणीमिव भ्रमयन्न-पाङ्गनीयमानतरलतारकस्यायामिनीं चक्षुषः प्रभां परिवृत्य प्रेष्ठस्य पृष्ठतो

गजपरिचारक इति। अन्यगजपरिचारकस्य स्वजातिसमुचितं वस्तु राज्ञः प्रकृतस्मारकं जातम्। तत्र करिणां स्वभावत एव रागित्वादस्यापि रागवित्त्वाद् भुजङ्गता स्मृतिः सञ्जातेति। भंगुरो वक्रः। मृगपतिनखकोटिभङ्गुर इति। स्पष्टा व्याख्या। गुरुर्भारः, शासिता च। उपरि पृष्ठदेशे प्रभुभावे च अंकुश इवांकुश इत्यपि। अत आह—तच्छ्रुत्वेति। बृंहितं गर्जितम्। अंशव एवांशुकः। अंशुकं च

लोग ब्राह्मण और गुरु से द्वेष करते हैं) मीमांसक लोग ही अधिकरणों अर्थात् भिन्न-भिन्न प्रकरणों में विचार-विमर्श करते हैं, (न कि धर्मनिर्णय के स्थान-फौजदारी और दीवानी की अदालतें लगती थीं) यह सोच बाण ने समीप जाकर दाहिना हाथ उठा 'स्वस्ति' शब्द का उच्चारण किया।

उसी समय उत्तर दिशा की ओर राजभवन के कुछ ही दूर पर किसी महावत ने मधुर अपवक्त्र को ऊँचे स्वर में गाया—

'अरे हाथी के बच्चे, तू अपनी चंचलता छोड़ दे, सिर नीचा करके विनय का व्रत ले। यह अङ्कुश जो शेर के नखाग्र के समान टेढ़ा और कठोर है, तेरे ऊपर क्षमा नहीं करेगा।'

उसे सुनकर हर्ष ने बाण की ओर देखा और पर्वत की कन्दरा में बैठ कर दहाड़ते हुए सिंह की आवाज के समान गम्भीर स्वर से नभोभाग को मानो भरते हुए पूछा—'वही यह बाण है ?' तब दौवारिक ने निवेदन किया 'देव का कथन सत्य है, ये वही हैं।' 'मैं जब तक यह मेरे प्रसाद का पात्र नहीं होगा तबतक इसे नहीं देखूँगा' (यह कह कर) तिर्यक् नील-धवल वस्त्रवाली तिरस्कारिणी (जवनिका) की भाँति अपाङ्ग तक पहुँचाए गए तरल तारक वाले नेत्र की फैलने वाली प्रभा को घुमा कर पीठ की ओर बैठे हुए

निषण्णस्य मालवराजसूनोरकथयत्—'महानयं भुजङ्गः' इति। तूष्णीं-भावेन त्वगमितनरेन्द्रवचसि तस्मिन्मूके च राजलोके मुहूर्तमिव तूष्णीं स्थित्वा बाणो व्यज्ञापयत्—'देव! अविज्ञाततत्त्व इव, अश्रद्दधान इव, नेय इव, अविदितलोकवृत्तान्त इव च कस्मादेवमाज्ञापयसि? स्वैरिणो विचित्राश्च लोकस्य स्वभावाः प्रवादाश्च। महद्भिस्तु यथार्थ-दर्शिभिर्भवितव्यम्। नार्हसि मामन्यथा संभावयितुमविशिष्टमिव। ब्राह्मणोऽस्मि जातः सोमपायिनां वंशे वात्स्यायनानाम्। यथाकाल-मुपनयनादयाः कृताः संस्काराः। सम्यक्पठितः साङ्गो वेदः। श्रुतानि च यथाशक्तिः शास्त्राणि। दारपरिग्रहादभ्यगारिकोऽस्मि। का मे भुजङ्गता।

वस्त्रम्। तिरस्करिणी जवनिका। प्रेष्ठस्यातिप्रियस्य। नेयः परवशः। स्वैरिणः स्वतन्त्राः। सोमपायिनां सोमपानाम्। 'शिक्षा कल्पो व्याकरणं ज्योतिषं निरुक्तं छन्दोविचितिः' इति षडङ्गानि वेदस्य। अभ्यागारिको गृहस्थः, सम्यग्वृत्तिस्थितो वा। का मे भुजङ्गतेति। का मे भुजंगता शृङ्गारित्वम्। कामे मदने भुजंगता ज्ञेया, न मादृशेषु। नहि मे काचिद्भुजं बाहुं गता प्राप्तेत्यर्थः। लोकद्वयेत्यादिना त्रिवर्ग-स्यानुपघातं दर्शयति। शास्त्रविरोधप्रसङ्गात्। 'शतायुर्वै पुरुषः' कालमन्योन्यानु-

---

परमप्रिय मालवराज के पुत्र से कहा—'यह भारी भुजंग (गुण्डा या लम्पट) है।' मालवराज के पुत्र तो चुप रहे। उन्हें हर्ष की बात समझ में न आई और राजसमूह भी सुनकर गुम हो गया। तब क्षण भर चुप रह कर बाण बोला—'हे देव, आप इस प्रकार की बात क्यों ऐसे कहते हैं जैसे आपको मेरे विषय में सच्ची बात पता न हो, या मेरा विश्वास न हो, आपकी बुद्धि दूसरों पर निर्भर रहती हो, अथवा आप स्वयं लोक के वृत्तान्त से अनभिज्ञ हों। लोगों के स्वभाव और फैली हुई बातें मनमानी और तरह-तरह की होती हैं। किन्तु श्रेष्ठजनों को ठीक-ठीक देखना चाहिए। मुझे साधारण-सा समझ कर अनाप-सनाप कल्पना न कीजिए। सोमपान करने वाले वात्स्यायन ब्राह्मणों के वंश में मैं जन्मा हूँ। समय से मेरे यज्ञोपवीत आदि संस्कार हुए हैं। मैंने अङ्गों के साथ वेदों का सम्यक् प्रकार से स्वाध्याय किया है। अपनी शक्ति के अनुसार शास्त्रों का भी श्रवण किया है। विवाह करके नियमित गृहस्थ हूँ। तो मुझ में क्या भुजंगपना है? † मेरा

---

† का मे भुजङ्गता—मेरे जीवन में कौन-सी ऐसी बात है जिसे भुजंगता कही जाय? भुजंगता उस व्यक्ति में रहती है जो कामी है, मुझमें नहीं, मैंने किसी स्त्री में भुजंगता नहीं की अर्थात् अपनी भुजाओं में आलिंगन नहीं किया। अथवा भुजंगता तो काम (मदन) में होती है न कि मुझ-जैसे में।

लोकद्वयाविरोधिभिस्तु चापलैः शैशवशून्यमासीत् । अत्रानपलापोऽस्मि । अनेनैव च गृहीतविप्रतीसारमिव मे हृदयम् । इदानीं तु सुगत इव शान्तमनसि मनाविव कर्तरि वर्णाश्रमव्यवस्थानां समवर्तिनीव च साक्षाद्दण्डभृति देवे शासति सप्ताम्बुराशिरशनाशेषद्वीपमालिनीं महीं क इवाविशङ्कः सर्वव्यसनबन्धोरविनयस्य मनसाप्यभिनयं कल्पयिष्यति । आसतां च तावन्मानुष्यकोपेताः । त्वत्प्रभावादलयोऽपि भीता इव मधु पिबन्ति । रथाङ्गनामानोऽपि लज्जन्त इवाभ्यनुवृत्तिव्यसनैः प्रियाणाम् । कपयोऽपि चकिता इव चपलायन्ते । शरारवोऽपि सानुक्रोशा इव श्वापदगणाः पिशितानि भुञ्जते । सर्वथा कालेन मां ज्ञास्यति स्वामी स्वयमेव । अनपाचीनचित्तवृत्तिग्राहिण्यो हि भवन्ति प्रज्ञावतां प्रकृतयः' इत्यभिधाय तूष्णीमभूत् । भूपतिरपि 'एवमस्माभिः श्रुतम्' इत्यभिधाय तूष्णीमेवाभवत् । संभाषणासनदानादिना तु प्रसादेन नैनमन्वग्रहीत् । केवलममृत-

---

वद्धं परस्परस्यानुपघातेन त्रिवर्गं सेवत इत्यत एवाह—शैशवमिति । अशून्यमिति । अनेन तदेकासक्तत्वं परिहरति । अनपलापो निरपह्नवः । विप्रतीसारः पश्चात्तापः । सुगतो बुद्धः । समवर्ती यमः । मनुष्यस्य भावो मानुष्यकम् । रथाङ्गनामानश्चक्रवाकाः चपलायन्ते चपलत्वमाचरन्ति । शरारवो हिंस्राः । श्वापदगणाः प्राणिसमूहाः । पिशितं मांसम् । अनपाचीनाऽमृष्टा । अविपरीतेत्यर्थः, निर्दोषा वा ।

शैशव लोक-परलोक से विरोध न रखने वाली चपलताओं से शून्य नहीं था। मैं इस सम्बन्ध में अपलाप नहीं करता। इसी कारण मेरे हृदय में पश्चात्ताप है। किन्तु इस समय जब कि भगवान् बुद्ध के समान शान्तचित्त, मनु के समान, वर्णाश्रम-मर्यादा के रक्षक और यम के समान साक्षात् दण्डधर आप सातों समुद्रों को करधनी और समस्त द्वीपों की माला से विराजित पृथिवी का शासन कर रहे हैं। तो कौन ऐसा निडर है जो सब प्रकार से दुःखद अविनय का मन से भी अभिनय करे? मनुष्यों की तो बात जाने दीजिये, आपके प्रभाव से भौंरे भी डरते-डरते मधुपान करते हैं, चक्रवात पक्षी भी अपनी पत्नी के प्रति अतिशय आसक्तिरूप व्यसन से लज्जित होते हैं, वानर भी शंकित होकर चपलता करते हैं, हिंसक जानवर भी दयावान् होकर पश्चात्ताप करते हुए मांस का भक्षण करते हैं। समय से स्वयं आप मेरे विषय में जान लेंगे, क्योंकि बुद्धिमानों का यह स्वभाव होता है कि वे किसी बात में भी विपरीत हठ नहीं रखते।' इतना कह कर बाण चुप हो गए। संम्राट् भी 'मैंने ऐसा ही सुना था' बस इतना ही कह चुप हो गए। लेकिन् परस्पर बात-चीत, आसनदान आदि के प्रसाद से
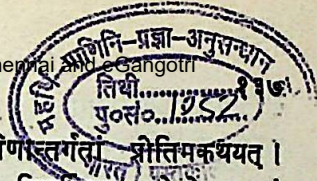
वृष्टिभिः स्नपयन्निव स्नेहगर्भेण दृष्टिपातमात्रेणान्तर्गतां प्रीतिमकथयत्। अस्ताभिलाषिणि च लम्बमाने सवितरि विसर्जितराजलोकोऽभ्यन्तरं प्राविशत्।

बाणोऽपि निर्गत्य धौतारकूटकोमलातपत्विषि निर्वाति वासरे, आस्ताचलकूटकिरीटे निचुलमञ्जरीभांसि तेजांसि मुञ्चति वियन्मुचि मरीचिमालिनि, अतिरोमन्थमन्थरकुरङ्गकुटुम्बकाध्यास्यमानम्रदिष्ठगोष्ठीनपृष्ठास्वरण्यस्थलीषु, शोकाकुलकोककामिनीकूजितकरुणासु तरङ्गिणीतटीषु वासविटपोपविष्टवाचाटचटकचक्रवालेष्वालवालावर्जितसेकजलकुटेषु निष्कुटेषु, दिवसविहृतिप्रत्यागतं प्रस्नुतस्तनं स्तनंधये धयति धेनुवर्गमुद्गतक्षीरं क्षुधिततर्णकव्राते, क्रमेण चास्तधराधरधातुधुनीपूरप्लावित इव लोहितायमानमहसि मज्जति सन्ध्यासिन्धुपानपात्रे पातङ्गे मण्डले, कमण्डलुजल-

---

बाणोऽपीत्यादौ। बाणोऽप्यस्मिन्सति निवासस्थानमगादिति संबन्धः। 'रीतिः स्त्रियामारकूटम्' इत्यमरः। निर्वाति शाम्यति। निचुलो वेतसवृक्षः। भुक्तोद्गीर्णाहारचर्वणं रोमन्थः। म्रदिष्ठं मृदुतमम्। गोष्ठीपूर्वं गोष्ठीनम्। 'गोष्ठात्खञ्भूतपूर्वे'। उक्तं च—'गोष्ठं गोस्थानकं तत्तु गोष्ठीनं भूतपूर्वकम्' इति। कोकाश्चक्रवाकाः। तरङ्गिणी नदी। आलवालमावापः। कुटा घटाः। निष्कुटाः स्वगृहारामाः। स्तन-

---

उसे अनुगृहीत नहीं किया। केवल स्नेह से भरे अमृत की वर्षा करने वाले दृष्टिपातमात्र से उसको जैसे नहलाते हुए उन्होंने अपने अन्तरतम की प्रीति प्रकट की। जब सूर्य अस्ताचल की ओर लटकने लगे तब राजसमूह विसर्जित कर महल के अन्दर चले गये।

बाण भी वहाँ से निकल कर अपने निवासस्थान स्कन्धावार में लौट आया। ढलते हुए दिन के आतप का तेज साफ-सुथरे पीतल के समान मन्द पड़ गया। अस्ताचल के मुकुट सूर्य वेतस की मंजरी जैसे अपने तेजसमूह को छोड़कर आकाश से हट रहे थे। वनभूमियों के मुलायम स्थानों में झुण्ड के झुण्ड मृग बैठकर धीरे-धीरे पँगुरी करने लगे। नदी के तटों पर प्रियाविरह से शोकाकुल होकर चक्रवाक की पत्नियाँ करुण आवाज में टर्राने लगीं। गृह के पास वाले उपवनों में चटक नामक छोटे-छोटे पक्षी पेड़ों पर बैठ कर चहचहाने लगे और वृक्ष के थल्लों में सींचने के काम में आने वाले घड़े औंधा कर रख दिए। दिन भर चरने के बाद शाम को टहल कर आई हुई दुधार गायों के स्वयं उत्पन्न क्षीर वाले स्तन को उनके बछड़े चुमलाने लगे। क्रम से अस्ताचल की गेरू आदि धातुओं के झरनों में डुबकी लगाने से लाल

शुचिशयचरणेषु चैत्यप्रणतिपरेषु पाराशरिषु, यज्ञपात्रपवित्रपाणौ प्रकीर्णबर्हिष्युत्तेजसि जातवेदसि हवींषि वषट्कुर्वन्ति यायजूकजने, निद्राविद्राणद्रोणकुलकलिलकुलायेषु कापेयविकलकपिकुलेष्वारामतरुषु निर्जिगमिषति जरत्तरुकोटरकुटीकुटुम्बिनि कौशिककुले, मुनिकरसहस्रप्रकीर्णसन्ध्यावन्दनोदबिन्दुनिकर इव दन्तुरयति तारापथस्थलीं स्थवीयसि तारकानिकुरम्बे अम्बराश्रयिणि शर्वरीशबरीशिखण्डे खण्डपरशुकण्ठकाले कवलयति बाले ज्योतिः शेषं सान्ध्यमन्धकारावतारे, तिमिरतर्जननिर्गतासु दहनप्रविष्टदिनकरकरशाखास्विव स्फुरन्तीषु दीपलेखासु, अररसम्पुटसंक्रीडनकथितावृत्तिष्विव गोपुरेषु, शयनोपजोषजुषि जरतीकथितकथे शिशयिषमाणे शिशुजने, जरन्महिषमषीमलीमसतमसि जनितपुण्यजन प्रजा-

---

न्धयस्तर्णकश्च वत्सः। धुनी नदी। सिन्धुः समुद्रः। शयः करः। चैत्यमायतनम्। पाराशरिषु भिक्षुषु। हवींषि कुशाः। वषडिति दानक्रियासु मोचनमन्त्रः वषट् कुर्वंति। जुह्वतीत्यर्थः। यायजूकोऽत्यर्थं यजनशीलः। निद्राणोऽलसः। द्रोणः काकः। कलिला आकुलाः। 'कुलायो नीडमस्त्रियाम्'। कापेयं चापलम्। कौशिका उलूकाः। स्थवीयसि स्थूलतरे। शिखण्डो जूटकः। खण्डपरशुः शिवः। करा एव शाखास्तदाकारत्वादंगुलयश्च करशाखाः। अररः कपाटः। संक्रीडनं शब्दः। आवृत्तिः स्थगनम्। 'गोपुरं स्यात्पुरद्वारं द्वारमात्रेऽपि गोपुरम्'। उपजोषः सुखम्, तूष्णींभावो वा। जरती वृद्धाः। शिशयिषमाणे सुषुप्सति। 'यक्षाः स्युः पुण्य-

---

होकर सूर्यसंध्या के समुद्ररूपी मद्यपात्र में डूबने लगा। भिक्षु लोग कमण्डलु के जल से अपने हाथ-पैर पवित्र धोकर चैत्यों की वन्दना करने लगे। स्रुक् स्रुवा आदि यज्ञपात्रों को हाथ में लेकर यज्ञ करने वाले लोग कुश को बिछा कर प्रज्ज्वलित अग्नि में वषट्कार के द्वारा हविष छोड़ने लगे। उपवन के वृक्षों पर नींद से अलसाए कौवे खोतों में काँव-काँव करने लगे और बन्दर अपनी चपलता छोड़ बैठे। पुराने खंखाड़ वृक्षों में बैठे हुए उल्लू अब निकलना ही चाहते थे। झुग्गे के झुग्गे बड़े तारे आकाश की स्थली में छिटकने लगे, मानो सन्ध्यावन्दन के अवसर पर मुनियों द्वारा छीटे गए जल के बिन्दु हों। अब अन्धकार आकाश में उतरने लगा, मानों रात्रिरूपी भीलनी के केशपाश का जूड़ा हो, वह भगवान् शंकर के कण्ठ के समान श्याम था और सन्ध्या के बचे हुए तेज को निगलता जा रहा था। दीपलेखाएँ इस प्रकार स्फुरित होने लगीं मानों अग्नि में प्रविष्ट सूर्य की किरणरूपी अङ्गुलियाँ हों, जो अन्धकार के तर्जनार्थ निकल पड़ी थीं। गोपुर के दरवाजों के बन्द होने की गड़गड़ाहट अब शान्त हो गई। बच्चे खाट पर चुपचाप पड़े बूढ़ी दादी की कहानी
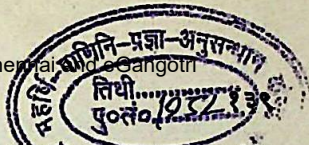
गरे विजृम्भमाणे भीषणतमे तमीमुखे, मुखरितविततज्यधनुषि वर्षति शरनिकरमनवरतमशेषसंसारशेमुषीमुषि मकरध्वजे, रताकल्पारम्भशोभिनि शम्भलीसुभाषितभाजि भजति भूषां भुजिष्यजने, सैरन्ध्रीबध्यमानरशनाजालजल्पाकजघनासु जनीषु, वशिकविशिखाविहारिणीष्वनन्यजानुप्लवासु प्रचलितास्वभिसारिकासु, विरलीभवति वरटानां वेशन्तशायिनीनां मञ्जुनि मञ्जीरशिञ्जितजडे जल्पिते, निद्राविद्राणद्राघीयसि द्रावयतीव च विरहिहृदयानि सारसरसिते, भाविवासरबीजाङ्कुरनिकर इव च विकीर्यमाणे जगति प्रदीपप्रकरे निवासस्थानमगात्। अकरोच्च चेतसि—'अतिदक्षिणः खलु देवो हर्षः, यदेवमनेकबालचरित-

---

जनाः'। तमी रात्रिः। शेमुषी बुद्धिः। आकल्पो वेशः। शम्भली कुट्टनी। भुजिष्या दासी। सैरन्ध्री प्रसाधनोपचारज्ञा। जनी। वशिका शून्या। विशिखा रथ्या। अनन्यजः कामः। अनुप्लवः सहायः। 'कान्तार्थिनी तु या याति संकेतं साभिसारिका'। 'हंसस्य योषिद्वरटा'। वेशन्तः पल्वलम्। कासारोऽत्यल्पसरः। मञ्जीरं

सुनते-सुनते ऊँघने लगे। बूढ़ी भैंस एवं स्याही की भाँति मलिन अन्धकार से युक्त रात्रि का अत्यन्त भयानक मुख (आरम्भ) जँभाई लेने लगा (बढ़ने लगा) और उसने पुण्यजनों (यक्षों) को जगा दिया। समस्त संसार की बुद्धि का अपहरण करने वाला कामदेव अपना धनुष चढ़ा कर टंकार भरने लगा और निरन्तर बाणों की वर्षा करने लगा। लौंड़ियाँ सुरत काल की वेषरचना के आरम्भ से शोभित होने लगी एवं कुट्टनियों के उपदेश पाकर अलङ्कार धारण करने लगीं। वधुओं के जघन-भाग प्रसाधिकाओं द्वारा करधनी के बाँधे जाने पर मुखरित हो उठे। अभिसारिकाएँ काम की सहायता से सुनसान गलियों में पैतरा मारने लगीं। ताल-तलइयों में शयन करने वाली हंसियों की नूपुर के समान मधुर आवाज कम पड़ने लगीं। निद्रा से अलसाए हुए सारस-पक्षियों की जोरदार आवाज विरहियों के हृदय को मानो पिघलाने लगीं। चारों ओर दीपक इस प्रकार जलने लगे मानो होने वाले दिन के बीजांकुर बिखेर दिये गये हों। और (बाण ने) मन में सोचा—"सचमुच देव हर्ष बड़े ही उदार हैं, क्योंकि मेरे बाल्यकाल की अनेक चपलताओं से फैले हुए जनापवाद को सुनकर कुपित होने पर भी मन में मुझ पर स्नेह ही रखते हैं। यदि मैं उनकी 'आँखों पर चढ़ा हुआ' (कोपभाजन) होता तो कैसे दर्शन देने की कृपा करते? वह मुझे गुणी देखना चाहते हैं। बड़े लोग अनुरूप विश्वास उत्पन्न करके बिना कुछ कहे भी आश्रितजनों को विनय का उपदेश दे देते हैं। मुझे धिक्कार है कि अपने ही दोषों से अन्धा,

'चापलोचितकौलीनकोपितोऽपि मनसा स्निह्यत्येव मयि। यद्यहमक्षिगतः स्याम्, न मे दर्शनेन प्रसादं कुर्यात्। इच्छति तु मां गुणवन्तम्। उपदिशन्ति हि विनयमनुरूपप्रतिपत्त्युपपादनेन वाचा विनापि भर्तव्यानां स्वामिनः। अपि च धिङ्मां स्वदोषान्धमानसमनादरपीडितमेवमतिगुणवति राजन्यन्यथा चान्यथा च चिन्तयन्तम्। सर्वथा तथा करोमि, यथा यथावस्थितं जानाति मामयं कालेन' इत्येवमवधार्य चापरेद्युर्निष्क्रम्य कटकात्सुहृदां बान्धवानां च भवनेषु तावदतिष्ठत्, यावदस्य स्वयमेव गृहीतस्वभावः पृथिवीपतिः प्रसादवानभूत्। अविशच्च पुनरपि नरपतिभवनम्। स्वल्पैरेव चाहोभिः परमप्रीतेन प्रसादजन्मनो मानस्य प्रेम्णो विस्रम्भस्य द्रविणस्य नर्मणः प्रभावस्य च परां कोटिमानीयत नरेन्द्रेणेति।

इति श्रीमहाकविबाणभट्टकृते हर्षचरिते राजदर्शनं नाम द्वितीय उच्छ्वासः।

नूपुरम्। दक्षिणोऽनुकूलः कौलीन जनापवादः। अक्षिगतो द्वेष्यः। विस्रम्भस्याश्वासस्य। द्रविणस्य धनस्य। नर्मणः परिहासस्य॥

इति श्रीशंकरकविरचिते हर्षचरितसंकेते द्वितीय उच्छ्वासः समाप्तः।

अनादर से दुखी हो ऐसे गुणवान् राजा के विषय में कुछ अनाप-शनाप सोचने लगा। अब मैं सर्वथा वही करूँगा जिससे समय से वे मुझे ठीक पहचान लें।' ऐसा निश्चय करके दूसरे दिन प्रातःकाल स्कन्धावार से निकल कर मित्रों और रिश्तेदारों के घर में ठहरा। तब त[illegible] सम्राट् स्वयं उसके स्वभाव से परिचित होकर उस पर प्रसन्न हो गए और फिर बाण ने राजभवन में प्रवेश किया। थोड़े ही दिनों में सम्राट् उस पर अत्यन्त प्रसन्न हुए और अपने प्रसादजनित सम्मान, प्रेम, विश्वास, धन-सम्पत्ति, परिहास और प्रभाव की पराकाष्ठा पर उसे पहुँचा दिया।

द्वितीय उच्छ्वास समाप्त।

---

१. चापलोपचित।